Page 1 of 523

अन्यान्य धर्मावलंबियों, मतावलंबियों सम्प्रदायों के अनुसार ईश्वर के विभिन्न नामों और स्वरूपों में ईश्वर

(ब्रह्म) का स्तवन बताता है कि सब का रचियता स्वामी एक ही है I

ॐकारमाद्यं प्रवदन्ति संतो वाच: श्रुतीनामपि यं गृणन्ति I
गजाननं देवगणानताङ्घ्रिं भजेऽहमर्धेन्दुकृतावतंसम् II

‘सन्त-महात्मा जिन्हें आदि ॐकार बताते हैं; श्रुतियों की वाणियाँ भी जिनका स्तवन करती हैं; समस्त देव- समुदाय जिनके चरणारविन्दों में प्रणत होता है तथा अर्धचन्द्र जिनके भालदेश का आभूषण है, उन भगवान गजानन का मैं भजन करता हूँ I’
मैं तत्सत्, तत्सम, तद्भव, परम हंस सोऽहम् ॐ स्वरुप गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, जीवात्म, परमात्म, गुरु देवता, परम् कर्ता, परम् कारक, परम् कारण, परम् प्रभु, अलख-अगोचर, अकालपुरुष, दीनानाथ, दीनबंधु, जगदाधार,जगतपति, सच्चे पातशाह,अपने समस्त नामों में स्वरूपों में सर्वांग सांग-

Page 1 of 523

Page 2 of 523

सपरिवार,सवाहन, सशक्तय, समग्र सम्पूर्ण स्थूलतरस्थूल-सूक्ष्मतरसूक्ष्म रूप से यत्र-तत्र सर्वत्र व्याप्त सर्वत्र स्थित, अन्तस्थ-बाह्यस्थ, सर्व व्यापक अच्युत-अनन्त, आदि-अनादि, अंतरउरवासी, अविनाशी, परम् शक्ति, परम् शक्ति मान, परम् ब्रह्मऽब्रह्म, विद्या-अविद्या, ज्ञानऽज्ञान, ज्ञान-विज्ञान, परम् मानसिक शांति, मानसिक स्थिरता, मानसिक एकाग्रता, परम् कान्ति- शांति-चेतना-आस्था-श्रद्धा-विश्वास,परम दाता, धाता, अधिष्ठाता, परम् ईष्ट,आत्मा- अनात्मा, ब्रह्मऽब्रह्म, विद्याऽविद्या, ज्ञानऽज्ञान, ज्ञान-विज्ञान, ध्यान-विवेक-विद्या-बुद्धि,दिव्यदृष्टि, दिव्यचक्षु, दिव्यनेत्र, दिव्यनेत्रज्योति, दिव्यकर्ण, दिव्यश्रवणशक्ति, वाक्शुद्धि, वचनशुद्धि, वाक् सिद्धि, वचनसिद्धि, परम् वैभव-विपुल धन-सम्पत्ति, सुख-लाभ-आनंद स्वरूप, सार्थक-निरर्थक, परम् तत्त्व,परम् तथ्य, परम् सत्व, परम् सत्य, सर्वतोभाद्रमण्डलस्थ सकल जीव-चराचर, जड़-चेतन, गोचार-अगोचार, स्थावर-जंगम्, परम् महागुणात्मक-महाभूतात्मक, सतोगुण-रजोगुण-तमोगुण, मन-बुद्धि-आत्मा, मन-वचन-काय, इच्छा-कल्पना-संकल्प-परिणाम, धाता- अधिष्ठाता, सकल पीर-फ़कीर,पैग़म्बर, अवतार-औलिया, अकल-सकल, फ़रिश्ते, समस्त देवी-देवता, नवनाथ-चौरासी सिद्ध, सकल संत समाज-साधू समाज-

Page 2 of 523

ऋषि-मुनि , आदित्यादि नव ग्रहदेवता , अधिदेवता -प्रत्यधि देवता , विनायकादि पञ्चलोकपाल , वास्तोष्पति , क्षेत्राधिपति , इन्द्रादि -दशदिक्पाल , सर्वे कव्य -वाङ्ग्मय , सर्वेकिरीटिनः कार्यवरदापाणय : सर्व देव , सर्व गुरुदेव , सर्व ईष्ट देव परमेश्वर , सर्व मन्त्र -यंत्र -तन्त्र -स्तोत्र , सर्व मन्त्र -यंत्र -तन्त्र -स्तोत्र अक्षरांक , परम् विद्या , परम् ज्ञान - परम् सिद्धि ,शक्ति , सामर्थ्य , एवं क्षमता परम् रचियता , परम् स्रष्टा , परम् द्रष्टा , परम् दाता -धाता -अधिष्ठाता परम् ईष्ट , समस्त भाषाओं , लिपियों के स्वर -वयंजन , परम चिन्ह , परम चिन्ह ब्रह्म , परम वर्ण , परम वर्ण ब्रह्म , परम स्वर , परम स्वर ब्रह्म , परम व्यंजन , परम व्यंज ब्रह्म , परम मात्रा , अमात्रा , अर्ध मात्रा , परम मात्रा , अमात्रा ,अर्धमात्रा ब्रह्म , परम संयुक्त स्वर है , परम संयुक्त व्यंजन है , परम संयुक्ताक्षर , प्रथम अक्षर , प्रणवाक्षर , ओमाक्षर , परमाक्षर , परम अक्षर ब्रह्म , परम आहद, अनाहद , परम नाद , परम ब्रह्म नाद , परम ध्वनि , परम ब्रह्म ध्वनि , परम धुनि , परम ब्रह्म धुनि , परम शब्द , परम शब्द ब्रह्म , स्वरूप ॐ कार , ੧ੳੰ कार , الله , को नमन् करता हूं , प्रणाम करता हूं , अनुसरण करता हूं , और इसी की शरण लेता हूं I

English virson:----

of other religions, sects
According to God in different names and forms of God
The eulogy of (Brahm) tells that the creator master of all is the same.
Karamadyam Pravdanti Santo Vacha: Shrutinampi yam Granti.
Gajananam Devganantanghrim Bhaje

'Saints-Mahatmas whom they call the Adi Kars'; Whom also the voices of the Shrutis praise; I worship the Lord Gajanan of all the deities, whose feet are worshiped in their feet and whose half-moon is the ornament of the spear.
I am Tattsat, Tatsam, Tadbhav, Param Hans Soham Om form Ganesha, Brahma, Vishnu, Mahesh, Jivatma, Paramatma, Guru Devata, Param Karta, Param Karak, Supreme Cause, Supreme Lord, Alakh-invisible, Akalpurush, Dinanath, Dinabandhu, Jagdadhar , the lord of the world, the true Patshah, in all His names, in all the forms, the whole soul, the family, the vehicle, the power, the whole, the whole, the grossest, the subtlest, the microscopic, everywhere, everywhere, everywhere, the inner-external, the all-

pervasive Achyut-infinite, the beginning-eternal, The inner-dweller, the imperishable, the supreme power, the supreme power, the supreme Brahma-Brahm, Vidya-Avidya, knowledge-knowledge, knowledge-science, ultimate mental peace, mental stability, mental concentration, ultimate peace-peace-consciousness-faith-faith-faith, the ultimate giver, Dhata, Destroyer, Supreme Ishta, Soul-Anatma, Brahma-Brahm, Vidya-Vidya, Knowledge-Gyan, Knowledge-Science, Dhyana-discretion-Vidya-Intellect, Divine Vision, Divine Eye, Divine Eye, Divine Eye Jyoti, Divyakarna, Divine Hearing Power, Vaak Shuddhi, Vachan Shuddhi, Vaak Siddhi, Vaak Siddhi Param splendor - abundant wealth, happiness - profit - bliss form, meaningful - meaningless, ultimate essence, ultimate Facts, Param Sattva, Absolute Truth, Sarvatobhadramandal of all living beings, Matter-conscious, Transcendental-Agochar, Stavar-Jangam, Param Mahaguna-Mahabhutika, Satoguna-Rajoguna-Tamoguna, Mind-Intellect-Soul, Mind-word-body, Desire-imagining-resolve-result, god-founder, gross pir-fakir, prophet, incarnation-auliya, wisdom-gross, angels, all gods and

goddesses, Navnath-fourty-four Siddha, gross saint society-sage society-sage-muni, Adityadi Nava-Grahadevata, Adhidevata-Pratyadhi Devta, Vinayakadi Panchalokpal, Vastoshpati, Kshetradhipati, Indradi-Dashdikpal, Sarve Kavya-Vagmaya, Sarvekiritinh Karyavardapanay: Sarva Deva, Sarva Gurudev, Sarva Ishta Dev Parmeshwar, Sarva Mantra-yantra-tantra-stotra, Sarva Mantra - Yantra-Tantra-Stotra Akshar number, Param Vidya, Ultimate Knowledge - Ultimate accomplishment, Power, Potency, and Ability, the Supreme Creator, the Supreme Creator, the Supreme Seeer, the Supreme Giver-the creator, the Supreme Ishta, the vowels of all languages, scripts, Param Sign, Param Sign Brahma, Param Varna, Param Varna Brahm, Param Swara, Param Swar Brahman, Param Consonant, Param Vyaj Brahma, Param Quantity, Amatra, Ardha Matra, Param Quantum, Amatra, Ardhamat Ra Brahma is the ultimate combined vowel, the ultimate combined consonant, the ultimate consonant, the first letter, Pranavakshara, Omakshara, Paramakshara, Param Akshar Brahm, Param Ahad, Anahad, Param Naad, Param Brahm Naad, Param Sound, Param Brahm Sound,

Param Dhuni I bow to the supreme Brahma Dhuni, the ultimate word, the ultimate word Brahman, the form kar, 1 ੳ car, الله, I bow down, obey, and take refuge in this.

शुक्लाम्बरधरं देवं शशि वर्णं चतुर्भुजं।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्व विघ्नोपशान्तये
।
Shuklambardharam Devam Shashi Varnam Chaturbhujam. Prasannavadanam dhyayet all obstacles.
(सभी विघ्नोंके निवारण हेतु श्वेत वस्त्र
धारण करनेवाले , शशि वर्णयुक्त (श्वेतवर्ण),
प्रसन्न चित्त , चतुर्भुज श्रीगणेशका
ध्यान करना चाहिए ।)
(For the removal of all obstacles, one should meditate on Lord Ganesha, who is wearing white clothes, with Shashi Varna (white color), happy mind, four-armed Lord Ganesha.)

बुद्धि भरण अशरण शरण , हरण अमंगल जाल ।
सिद्धि सदन करिवर बदन ,जय जय गिरिजालाल ।

अर्थ :- हे सेवकों के समस्त चराचर के स्वामी
आप अपने भक्तों को बुद्धि का वरदान देकर
उन्हें बुद्धि से भरने वाले बुद्धि के भंडार
हैं । अपनी शरण में आये हुए भक्तों को , जिनको

[illegible]

Wisdom, shelter, refuge, deprivation of evil trap.

Siddhi Sadan Carrivar Badan, Jai Jai Girijalal I

Meaning:- O Lord of all the pastimes of the servants, you are the storehouse of wisdom, who fills your devotees with wisdom by giving them the boon of wisdom. Hail to you, the son of (Parvati), the mother of Girija, who wears the beautiful Sumukh Mangal Karak Gajamukh, the shelter of all the siddhis, the one who defeats the net made of a group of siddhis.

[illegible]

Jehi Sumirat Sidhi Hoi, Enumerator Karivarbadan I

Karu Anugrah sleep, Wisdom good luck

Meaning:- By remembering all the works are accomplished, those who are the lord of the ganas and have the face of a beautiful elephant, may the zodiac of wisdom and the abode of auspicious qualities (Shri Ganeshji) bless me.

[illegible]

[illegible]

mook hoy vaachaal, pangu chadhahin girivar gahan. jaasu krpaan so dayaalu, dravahu sakal kalimal dahan.

[illegible]

Silent hoy speech, paralyzed girivar deep.

Jasu kripan so merciful, dravhu gross Kalimal combustion.

Meaning:-- By whose grace the mute becomes a very beautiful speaker and the lame-luna climbs an inaccessible mountain, may the

merciful (God) who burns all the sins of Kali-yuga be moved (have mercy) on me.

जय गणेश गिरिजा सुवन , सकल सुमंगल खान
करहु कृपा निज भक्त पर , दीजिये भक्ति दान
।

अर्थ :--हे सब प्रकार के सन्मंगल की खान
गिरिराज हिमालय पुत्री माता पार्वती के
पुत्र आप की जय हो ।
आप अपने भक्त पर कृपा करके भक्ति का दान दें ।
Jai Ganesh Girija Suvan, Sakal Sumangal Khan
Karhu grace on my devotee, give devotional donation.
Meaning:- O mine of all kinds of auspiciousness, Glory to you, the son of Giriraj, the daughter of Himalaya, Mother Parvati.Please donate devotion to your devotee.

विघ्न हरण मंगल करण , सोहत कर में शूल ।
विद्या -वर -दायक सदा , सिद्धिसदनसुख मूल ।

अर्थ :-- हे सकल विघ्नों का हरण करने वाले
समस्त कष्टों बाधाओं को दूर करने वाले आप के
हाथ में शूल शोभा पा रहा है । आप सदैव विद्या

का वरदान देने वाले समस्त सिद्धियों के
भंडार , सभी सुखों के मूल स्रोत (मुख्य साधन)
हैं ।
Mangal Karan removes obstacles, there is trouble in sleeping. Vidya-broom-giver always, Siddhisdansukh original.

Meaning:- O remover of all obstacles, the one who removes all the troubles and obstacles is getting grace in your hand.

अखण्डमंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरं।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नम :।
Akhandamandalakaram vyatam yen characharam.
Tatpadam darshitam yen tasmai sri guruve namah.

जो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मंडल स्वरूप
आकार है सकल सृष्टि अर्थात चर अचर ,जड़ चेतन ,
गोचर अगोचर में समय हुआ है उसके उन पद का
जिसने आभास कराया ज्ञान कराया दर्शन कराया
उनका उस महान गुरु को नमन है , जिसने उस
अवस्था का साक्षात्कार करना संभव किया जो
पूरे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है , सभी जीवित
और मृत्य (मृत) में।)

The whole universe, which is the size of the circle, is the time in the whole creation i.e. variable, constant,idiot, inert, conscious, transiting imperceptible. Which pervades the whole universe, in all the living and the dead (the dead.)

[illegible],
[illegible] II

he jagadambe ambike karo jagat pratipaal,
naman karat tav charanan mein dvij kul sohanalaala.

[illegible]:-- [illegible], [illegible] I [illegible] I

Meaning:- O Mother of the whole world, Jagadamba, Amba, may you protect the whole world. The descendant of Dwij Sohan Lal bows at your lotus feet.

[illegible], [illegible] I

Page 13 of 523

मां जगदम्बा सभी प्राणियों के भीतर चैतन्य रूप में विद्यमान हैI

भगवती पराम्बा के परम पावन चरित्र का दर्शन हमें श्रीमद् देवी भागवत में होता है। देवी भागवत श्री युक्त है। इसका प्रारंभ गायत्री मंत्र से होता है। श्रीमद्भागवत में भी एक शब्द गायत्री मंत्र का आता है।
सत्यं परं धीमहि
और श्रीमद् देवी भागवत में भी गायत्री मंत्र का तात्पर्यार्थ है।

सर्व चैतन्य रूपां तां

आद्यां विद्यां च धीमहि ।

हम जिन जगदम्बा की आराधना कर रहे हैं, वह मात्र जड़ प्रकृति

नहीं है, वह चैतन्य रूपा है।

सर्व चैतन्य रूपां तां

सभी प्राणियों में जो चैतन्य है, वह किस रूप में है? अहं- अहं के रूप में है। मैं-मैं के रूप में जो सब प्राणियों में स्फुरित हो रहा है वह क्षेत्रज्ञ चैतन्य रूप है। उसी क्षेत्रज्ञ को यहां जगदम्बा के रूप में प्रतिपादित किया जा रहा है। वास्तव में परमात्मा ने तो स्त्रीलिंग हैं, न पुल्लिंग हैं और न नपुंसक लिंग है, अपनी भावना अनुसार

Page 13 of 523

Page 14 of 523

हम जिस रूप में उसे देखना चाहें देख सकते हैं।

सर्व चैतन्य---
जो सब प्राणियों में चैतन्य रूप से अवस्थित हैं जो क्षेत्रों की भी क्षेत्रज्ञ है वो जगदम्बा हमारी आत्मा से अभिन्न हैं

आद्यां विद्यां च धीमहि
वह सर्व व्यापिनी जो पराशक्ति है जिसको त्रिपुर सुंदरी कहते हैं। तीनों पुरों में जो साक्षी रूप से विद्यमान है। स्थूल शरीर एक पुर, सूक्ष्म शरीर दूसरा पुर और कारण शरीर तीसरा पुर। इन तीनों पुरों की साक्षी हैं वो त्रिपुर सुंदरी हैं और जो तीनों अवस्थाओं को जानती हैं,जागृत में स्वप्न नहीं,स्वप्न में सुषुप्ति नहीं। लेकिन जो सभी अवस्थाओं में एक रस रहे । साक्षी रूप से विद्यमान रहें वह त्रिपुर सुंदरी हैं । तो परमतत्व को पराविद्या को जो अपनी आत्मा से अभिन्न समझता है वही परमात्मा का दर्शन करके बंधन से मुक्त होता है।

बुद्धिं या न: प्रचोदयात्I

जो बुद्धि है हम पर प्रसन्न हों,सत्कर्मों के लिए प्रेरित करें I

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात् I

Page 14 of 523

Page 15 of 523

स भूमिँ् सर्वत: स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङगुलम् II (पु.सू.1)

अन्वय:- स: सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रपात् पुरुषः I स सर्वत: भूमिं स्पृत्वा अत्य दशाङ्गुलं अतिष्ठत् II

शब्दार्थ:- सहस्र = हजार; शीर्ष = सिर; पुरुष: == प्रकृति का अधिष्ठाता, परमात्मा; अक्ष = नेत्र,आंख; पात् = पांव, पैर, चरण; भूमि = धरती, पृथ्वी; सर्वत: = चारों ओर से, सब ओर से; स्पृत्वा = स्पर्श करके; अत्य--घेर कर, दबा कर, अतिक्रमण करके; तिष्ठति = स्थापित है, बैठा है; दशाङ्गुलं = दस अङ्गुल के बराबर; (उवट-भाष्य अनुसार-- दशाङ्गुल परिमाण वाला, हृदय-स्थान I

अर्थ;- जो हजारों सिर, हजारों नेत्र, और हजारों चरणों को धारण करता है, जो कि सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, और वहां भी जिनको मापना संभव नहीं था अर्थात अनंत तक वह ॐ कार स्वरूप विराट पुरुष सब ओर से दश अङ्गुल के बराबर भूमि को अतिक्रमण करके (घेर कर बैठा हुआ है) स्थितहै I अथवा इन्द्रियां अथवा नासिकाग्र भाग) (श्वेताश्वतर-उपनिषद अध्याय 3 के श्लोक

Page 15 of 523

Page 16 of 523

14) और (कृष्णयजुर्वेदीयपुरुषसूक्त में
यह श्लोक इस प्रकार मिलता है):--ॐ सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात्
I

स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङगुलम् II

इस की दूसरी पंक्ति का अन्वय इस प्रकार है:-स: भूमिम् विश्वत: वृत्वा अति

दशांगुलम् अतिष्ठत् I

शब्दार्थ:- सहस्रशीर्षा==हजारों सिर वाला; पुरुषः== प्रकृति का अधिष्ठाता, परमात्मा; सहस्राक्ष:==हजारों आंख वाला; सहस्रपात्==हजारों पांव वाला; स:==वह; भूमिं==पृथ्वी को; विश्वत:==चारोंओर से; वृत्वा==घेर कर; अत्यतिष्ठत्==दूर (परे) खड़ा है; दश+अङगुलम्==दस अंगुल भर I

अर्थ:- वह पुरुष हजारों सिरों वाला, हजारों आंखों वाला, हजारों पांवों वाला है I वह हाथ से ब्रह्मांड को सब ओर से छुए हुए है, फिर भी उसकी दसों उँगलियाँ दूर खड़ी हैं I घेरने से तो दसों उँगलियाँ भर जानी चाहियें, परन्तु ब्रह्मांड इतना तुच्छ अर्थात इतना

Page 16 of 523

Page 17 of 523

छोटा है कि इसे घेर कर भी उस के दोनों हाथों की दसों उँगलियाँ मानो खाली रह जाती हैं I वह पुरुष ही भूत, भविष्य और वर्तमान है, वह ही शाश्वतता का स्वामी है, इस सृष्टि रुपी भोजन से वह स्वयं को अप्रकट से प्रकट करता है I

श्रीमद्भागवत में इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया गया है:-

सर्वान्तर्यामी परमात्मा इस समस्त ब्रह्मांड की भूमि को सब ओर से व्याप्त करके स्थित है और इससे दस अङगुल ऊपर भी है I उन परमात्मा के मस्तक, नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रियाँ और चरण आदि कर्मेन्द्रियाँ हजारों हैं---असंख्य हैं I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है-----जो सहस्रों सिरवाले, सहस्रों नेत्रवाले और सहस्रों चरणवाले विराट पुरुष हैं, वे सारे ब्रह्मांड को आदि से अनंत तक आवृत करके भी दस अंगुल शेष रहते
हैं I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:-- उन परम् पुरुष के सहस्रों (अनंत)

Page 17 of 523

Page 18 of 523

मस्तक, सहस्रों नेत्र और सहस्रों चरण हैं । वे इस सम्पूर्ण विश्व की समस्त भूमि (पूरे स्थान)-की सब ओर से व्याप्त करके इससे दस अंगुल (अनंत-योजन) उपर स्थित हैं अर्थात वे ब्रह्माण्ड में व्यापक होते हुए उससे परे भी हैं ।

‘परमेश्वर के सर्वात्म भाव या विराट्स्वरूप का वर्णन’ ईशादि नौ उपनिषद्

(शङ्करभाष्यार्थ) में इस भाव को कुछ यूं प्रकट किया गया है------वह परमेश्वर पुरुष एवं अंतरात्मा है—यह कहा गया, अब सबकी तद्रूपता प्रदर्शित करने के लिए श्रुति फिर भी उसका सर्वात्मभाव दिखलाती है I कहा भी है—“अध्यारोप और अपवाद के द्वारा*[*अध्यारोप और अपवाद—ये वेदांत के पारिभाषिक शब्द हैं I किसी सत्य वस्तु में असत्य पदार्थ का भ्रम होना अध्यारोप है, जैसे रज्जू (रस्सी) में सर्प-सांप की भ्रान्ति; तथा उस असत्य पदार्थ के बाधपूर्वक परमार्थ-सत्य को प्रदर्शित कराना अपवाद है, जैसे कल्पित सर्प के निराकरण द्वारा उसकी अधिष्ठानभूता रज्जू का भान I इसी प्रकार निष्प्रपंच ब्रह्म में

Page 18 of 523

माया का आरोप करके प्रपंच -प्रतीति की व्यवस्था की जाती है और प्रपंच के अपवाद द्वारा शुद्ध ब्रह्म का साक्षात्कार कराया जाता है , परन्तु वस्तुत : ये दोनों प्रपंच के ही अंतर्गत हैं , अखंड चिन्मात्र शुद्ध ब्रह्म में तो किसी भी प्रकार के अध्यारोप या अपवाद का अवकाश ही नहीं है । इस प्रकार अध्यारोप और अपवाद द्वारा उस निर्विशेष का सविशेष रूप से वर्णन किया जाता है । निष्प्रपंच को प्रपंचित किया जाता है ” इत्यादि ।---

भाष्य --सहस्राण्यनन्तानि शीर्षाण्यस्येति सहस्रशीर्षा । पुरुष : पूर्ण : । एवामुत्तरत्र योजनीयम् । स भूमिं भुवनं सर्वतो ऽन्तर्बहिश्च वृत्वा व्याप्यात्यतिष्ठदतीत्य भुवनं समधितिष्ठति । दशाङ्गुलं हृदयं तत्राधितिष्ठति ।

अर्थ - इसके सहस्र अर्थात् अनंत सिर हैं इसलिए यह सहस्र सिर वाला है । पुरुष अर्थात् पूर्ण है इसी प्रकार आगे के विशेषणों का भी अर्थ लेना चाहिए । *[*अर्थात् सहस्र यानी अनंत अक्षि (नेत्र)

Page 20 of 523

और पद(चरण) होने के कारण वह सहस्राक्ष और सहस्रपाद है I] वह भूमि अर्थात् संसार को सर्वत:--बाहर और भीतर से व्याप्त करके स्थित है I दशांगुल अर्थात् अनंत--अपाररूप से I अथवा नाभि से ऊपर जो दस अंगुल परिमाण वाला हृदय है उसमें स्थित है I

भाव-- वह सहस्र सिर, सहस्र नेत्र और सहस्र चरणों वाला है तथा पूर्ण है I वह

भूमि को सब और से व्याप्त कर अनंत रूप से उसका अतिक्रमण करके स्थित है I [अथवा ऐसा अर्थ करना चाहिए कि नाभि से ऊपर दस अंगुल परिमाण वाले हृदय में स्थित है]

स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती ईशादिनवोपनिषद् इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं—---

मंत्रार्थ—वह परम् पुरुष हजारों सिर वाला, हजारों आँखों वाला हजारों पैर वाला वह समस्त जगत् को सब और से घेर कर नाभि से
दस अंगुल ऊपर हृदय में स्थित है I

व्याख्या—वह परम् पुरुष परमेश्वर सब अवयवों से रहित होने पर भी उनके सिर, आँख और पैर आदि सब अंग अनंत एवं असंख्य हैं I

Page 20 of 523

Page 21 of 523

इसका तात्पर्य यह है कि वे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, एवं संहार के एकमात्र कारण होने की वजह से संसार को बाहर, भीतर, ऊपर-नीचे अर्थात् पूर्ण रूप से व्याप्त किये हैं I फिर भी संसार का अतिक्रमण करके नाभि से ऊपर जो दस अंगुल परिमाण वाला हृदय है उसमें अन्तर्यामी रूप से प्रतिष्ठित है I

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

ऋषि—नारायण; उत्तरनारायण: I देवता— पुरुष:, ईशान:, स्रष्टा, स्राश्टेश्वर:, आदित्य:, सूर्य:, विश्वेदेवा: I छन्द— अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् I

सहस्रशीर्षा पुरुष:
सहस्राक्ष: सहस्रपात् I

स भूमिँं सर्वत: स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङगुलम् II

सहस्रों शिर, सहस्रों नेत्र वाले, और सहस्रों चरणवाले यह परम पुरुष पंचभूतोंको

Page 21 of 523

Page 22 of 523

व्याप्त करते हुए, दश अंगुलि के बराबर प्रदेश को अतिक्रमण कर स्थित हुए हैं I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुष सूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात् I

स भूमिँ् सर्वत: स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङगुलम् II

(जो) सहस्रों सिर वाले, सहस्रों नेत्र वाले और सहस्रों चरण वाले विराट् पुरुष् हैं, वे सारे ब्रह्मांड को आवृत करके भी दस अंगुल शेष रहते हैं I

(दशान्गुलम्—माप में पूर्णांक अर्थात् 9 से भी 1 अधिक है)

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या:-

सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात्
I

Page 22 of 523

Page 23 of 523

स भूमिँ् सर्वत सपृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् II

सहस्रशीर्षेति सहस्रऽशीर्षा I पुरुष: I सहस्रऽअक्षः I सहस्रऽपात् II स:भूमिम् सर्वतः स्पृत्वा। अति। अतिष्ठत् । दशाङ्गुलमिति दशऽअङ्गुलाम् I

पदार्थ:--(सहस्रशीर्षा) सहस्राण्यसङ्ख्यातानि शिरांसि यस्मिन् स: (पुरुष:) जगदीश्वर:, ‘पुरुष: पुरिषाद: पुरिशय: पूरयतेर्वा पूरयत्यन्तरित्यन्तरपुरुषमभिप्रेत्य। यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित् । वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेकदं पूर्ण पुरुषेण सर्वमित्यपि निगमो भवति।। (निरू॰2.3)’ (सहस्राक्ष:)
सहस्राण्यसंख्यातान्यक्षीणि यस्मिन स: (सहस्रपात) सहस्राण्यसंख्याता: पादा यस्मिन् स: (स:) (भूमिम्) भूगोलम् (सर्वत:) सर्वस्माद्देशात् (स्पृत्वा) अभिव्याप्य (अति) उल्लङ्घने अतिष्ठत् (दशाङ्गुलम्)

Page 23 of 523

Page 24 of 523

पञ्चस्थूल--सूक्ष्मभूतानि दशाङ्गुलान्यङ्गानि यस्य तज्जगत् ।।

अन्वय:-- हे मनुष्या:! य: सहस्रशीर्षा सहस्राक्ष: सहस्रपात् पुरुषोऽस्ति, स सर्वतो

भूमिं स्पृत्वा दशाङ्गुलमत्यतिष्ठत् तमेवोपासीध्वम् II

भावार्थ:--हे मनुष्या:! यस्मिन् पूर्णे परमात्मन्यस्मदादीनामसंख्यातानि

शिरांस्यक्षीणी पादादीन्यङ्गानि च सन्ति यो भूम्याद्युपलक्षितं पञ्चभि: स्थूलैर्भूतै: सूक्ष्मैश्च युक्तं जगत् स्वसत्तया प्रपूर्य्य यत्र जगन्नास्ति तत्राऽपि पूर्णोऽस्ति तं सर्वनिर्मातारं परिपूर्णं सच्चिदानन्दस्वरूपं नित्याशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं परमेश्वरं विहायाऽन्यस्योपासनां यूयं कदाचिन्नैव कुरुत किन्त्वस्योपासनेन धर्मार्थकाममोक्षानलं कुर्यात् ।

पदार्थ:-- हे मनुष्यो! जो (सहस्रशीर्षा) सब प्राणियों के हजारों शिर (सहस्राक्ष:) हजारों नेत्र और (सहस्रपात्) असङ्ख्य पाद

Page 24 of 523

Page 25 of 523

जिसके बीच में हैं, ऐसा (पुरुष:) सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक जगदीश्वर है (स:) वह (सर्वत:) सब देशों से (भूमिम्) भूगोल में (स्पृत्वा) सब ओर से व्याप्त हो के (दशाङ्गुलम्) पांच स्थूलभूत, पांच सूक्ष्मभूत ये दश जिनके अवयव हैं, उस सब जगत् को (अति, अतिष्ठत्) उल्लंघन कर स्थित होता अर्थात् सब से पृथक् भी स्थिर होता है ।।

भावार्थ:--हे मनुष्यो! जिस पूर्ण परमात्मा में हम मनुष्य आदि के असंख्य शिर आंखें और पग आदि अवयव हैं, जो भूमि आदि से उपलक्षित हुए पांच स्थूल और पांच सूक्ष्म भूतों से युक्त जगत् को अपनी सत्ता से पूर्ण कर जहाँ जगत् नहीं वहाँ भी पूर्ण हो रहा है, उस सब जगत् के बनाने वाले परिपूर्ण सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य-शुद्ध-

बुद्ध-मुक्तस्वभाव परमेश्वर को छोड़ के अन्य की उपासना तुम कभी न करो, किन्तु

उस ईश्वर की उपासना से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करो ।।

Page 25 of 523

Page 26 of 523

पुरुष इत्यस्य नारायण ऋषि: । ईशानो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्द: । गान्धार: स्वर: । पुनस्तमेव विषयमाह ।। फिर उसी विषय को
अगले मन्त्र में कहा है l

पुरुष एवेदँ् सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् I उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति II

(श्वेताश्वतर-उपनिषद अध्याय 3 श्लोक 15, पु.सू. 2)

(कृष्णयजुर्वेदीय पुरुषसूक्त मे भाव्यम् के स्थान पर “भव्यम्” पाठ है)

अन्वय:- इदम् सर्वं पुरुषः एव यत् भूतं यत् च भाव्यम् I उत् अमृतत्वस्य ईशानः यत् अन्नेन अतिरोहति II

अर्थ:-- यह सब वर्तमान विश्व, बीता हुआ विश्व और आगे होने वाला विश्व, यह सब परम पुरुष रूप ही है और जो अन्न रूप फल के कारण विश्व यह सब परम पुरुष रूप ही है और जो अन्न रूप फल के कारण विश्व को प्राप्त होता है, उस अमृत तत्व का स्वामी परम पुरुष ईश्वर ही है I अर्थात जो सृष्टि बन चुकी, जो बननेवाली

Page 26 of 523

Page 27 of 523

है, यह सब विराट पुरुष ही हैं | इस अमर जीव-जगत (मोक्ष) के भी वे ही स्वामी हैं और जो अन्न द्वारा उत्पन्न हो कर वृद्धि प्राप्त करते हैं, उनके भी वे ही स्वामी और स्रष्टा हैं I

भावार्थ:- जो हुआ है, जो हो रहा है, और जो आगे होगा, वह सब कुछ उस

पुरुषमें ही निहित है, उसमें ही सब कुछ विद्यमान है, जो अमृत है और जो

अमृत नहीं है, अन्न से बढ़ता है, उस सब का भी वही स्वामी है I

शब्दार्थ:- इदं = यह; सर्वं =सब कुछ; यद्, यत् =जो कुछ; भूतं = बीता हुआ;

च—और; भाव्यम = आगे होने वाला है; अन्नेन = अन्न आदि फल के द्वारा; अतिरोहति =उत्पन्न हो कर वृद्धि को प्राप्त हो रहा है; स: = वह; एव = ही; उत = तथा, और; अमृतत्वस्य = उस अमृत तत्व का; ईशान = स्वामी, ईश, स्रष्टा; विशेष—अमृत शब्द के तीन अर्थ बताये गये हैं—अमृत, जल, सुधा देवता I इसी दृष्टि इस मंत्र की अनेक

Page 27 of 523

Page 28 of 523

व्याख्यायें की गई हैं I इसमें अनुष्टुप् छन्द है I

श्रीमद्भागवत में इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया गया है:-यह जो कुछ इस समय वर्तमान है, सब परमात्मा का ही स्वरुप है, भूत और भविष्य जगत् भी परमात्मा ही है I इतना ही नहीं, वह परमात्मा मुक्ति का स्वामी है, तथापि ये जो अन्न से उत्पन्न होने वाले जीव हैं, उन सबका भी शासन- सबको नियम के अन्दर रखने वाला वह परमात्मा ही हैI

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:--- यह जो इस समय वर्तमान (जगत्) है, जो बीत गया और जो आगे होने वाला है, वह सब वे परम् पुरुष ही हैं। इसके अतिरिक्त वे देवताओं के तथा जो अन्न से (भोजन द्वारा) जीवित रहते हैं, उन सबके भी ईश्वर ही (अधीश्वर-शासक) हैं । किन्तु सर्वात्मक होने पर तो ब्रह्म सप्रपंच (सविशेष) सिद्ध होगा; क्योंकि उससे अतिरिक्त प्रपंच की सत्ता ही नहीं है,

Page 28 of 523

Page 29 of 523

इस पर श्रुति कहती है--ईशादि नौ उपनिषद् (शङ्करभाष्यार्थ) में इस भाव को कुछ यूं प्रकट किया गया है------

भाष्य—पुरुष एवेदमिति I पुरुष एवेदं सर्वं यदन्नेनातिरोहति यदिदं दृश्यते वर्तमानं यद्भूतं यच्च भव्यं भविष्यत् I किञ्च-उतामृतत्वस्ये-शान: I यच्चान्नेनाति- रोहति यद्वर्तते तस्येशान: I

अर्थ— ‘पुरुष एवेदम्’ इत्यादि I यह जो अन्न से बढ़ता है तथा यह जो वर्तमान दिखाई देता है तथा जो कुछ भूत और भविष्यत् है वह सब पुरुष ही है I इसके सिवा, वह अमृतत्व का ईशान है अर्थात् अमरण –धर्मत्व यानी कैवल्यपद का भी प्रभु है तथा जो अन्न से बढ़ता है, जो विद्यमान है उसका यह स्वामी है
I

भाव—जो कुछ भूत और भविष्यत् है एवं जो
अन्न के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है वह सब पुरुष ही है; तथा वही अमृतत्व(मुक्ति)-का भी प्रभु है I

Page 29 of 523

Page 30 of 523

स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती ईशादिनवोपनिषद् इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं
— -- ------------------------------ --------------------------- -- ---

मंत्रार्थ—जो अब से पहले हो चुका है, जो भविष्य में होने वाला है और जो खाद्य पदार्थों से इस समय बढ़ रहा है यह समस्त जगत् परम् पुरुष परमात्मा ही है और वही अमृत स्वरूप मोक्ष का स्वामी है I

व्याख्या--वह समस्त जगत् जो अब से पहले था, जो भविष्य में होने वाला है तथा जो वर्तमान कल में अन्न से वृद्धि प्राप्त कर रहा है वह कुछ और नहीं प्रत्युत परम् पुरुष परमात्मा का ही स्वरूप है I वे अपनी इच्छा से संकल्प से इस रूप में स्वयं प्रकट होते हैंI वे अमृत स्वरूप मोक्ष के एक मात्र स्वामी हैं अर्थात् बंधन से मुक्त कराकर अपनी प्राप्ति करा देते हैं I अत: अपने ही हित के लिए साधकों को उन्हीं की अनन्य भक्ति से शरण में जाना चाहिए I

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के

Page 30 of 523

Page 31 of 523

अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है

पुरुष एवेदँ् सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् I उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहतिII

यह वर्तमान विश्व, बीता हुआ विश्व और आगे होने वाला विश्व यह सब परम पुरुष रूप ही है, और जो अन्न रूप फल के कारणविश्व रूप को प्राप्त होता है उस अमृतत्व का स्वामी परम पुरुष ईश्वर ही है I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

पुरुषऽएवेदँ् सर्वं यद्भूतं यच्च
भाव्यम् I

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति
II

जो सृष्टि बन चुकी, जो बनने वाली है, वह सब विराट् पुरुष ही हैं I इस अमर

Page 31 of 523

जीव -जगत् के भी वही स्वामी हैं । जो अन्न द्वारा वृद्धि प्राप्त करते हैं , उनके भी वही स्वामी हैं ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या :-

पुरुषऽएवेदँ् सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्
। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥

पुरुष :। एव । इदम । सर्वम् । यत् । च । भाव्यम्
॥ उत । अमृतत्वस्येत्यमृतऽत्वस्य । ईशान : ।
यत् । अन्नेन । अतिरोहतीत्यतिऽरोहति ॥

पदार्थ :-- (पुरुष :) सत्यैर्गुणकर्मस्वाभावैः परिपूर्ण : (एव) (इदम्) प्रत्यक्षाऽप्रत्यक्षात्मकं जगत् (सर्वम्) सम्पूर्णम् (यत्) (भूतम्) उत्पन्नम् (यत्) (च) (भाव्यम्) उत्पत्स्यमानम् (उत्) अपि (अमृतत्वस्य) अविनाशिनो मोक्षसुखस्य कारणस्य वा (ईशान :) अधिष्ठाता (यत्) (अन्नेन) पृथिव्यादिना (अतिरोहति) अत्यन्तं वर्द्धते ।

Page 33 of 523

अन्वय:-- हे मनुष्या: ! यद्भूतं यच्च भाव्यमुतापि यदन्नेनाऽतिरोहति तदिदं सर्वममृतत्वस्येशान: पुरुष एव रचयति II

भावार्थ:-- हे मनुष्या:! येनेश्वरेण यदा
यदा सृष्टिरभूत् तदा-तदा निर्माता,इदानीं धरति पुनरविनाश्य रचिश्यति यदाधारेण सर्व वर्त्तते वर्द्धते च तमेव परेशं परमामानमुपासीध्वं नाऽस्मादितरम् II

पदार्थ:--हे मनुष्यो! (यत्) जो (भूतम्) उत्पन्न हुआ (च) और (जो) (भाव्यम्) उत्पन्न होनेवाला (उत) और (यत्) जो (अन्नेन) पृथिवी आदि के सम्बन्ध से (अतिरोहति) अत्यन्त बढ़ता है, उस (इदम्) इस प्रत्यक्ष परोक्ष रूप (सर्वम्) समस्त जगत् को (अमृतत्वस्य) अविनाशी मोक्षसुख वा कारण का (ईशान:) अधिष्ठाता (पुरुष:) सत्य गुण, कर्म, स्वभावों से परिपूर्ण परमात्मा (एव) ही रचता है II

भावार्थ:-- हे मनुष्यो! जिस ईश्वर ने जब-जब सृष्टि हुई तब-तब रची, इस समय धारण करता फिर विनाश करके रचेगा I जिसके आधार से सब वर्तमान है और बढ़ता है, उसी सबके स्वामी

Page 33 of 523

Page 34 of 523

परमात्मा की उपासना करो, इससे भिन्न की नहीं II

एतावानित्यस्य नारायण ऋषि: I पुरुषो देवता
I निचृदनुष्टुप् छन्द: I गान्धार: स्वर: II पुनस्तमेव विषयमाह II फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है II

____ _________

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुष: I

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि II (पु.सू.3)

अन्वय:- एतावान अस्य महिमा पूरूष: च अत: ज्यायान् I विश्वा भूतानि अस्य पादो अस्य त्रिपाद अमृतं दिवि II

शब्दार्थ:--एतावान्----पूर्वोक्त वर्णित, इतना तो; अस्य---इसका; महिमा-----

माहात्म्य; पुरुष:----पुरुष, ब्रह्म; अत:---- इसलिए, महिमा से भी; ज्यायान्---महान, बड़ा; पाद:--भाग, हिस्सा, अंश; विश्वा---सम्पूर्ण विश्व का; जगत्---प्राणी समूह; त्रिपाद----

Page 34 of 523

Page 35 of 523

तीन भाग; अमृतम्---अमृत है,(अर्थात वह) दिवि — द्युलोक; अन्तरिक्ष, स्वर्ग;

अर्थ- पूर्वोक्त श्लोकों में जो वर्णन
किया गया है इतना तो त्रिकालात्मक विश्व
इस पुरुष की महिमा ही है और वह पुरुष स्वयं तो इस विश्व से अत्यधिक बड़ा है महान हैI सभी प्राणि-समूह समष्टि –ब्रह्मांड, इस पुरुष के चतुर्थ भाग(अंश) हैं I इस पुरुष का त्रिपात्-रुप अविनाशी और अपने ही प्रकाशात्मक स्वरुप में स्थित है I अर्थात विराट पुरुष की महत्ता अति विस्तृत है I इस श्रेष्ठ पुरुष के एक चरण (अंश) में सभी प्राणी हैं और तीन भाग (अंश) अनंत अंतरिक्ष में स्थित हैं I

श्रीमद्भागवत में इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया गया है:---भूत, भविष्य और वर्तमान काल से सम्बन्ध रखने वाला जितना भी जगत् है----यह सब इस पुरुष की महिमा है,
इस परमात्मा का विभूति-विस्तार है I उसका पारमार्थिक स्वरूप इतना ही नहीं है, वह पुरुष इस ब्रह्मांडमय विराट्स्वरूप से
भी बहुत बड़ा है I यह सारा विश्व (ये तीनों लोक) तो उसके एक पाद में है, उसकी एक चौपाई

Page 35 of 523

Page 36 of 523

में अर्थात एक पाये में समाप्त हो जाते हैं I अभी उसके तीन पाद और शेष हैं I यह त्रिपादस्वरूप अमृत है---अविनाशी है और
परम प्रकाशमय द्युलोक अर्थात् अपने स्वरूप में ही स्थित है I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- यह भूत, भविष्य, वर्तमान से सम्बद्ध समस्त जगत् इन है। उन परमेश्वर की एक पाद विभूति (चतुर्थांश)- में ही यह पंच भूतात्मक विश्व है । उनकी शेष त्रिपाद विभूति में शाश्वत दिव्य लोक [(वैकुण्ठ लोक—जहाँ किसी प्रकार की कोई कुंठा नहीं होती), गोलोक, साकेत धाम अथवा ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि] हैं ।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च
पूरुष: I

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि II

Page 36 of 523

Page 37 of 523

यह त्रिकालात्मक विश्व इस पुरुष की महिमा ही है और यह पुरुष स्वयं तो इस

विश्व से अधिक है I सभी प्राणी समूह इस पुरुष के चतुर्थ भाग हैं I इस पुरुष का त्रिपात् रूप अविनाशी और अपने ही प्रकाशात्मक स्वरूप में स्थित हैI

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुष: I

पादोस्य विश्वा भूतानि
त्रिपादस्यामृतं दिवि II

विराट् पुरुष की महत्ता अति विस्तृत है I इस श्रेष्ठ पुरुष के एक चरण में सभी प्राणी हैं और तीन भाग अनन्त अन्तरिक्ष में स्थित हैं I

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या:-

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च
पूरुष: I

Page 37 of 523

पादोऽस्य विश्वा भूतानि
त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥

एतावान् । अस्य । महिमा । अत:। ज्यायान् । च ।
पूरुष :॥ पाद :। अस्य । विश्वा ।

भूतानि । त्रिपादिति । त्रिऽपात् । अस्य ।
अमृतम् । दिवि ॥

पदार्थ :-- (एतावान्) दृश्यादृश्यं
ब्रह्माण्डरूपम् (अस्य) जगदीश्वरस्य
(महिमा) माहात्म्यम् (अत:) अस्मात्
(ज्यायान्) अतिशायेन प्रशस्तो महान् (च)
(पूरुष :) परिपूर्ण : (पाद :) एकोंश : (अस्य)
(विश्वा) विश्वानि सर्वाणि (भूतानि)
पृथिव्यादीनि (त्रिपात्) त्रय : पादा :
यस्मिन् (अस्य) जगत्स्रष्टु : (अमृतम्)
नाशरहितम् (दिवि) द्योतनात्मके स्वरूपे ॥

अन्वय :---हे मनुष्या :! अस्य
परमेश्वरस्यैतावान् महिमाऽतोऽयं पूरुषो
ज्यायानस्य च विश्वा भूतान्येक : पादोऽस्य
त्रिपादमृतं दिवि वर्त्तते ।

भावार्थ :---इदं सर्वं
सूर्यचन्द्रादिलोकलोकान्तरं चराचरं
यावज्जगदस्ति

Page 39 of 523

तच्चित्रविचित्ररचनानुमानेनेश्वरस्य महत्त्वं
सम्पाद्योत्पत्तिस्थितिप्रलयरूपेण कालत्रये ह्रासवृद्धयादिनाऽपि परमेश्वरस्य चतुर्थांशे तिष्ठति नैवास्य तुरीयांशस्याप्यवधिं प्राप्नोति । अस्य सामर्थ्यस्यांशत्रयं स्वेऽविनाशिनि मोक्षस्वरूपे सदैव वर्त्तते नानेन कथनेन तस्याऽनन्तत्वं विहन्यते, किन्तु जगदपेक्षया तस्य महत्त्वं जगतो न्यूनत्वञ्च ज्ञाप्यते ।।

पदार्थ:-- हे मनुष्यो! (अस्य) इस जगदीश्वर का (एतावान्) यह दृश्य-अदृश्य ब्रह्माण्ड (महिमा) महत्त्वसूचक है (अत:) इस ब्रह्माण्ड से यह (पुरुष:) परिपूर्ण परमात्मा (ज्यायान्) अति प्रशंसित और बड़ा है (च) और (अस्य) इस ईश्वर के (विश्वा) सब (भूतानि) पृथिव्यादि चराचर जगत् एक (पाद:) अंश है और (अस्य) इस जगत्स्रष्टा का (त्रिपाद्) तीन अंश (अमृतम्) नाशरहित महिमा (दिवि) द्योतात्मक अपने स्वरूप में है ।।

भावार्थ:-- यह सब सूर्य-चन्द्रादि लोक-लोकान्तर चराचर जितना जगत् है, वह सब

Page 39 of 523

Page 40 of 523

चित्र-विचित्र रचना के अनुमान से परमेश्वर के मह्त्त्व को सिद्ध कर उत्पत्ति स्थिति और प्रलय रूप से तीनों काल में घटने-बढने
से भी परमेश्वर के चतुर्थांश में ही रहता, किन्तु इस ईश्वर के चौथे अंश की भी अवधि को नहीं पाता और इस ईश्वर का अनन्तपन नहीं
बिगडता, किन्तु जगत् की अपेक्षा उसका
महत्व और जगत् का न्यूनत्व जाना जाता है ।।

त्रिपादित्यस्य नारायण ऋषि:। पुरुषो
देवता। अनुष्टुप छन्द: । गान्धार: स्वर: ।।
पुनस्तमेव विषयमाह ।। फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।-----------

ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुष: पादोऽस्येहाभवत् पुन: I

ततो विश्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने
अभि II (पु॰ सू॰ 4)

अन्वयः--- त्रिपाद पुरुषः ऊर्ध्व उदैत्, अस्य पादो इह पुनः अभवत् I ततो विश्वं

व्यक्रामत् साशना शने अभि I

शब्दार्थ:--- त्रिपाद---तीन पैरों (अंशों) से; ऊर्ध्व---ऊपर; उदैत---उदित हुआ, प्रकट हुआ, प्रकाशित हुआ; पादो---चरण, अंश; अस्य—

Page 40 of 523

Page 41 of 523

उसके; इह---यहां; पुन:-- फ़िर् से; अभवत्---हो गया; तत:--तब; विश्वम्--- विश्व को; व्यक्रामत्----अतिक्रमण कर लिया; साशना--- स्वेच्छा से; शने---धीरे-धीरे; अभि---अच्छी तरह, भलिभांति;

अर्थ:-- वह पूर्ण पुरुष अपने तीन पद,अर्थात तीन चरण अर्थात तीन पग ऊपर

उठ गया और स्थित हो गया, उसके पद यहाँ फिर से प्रकट होगये (दिखाई देने

लगे) अर्थात वह परम पूर्ण पुरुष रूप से प्रकट होगया I तब उसने स्वेच्छा से

धीरे धीरे इस सम्पूर्ण रूप से भलीभांति, अच्छी तरह से अतिक्रमण कर लियाI

श्रीमद्भागवत् में इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- यह त्रिपाद पुरुष ऊपर उठा हुआ है अर्थात वह परमात्मा अज्ञान के कार्यभूत इस संसार से पृथक् तथा यहाँ के गुण दोषों
से अछूता रह कर ऊँची स्थिति में विराजमान है I उसका एक अंश मात्र माया के सम्पर्क में आकर यहाँ जगत् के रूप में उत्पन्न हुआ, फिर वह मायावश जड़-चेतनमयी नाना प्रकार की

Page 41 of 523

Page 42 of 523

सृष्टि के रूप में स्वयं ही फैलकर सब ओर व्याप्त हो गया I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है-चार भागोंवाले विराट पुरुष केएक भाग
में यह सारा संसार, जड़ और चेतन विविध रूपों में समाहित है I इसके तीन भाग अनंत अंतरिक्षमें समाये हुए हैं I

महिधर ने साशनाशने का अर्थ स्वर्ग
एवं मोक्ष से लिया है जबकि मैकडोनल ने इसका अर्थ खाने वाले और न खाने वाले माना है एवं पीटर्सन ने सजीव और निर्जीव संसार किया है, जो कि अमान्य लगता है क्योंकि संसार एक ही है जिसमें सजीव निर्जीव अर्थात जड़-चेतन, स्थावर-जंगम सभी शामिल हैं I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- वे परम् पुरुष स्वरूपत: इस

मायिक जगत् से परे त्रिपाद विभूति में प्रकाशमान हैं (वहां माया का प्रवेश न होने से उनका स्वरूप नित्य प्रकाशमान है) इस विश्व के रूप में उनका एक पाद ही प्रकट हुआ है अर्थात एक पाद से वे ही विश्वरूप भी हैं, इसलिए वे ही सम्पूर्ण जड़ एवं चेतनमय-

Page 42 of 523

उभयात्मक जगत् को परिव्याप्त किये हुए हैं
।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि ,
मथुरा , द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के
अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों
व्याख्या है जो इस प्रकार है :-

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुष :
पादोऽस्येहाभवत्पुन : ।

ततो विश्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने
अभि।।

संसार के स्पर्श से हीन यह तीन पद वाला परम
पुरुष उच्च स्थान में स्थित हुआ है । इसका
एक पाद इस संसार में सृष्टि संहार द्वारा
बारम्बार आवागमन करता है और विविध रूप
होकर स्थावर , जंगम प्राणियों को देखता हुआ
व्याप्त करता है ।

वाजसनेयि —माध्यन्दिन —शुक्ल यजुर्वेद —
संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या
इस प्रकार है :--

त्रिपादूर्ध्वऽउदैत्पुरुष :
पादोस्येहाभवत् पुन :।

ततो विश्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥

चार भागों वाले विराट् पुरुष के एक भाग में यह सारा संसार जड़ और चेतन विविध रूपों में समाहित है । इसके तीन भाग अनन्त अन्तरिक्ष में समाये हुए हैं ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यांसमलङ्कृतम् व्याख्या :-

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुष : पादोऽस्येहाभवत् पुन :।

ततो विश्वङ् व्यक्रामत्साशनानशनेऽअभि ॥

त्रिपादिति त्रिऽपात् । ऊर्ध्व :। उत् । ऐत् । पुरुष :। पाद :। अस्य । इह । अभवत् । पुनरिति पुन :॥ तत:। विष्वङ् । वि । अक्रामत् । साशनानशनेऽइति साशनानशने । अभि॥

पदार्थ :-- (त्रिपात्) त्रय : पादा अंशा यस्य स: (ऊर्ध्व :) सर्वेभ्य : उत्कृष्ट : संसारात् पृथक् मुक्तिरूप : (उत्) (ऐत्) उदेति (पुरुष :) पालक: (पाद :) एको भाग : (अस्य) (इह)

जगति (अभवत्) भवति (पुन :) पुन : पुन : (ततः) ततोऽनन्तरम् (विषवङ्) यो विषु सर्वत्राञ्चति प्राप्नोति (वि) विशेषेण (अक्रामत) व्याप्नोति (साशनानशने) अशनेन भोजनेन सह वर्त्तमानं साशनं न विद्यतेऽशनं यस्य तदनशनं साशनञ्चानशनञ्च ते प्राण्यपाणिनौ (अभि) अभिलक्ष्य ॥

भावार्थ :--अयं परमेश्वर : कार्यजगत : पृथगंशत्रयेण प्रकाशित : सन् एकांशस्वसामर्थ्येन सर्वं जगत्पुन : पुनरुत्पादयति पश्चात् तस्मिन् चराऽचरे जगति व्याप्य तिष्ठति ॥

पदार्थ :-- पूर्वोक्त (त्रिपात्) तीन अंशों वाला (पुरुष :) पालक परमेश्वर (ऊर्ध्व) सबसे उत्तम मुक्तिस्वरूप संसार से पृथक (उत् , ऐत) उदयको प्राप्त होता है । (अस्य) इस पुरुष का (पाद :)एक भाग (इह) इस जगत् में (पुन :) बार -बार उत्पत्ति - प्रलय के चक्र से (अभवत्) होता है (ततः) इसके अनन्तर (साशनानशने) खाने वाले चेतन और न खाने वाले जड़ इन दोनों के (अभि) प्रति (विषवङ्) सर्वत्र प्राप्त होता हुआ (वि ,अक्रामत्) विशेष कर व्याप्त होता है ॥

भावार्थ :--यह पूर्वोक्त परमेश्वर कार्य जगत् से पृथक् तीन अंश से प्रकाशित हुआ एक अंश अपने सामर्थ्य से सब जगत् को वार -वार उत्पन्न करता है , पीछे उस चराचर जगत् में व्याप्त होकर स्थित है।।४॥

ततो विराडित्यस्य नारायण ऋषिः। स्रष्टा देवता। अनुष्टप् छन्दः। गाधारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह । फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

ॐ ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुष : ।

स जातो अत्यरिच्यत
पश्चाद्भूमिमथो पुर : ॥

(पु॰सू॰ 5-कृष्ण यजुर्वेदीय पु ० सू ० में ततो की जगह "तस्मात् " पाठ है)

अन्वयः --- ततो विराट् अजायत विराज : अधि पुरुषः । स जात : अत्यरिच्यत

पश्चाद् भूमिं अथ : पुर : ।

शब्दार्थ :-- तत:--तब; विराट् ---विस्तृत ; अजायत—--उत्पन्न हुआ ; विराज :---प्रकाशमान ;

Page 47 of 523

अधि पुरुष:----आदि पुरुष; स—उससे; जात:-- उत्पन्न हुए; अत्यरिच्यत---अनेक रुपों में, समष्टि; पश्चाद्----बादमें; भूमिं॑---भूमि को; अथ:---तथा; पुर:----भुवन, (14 भुवन);

अर्थ:-- तब वह प्रकाशमान आदिपुरुष प्रकट हुआ, (उत्पन्न हुआ) I उससे ब्रह्मांड उसके बाद भूमि अर्थात पृथ्वी और तीन लोक 14 भुवन आदि उत्पन्न हुए I

श्रीमद्भागवत् में इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- उस आदिपुरुष परमात्मा से विराट् की उत्पत्ति हुई ---यह ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ I इस ब्रह्मांड के ऊपर इसका अभिमानी एक पुरुष प्रकट हुआ I तात्पर्य यह की परमात्मा ने अपनी माया से विराट् ब्रह्मांड की रचना कर स्वयं ही उसमें जीव रूप से प्रवेश किया I वे ही जीव ब्रह्मांड का अभिमानी देवता (हिरण्यगर्भ) हुआ I इस प्रकार उत्पन्न हो कर वह विराट् पुरुष पुन: देवता, तिर्यक् और मनुष्य आदि अनेकों रूपों में प्रकट हुआ I इसके बाद उसने भूमि को उत्पन्न किया, फिर जीवों के शरीरों की रचना की I

Page 47 of 523

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है -----उस विराट पुरुष से यह

ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ । उस विराट से समष्टि जीव उत्पन्न हुए | वही देहधारी रूप में सबसे श्रेष्ठ हुआ , जिसने सबसे पहले पृथ्वी को , फिर शरीरधारियों को उत्पन्न किया ।

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद -कथाङ्क में अर्थ :- उन्हीं आदि पुरुष से विराट् (ब्रह्माण्ड) उत्पन्न हुआ । परम् पुरुष ही विराट् के ,आदिपुरुष , अधिपुरुष -अधिदेवता (हिरण्यगर्भ)-रूप से उत्पन्न हो कर अत्यंत प्रकाशित हुए। पीछे उन्होंने भूमि (लोकादि) तथा शरीर (देव , मानव , तिर्यक , त्रियंच आदि) उत्पन्न किये ।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि , मथुरा , द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है :-

ततो विराडजायत विराजो ऽ अधि पूरुष : ।

स जातो ऽ अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुर : ॥

Page 49 of 523

उस आदिपुरुष से विराट् की उत्पत्ति हुई I विराज का अधिकरण करके एक ही

पुरुष हुआ I वह विराट् पुरुष उत्पन्न होकर विभिन्न रूप वाला हुआ और उसने

पृथ्वी की रचना कर सप्तधातु वाले देहों की रचना की I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुष: I स
जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुर:I

उस विराट् पुरुष से यह ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ I उस विराट् से समष्टि जीव उत्पन्न हुए I वही देहधारी रूप में सबसे श्रेष्ठ हुआ, जिसने सबसे पहले पृथ्वी को, फिर शरीरधारियों को उत्पन्न किया I

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं
संस्कृतार्यभाषाभ्यांसमलङ्कृतम् व्याख्या:-

ततो विराडजायत विराजोs अधि पूरुष: I

Page 49 of 523

स जातो ऽ अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुर : ll

ततःl विराडिति विऽराट्। अजायत। विराज इति विऽराज : । अधि। पूरुष :l पुरुषऽइति पुरुष :ll सःl जात :l अति l अरिच्यत l पश्चात् l भूमिम् l अथोऽइत्यथो पुर :।।

पदार्थ :-- (ततः) तस्मात् पूर्णादादिपुरुषात् (विराट्) विविधै : पदार्थै राजते

प्रकाशते स विराट् ब्रह्माण्डरूप : (अजायत) जायते (विराज :) (अधि) उपरि अधिष्ठाता (पूरुष :) परिपूर्ण : परमात्मा (सः) (जात :) प्रादुर्भूत : (अति) (अरिच्यत) अतिरिक्तो भवति (पश्चात्) (भूमिम्) (अथो) (पुर :) पुरस्ताद्वर्तमान :।।

अन्वय :--हे मनुष्यास्ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुष अधो स पुरो जातोऽरिच्यत पश्चाद् भूमिं जनयति तं विजानीत।।

भावार्थ :-- परमेश्वरादेव सर्वं समष्टिरूपं जगज्जायते स च तस्मात् पृथग्भूतो व्याप्तोऽपि तत्कल्मषालिप्तोऽस्य सर्वस्याधिष्ठाता

Page 51 of 523

भवति। एवं सामान्येन जगन्निर्माणमुक्त्वा विशेषतया भूम्यादिनिर्माणं क्रमेणोच्यते।।

पदार्थ:-- हे मनुष्यो! (तत:) उस सनातन पूर्ण परमात्मा से (विराट्) विविध पदार्थों से प्रकाशमान विराट् ब्रह्माण्डरूप संसार (अजायत) उत्पन्न होता (विराज:) विराट् संसार के (अधि) ऊपर अधिष्ठाता (पूरुष:) परिपूर्ण परमात्मा होता है, (अथो) इसके अनन्तर (स:) वह पुरुष (पुर:) पहिले से (जात:) प्रसिद्ध हुआ (अति, अरिच्यत) जगत् से अतिरिक्त होता है (पश्चात्) पीछे (भूमिम्) पृथिवी को उत्पन्न करता है, उसको जानो।।

भावार्थ:-- परमेश्वर ही से सब समष्टिरूप जगत् उत्पन्न होता है, वह उस जगत्

से पृथक उसमें व्याप्त भी हुआ उसकेदोषों में लिप्त न होके इस सबका अधिष्ठाता है ।
इस प्रकार सामान्य कर जगत् की रचना कहके विशेष कर भूमि आदि की रचना को क्रम से कहते हैं ।।

तस्मादित्यस्य नारायाण ऋषि:। पुरुषो देवता।। विराडनुष्टुप छन्द:। गान्धार:

Page 51 of 523

स्वर :।। पुनस्तमेव विषयमाह।। फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है।।

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत : संभृतं पृषदाज्यम् ।

पशून् ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये ॥
(पु॰सू॰ 6) (कृष्ण यजुर्वेदीय पु ० सू ० में पाठ इस प्रकार है ----ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ; जो कि इसके 14 वें श्लोक में दिया है)

अन्वय :--- तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत : पृषदाज्यम् पशून् तांश्चक्रे वायव्यान् अरण्यान् ग्राम्या : च ये ।

शब्दार्थ :--- तस्माद् ----उससे ; यज्ञात् ----- यज्ञ करने से ; सर्वहुत :---सब यज्ञ , हवन करने से ; उत्पन्न किया ; पृषदाज्यम् ---- इसके पश्चात् ; पशून् ----पशु ; तांश्चक्रे ----इसी कडी के , इसी प्रकार के ; वायव्या --वायु ; अरण्य ----वन; ग्राम्या :----गांव ; च---और; ये ---- ये ;

Page 53 of 523

अर्थ:-- उस यज्ञ से सब यज्ञ, हवन करने से इसके पश्चात पशु और इसी कड़ी के (इसीप्रकार के); वायु; वन; ग्राम(गाँव) व अन्यान्य को उत्पन्न किया I

श्रीमद्भागवत् में इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- जिसमें सब कुछ हवन

किया गया, उस पुरुष रुप यज्ञ से दही-घी आदि सामग्री उत्पन्न हुई I पुरुष ने

वन में उत्पन्न होने वाले हिरण आदि और गाँवों में होने वाले गाय, घोड़े आदि

वायु देवता-सम्बन्धी प्रसिद्ध पशुओं को भी उत्पन्न किया I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है-----

उस सर्वश्रेष्ठ विराट प्रकृति यज्ञ से दधियुक्त घृत प्राप्त हुआ(जिससे विराट पुरुष

की पूजा होती है) | वायुदेव से संबंधित पशु हरिण, गौ, अश्वादि की उत्पत्ति उस विराट पुरुष के द्वारा ही हुई I

Page 53 of 523

Page 54 of 523

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- जिसमें सबकुछ हवन किया गया है, उस यज्ञपुरुष से उसी ने दही, घी आदि उत्पन्न किये और वायु में, वन में, एवं ग्राम में रहने योग्य पशु उत्पन्न किये।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत: संभृतं पृषदाज्यम् I

पशूँताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये II

उस सर्वात्मा की जिस यज्ञ में पूजा होती है, उस यज्ञ से दधि युक्त घृत सम्पादित हुआ I उसी पुरुष ने उन वायु देवता से सम्बन्धित पशुओं की उत्पत्ति की I वे पशु हरिण आदि तथा गो, अश्व आदि हैं I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

Page 54 of 523

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत : सम्भृतं
पृषदाज्यम् ।

पशूँताँश्चक्रे
वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये ॥

उस सर्वश्रेष्ठ विराट् प्रकृति यज्ञ से
दधियुक्त घृत प्राप्त हुआ (जिससे विराट्
पुरुष

की पूजा होती है) वायुदेव से संबन्धित पशु
हरिण गौ , अश्वादि की उत्पत्ति उस
विराट्पुरुष के द्वारा ही हुई ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना
निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां
समलङ्कृतम् व्याख्या :-
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत : सम्भृतं
पृषदाज्यम् ।

पशूँताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्
ग्राम्याश्च ये ।।

तस्मात् । यज्ञात् । सर्वहुत इति
सर्वऽहुत :। सम्भृतमिति सम्ऽभृतम्। पशून्।
तान् । चक्रे । वायव्यान् । आरण्या :।
ग्राम्या :। च । ये ।

Page 56 of 523

पदार्थ:-- (तस्मात्) पूर्वोक्तात् (यज्ञात्) पूजनीयात् पुरुषात् (सर्वहुत:) सर्वैर्हूयत आदीयते तस्मात् (सम्भृतम्) सम्यक् सिद्धं जातम् (पृषदाज्यम्) दध्याज्यादि भोज्यं वस्तु (पशून्) (तान्) (चक्रे) करोति (वायव्यान्) वायुवद्गुणान् (आरण्या:) अरण्ये भवा: सिहादय: (ग्राम्या:) ग्रामे भवा गवादय: (च) (ये)l

अन्वय:-- हे मनुष्यास्तस्मात् सर्वहुतो यज्ञात् सर्वं पृषदाज्यं सम्भृतं य आरण्या ग्राम्याश्च तान् वायव्यान् पशून् यश्चक्त्रे तं विजानीत्।।

पदार्थ:-- हे मनुष्यो! (तस्मात्) उस पूर्वोक्त (सर्वहुत:) जो सबसे ग्रहण किया जाता उस (यज्ञात्) पूजनीय पुरुष परमात्मा से सब (पृषदाज्यम्) दध्यादि भोगने योग्य वस्तु (सम्भृतम्) सम्यक् सिद्ध उत्पन्न हुआ (ये) जो (आरण्या:) वन के सिंह आदि (च) और (ग्राम्या:) ग्राम में हुए गौ आदि हैं (तान्) उन (वायव्यान्) वायु के तुल्य गुणों वाले (पशून्) पशुओं को जो उत्पन्न करता है, उसको तुम लोग जानोll भावार्थ:-- जिस सबको ग्रहण करने योग्य, पूजनीय परमेश्वर ने सब

Page 56 of 523

जगत् के हित के लिये दही आदि भोग्य पदार्थ
और ग्राम के तथा वन के पशु बनाये हैं , उसकी
सब लोग उपासना करो ॥

तस्मादित्यस्यस्य नारायण ऋषि :।
स्रष्टेश्वरो देवता । अनुष्टुप छन्द :।
गान्धार : स्वर :।

पुनस्तमेव विषयमाह । फिर उसी विषय को अगले
मन्त्र में कहा है ।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋच : सामानि
जज्ञिरे ।

छन्दान्सि जज्ञिरे तस्माद्
यजुस्तस्मादजायत ॥ (पु ० सू ० 7)

(कृष्ण यजुर्वेदीय पु ० सू ० में पाठ इस
प्रकार है ----ॐ तं य॒ज्ञं ब॒र्हिषि॒
प्रौक्ष॒न्पुरु॑षं जा॒तम॑ग्र॒तः । तेनं
दे॒वा अ॑यजन्त सा॒ध्या ऋष॑यश्च॒ ये ॥

तम् । यज्ञम् । बर्हिषि । प्र । औक्षन् ।
पुरुषम् । जातम् । अग्रतः । तेन । देवाः ।

Page 58 of 523

अयजन्त। साध्याः । ऋषयः । च। ये ॥ ७ ॥ जबकि यहां 9 वें श्लोक में प्रदर्शित है)

अन्वय:--- तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत: ऋच: सामानि जज्ञिरे I तस्माद् छन्दान्सि जज्ञिरे तस्माद् यजु: अजायत II

शब्दार्थ:---- तस्माद्---उससे; यज्ञात्--- यज्ञ से; सर्वहुत:---सब हवन करने से; ऋच:-- ऋग्वेद; सामानि---सामवेद; जज्ञिरे---- उत्पन्न हुए; तस्माद्---उसी से; छन्दान्सि-- छन्द; जज्ञिरे----उत्पन्न हुए; तस्माद्--- उसीसे; यजु:---यजुर्वेद; अजायत----उत्पन्न हुआ;

अर्थ:-- उस यज्ञ से सभी हवन करने से ऋग्वेद; सामवेद; उत्पन्न हुए उसीसे छंद उत्पन्न हुए; उसीसे यजुर्वेद उत्पन्न हुआ I

श्रीमद्भागवत् में इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है--जिसमें सब कुछ हवन

किया गया है उस यज्ञ पुरुष से ऋग्वेद, और सामवेद प्रकट हुए, उसी से गायत्री आदि छन्दों की उत्पत्ति हुई तथा उसी से यजुर्वेद का भी प्रादुर्भाव हुआ I

Page 58 of 523

Page 59 of 523

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है-----

उस विराट यज्ञ पुरुष से ऋग्वेद एवं सामवेद का प्रकटीकरण हुआ | उसी से यजुर्वेद एवं अथर्ववेद का प्रादुर्भाव हुआ अर्थात् वेद की ऋचाओं का प्रकटीकरण हुआ I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- उसी सर्वहूत यज्ञपुरुष से ऋग्वेद,

एवं सामवेद के मंत्र उत्पन्न हुए, उसी से यजुर्वेद के मन्त्र हुए और उसी से सभी छन्द भी उत्पन्न हुए ।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत s ऋच: सामानि जज्ञिरे I

छन्दाँसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत II

Page 59 of 523

Page 60 of 523

उस सर्वात्मा यज्ञ पुरुष से ऋक्, साम प्रकट हुए, उसी से छंद(अथर्व) प्रकट हुए और उसी से यजुर्वेद प्रकट हुआ I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त कीव्याख्या इस प्रकार है:--

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतऽऋच: सामानि जज्ञिरे I

छन्दाँ्सि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत II

उस विराट् यज्ञपुरुष से ऋग्वेद एवं सामवेद का प्रकटीकरण हुआ I उसी से यजुर्वेद एवं अथर्ववेद का प्रादुर्भाव हुआ अर्थात् वेद की रिचाओं का प्रकटीकरण हुआ I

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं
संस्कृतार्यभाषाभ्यांसमलङ्कृतम् व्याख्या:-

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतऽऋच: सामानि जज्ञिरे I

Page 60 of 523

छन्दाँ्सि जज्ञिरे
तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥

तस्मात् । यज्ञात् । सर्वहुत इति सर्वऽहुत :। ऋच:। सामानि। जज्ञिरे।। छन्दाँ्सि । जज्ञिरे । तस्मात्। यजु :। तस्मात् । अजायत्।

पदार्थ :-- (तस्मात्) पूर्णात् (यज्ञात्त) पूजनीयतमात् (सर्वहुत :) सर्वे जुह्वति सर्वं

समर्पयन्ति वा यस्मै (ऋच:) ऋग्वेद : (सामानि) सामवेद : (जज्ञिरे) जायन्ते

(छन्दांसि) अथर्ववेद : (जज्ञिरे) (तस्मात्) परमात्मन : (यजु :) यजुर्वेद : (तस्मात्) (अजायत) जायते ।

अन्वय :-- हे मनुष्या :! युष्माभिस्तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत : परमात्मन : ऋच: सामानि जज्ञिरे तस्माच्छन्दाँ्सि जज्ञिरे तस्माद्यजुरजायत स विज्ञातव्य :।

भावार्थ :--हे मनुष्या :! भवन्तो यस्मात् सर्वे वेदा जायन्ते तं परमात्मानमुपासीरन् वेदाँश्चाधीयीरन्

तदाज्ञानुकूलं च वर्त्तित्वा सुखिनो भवन्तु ।।

पदार्थ :-- हे मनुष्यो ! तुमको चाहिये कि (तस्मात्) उस पूर्ण (यज्ञात्) अत्यन्त

पूजनीय (सर्वहुत:) जिसके अर्थ सब लोग समस्त पदार्थों को देते वा समर्पण करते उस परमात्मा से (ऋच:) ऋग्वेद (सामानि) सामवेद (जज्ञिरे) उत्पन्न होते (तस्मात्) उस परमात्मा से (छन्दांसि) अथर्ववेद (जज्ञिरे) उत्पन्न होता और (तस्मात्) उस पुरुष से (यजु:) यजुर्वेद (अजायत) उत्पन्न होता ।

भावार्थ :-- हे मनुष्यो ! आप लोग जिससे सब वेद उत्पन्न हुए हैं, उस परमात्मा की उपासना करो, वेदों को पढो और उसकी आज्ञा के अनुकूल वर्त के सुखी होओ ।

तस्मादित्यस्य नारायण ऋषि: । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप छन्द:। गान्धार: स्वर:।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।। फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

ॐतस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादत : ।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता
अजावय: ।। (पु॰ सू॰ 8)

{ (कृष्ण यजुर्वेदीय पु o सू o में पाठ इस
प्रकार है ----ॐ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः
संभृतं पृषदाज्यम् —अन्वय :-- तस्मात्
यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषत् आज्यम् ---
अर्थ ---उस यज्ञ से सब हवन करने से जल , घी ,
तरल उत्पन्न हुए) ।}

अन्वय :---- तस्माद अश्वा अजायन्त , ये के च
उभय दत:। तस्मात् ह् गावो जज्ञिरे , तस्मात्
जाता अजावय : ।

शब्दार्थ :--- तस्माद ----उससे ; अश्वा ----घोडे ;
ये ---जो ; के ---कि ; च---और; उभय---दोनों ओर ;
दत:---दांत वाले हैं ; अजायन्त ----उत्पन्न
हुए ; तस्मात् —उसीसे ; गावो ---गौएं ; ह् ---भी ;
जज्ञिरे ----उत्पन्न हुई ; तस्मात् ----उसीसे ;

Page 64 of 523

जाता---उत्पन्न हुई; अजावय:----भेड-बकरियां आदि;

अर्थ:--उससे घोड़े जो कि दोनों ओर (तरफ) दांत वाले हैं उत्पन्न हुए हैं I और उसी से गौएँ भी उत्पन्न हुईं, उसीसे भेड़, बकरियां आदि उत्पन्न हुए I

श्रीमद्भागवत् में इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है---उस यज्ञपुरुष से घोड़े उत्पन्न हुए, इनके अतिरिक्त भी जो नीचे ऊपर दोनों ओर दांत रखने वाले खच्चर, गदहे आदि प्राणी हैं, ये भी उत्पन्न हुए I उसी से गौएँ उत्पन्न हुई और उसी से भेड़ों और बकरों की उत्पत्ति हुई I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है-----उस विराट यज्ञ पुरुष से दोनों तरफ दाँतवाले घोड़े हुए और उसी विराट पुरुष से गौएँ, बकरिया और भेड़ आदि पशु भी उत्पन्न हुए I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:------उसी से घोड़े उत्पन्न हुए,

Page 64 of 523

उसी से गायें उत्पन्न हुईं और उसी से भेड़ -
बकरियां उत्पन्न हुईं। वे दोनों ओर दांतों
वाले हैं ।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि ,
मथुरा , द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के
अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों
व्याख्या है जो इस प्रकार है :-

तस्मादश्वा ऽ अजायन्त ये के चोभयादत : l

गावो ह जज्ञिरे
तस्मात्तस्माज्जाता ऽ अजावय: ll

उस यज्ञ पुरुष से अश्व , गर्दभ , ऊपर नीचे के
दांतों वाले पशु , गौएं और भेड़

बकरी आदि उत्पन्न हुए l

वाजसनेयि —माध्यन्दिन —शुक्ल यजुर्वेद —
संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या
इस प्रकार है :--

तस्मादश्वाऽअजायन्त ये के चोभयादत : l गावो
ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता ऽअजावय : ll

उस विराट् यज्ञपुरुष से दोनों तरफ दांत
वाले घोड़े हुए और उसी विराट् पुरुष से

गौएँ , बकरियां और भेड़ें आदि पशु भी उत्पन्न हुए ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनानिर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यांसमलङ्कृतम् व्याख्या :-

तस्मादश्वाऽअजायन्त ये के चोभयादत : ।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाताऽअजावय : ॥

तस्मात् । अश्वा :। अजायन्त । ये । के । च । उभयादत :। गाव :। ह । जज्ञिरे । तस्मात्

। तस्मात् । जाता :। अजावय:।

पदार्थ :-- (तस्मात्) परमेश्वरात् (अश्वा :) तुरङ्गा : (अजावयन्त) उत्पन्ना : (ये) (के) (च) गर्द्दभादय : (उभयादत :)उभयोरध ऊर्ध्वभागयोर्दंता येषान्ते (गाव :) धेनव :। गाव इत्युपलक्षणमेकदताम् । (ह) किल (जज्ञिरे) उत्पन्ना : (तस्मात्) (तस्मात्) (जाता :) उत्पन्ना : (अजावय:) अजाश्चावयश्च ते ।

Page 67 of 523

अन्वय:-- हे मनुष्या:! युष्माकमश्वा ये के चोभयादत: सन्ति ते तस्मादजायन्त l तस्माद् गावो ह जज्ञिरे तस्मादजावयो जाता इति वेद्यम्

भावार्थ:-- हे मनुष्या:! यूयं गवाश्वादयो ग्राम्या: सर्वे पशवो यस्मात् सनातनात् पूर्णात्
पुरुषादेवोत्पन्नास्तस्याज्ञोल्लङ्घनं कदापि मा कुरुत II

पदार्थ— हे मनुष्यों! तुमको (अश्वा:) घोड़े तथा (ये) जो (के) कोई (च) गदहा

आदि (उभयादत:) दोनों ओर ऊपर-नीचे दांतों वाले हैं, वे (तस्मात्) उस

परमेश्वर से (अजायन्त) उत्पन्न हुए (तस्मात्) उसी से (गाव:) गौएँ (यह एक ओर दांतवालों का उपलक्षण है, इससे अन्य भी एक ओर दांतवाले लिये जाते हैं) (ह) निश्चय कर (जज्ञिरे)उत्पन्न हुए और (तस्मात्) उससे (अजावय:) बकरी,भेड़ (जाता:) उत्पन्न हुए हैं, इस प्रकार जानना चाहिए II

भावार्थ:-- हे मनुष्यो! तुम लोग गौ, घोडे
आदि ग्राम के सब पशु जिस सनातन पूर्ण पुरुष

Page 67 of 523

परमेश्वर से ही उत्पन्न हुए हैं , उसकी आज्ञा का उल्लङ्घन कभी मत करो ।

तं यज्ञमित्यस्य नारायण ऋषि :। पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्द :। गान्धार : स्वर :।। पुनस्तमेव विषयमाह ।। फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रत : । तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ।। (पु .सू .9) (कृष्णयजुर्वेदीय पु .सू . में ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रत : । के स्थान पर ---- ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋच : सामानि जज्ञिरे दिया है —है जिसका अर्थ इसके 7 वें श्लोक में है ।)

अन्वय :- पुरुषं जातम् अग्रतः तं बर्हिषि यज्ञं प्रौक्षन् । तेन अयजन्त देवा साध्या ऋषय: च ये ।

शब्दार्थ :--- तं —उसको; यज्ञं ---यज्ञ में ; बर्हिषि ---कुश अर्थात आसन बिस्तर या कुशा (घास) का बिछौना , (पु .) आग, प्रकाश , (न.पु .) जल,

Page 69 of 523

यज्ञ, इसका एक अर्थ; ‘(बर्हिषि-शब्द बर्हिस् से बना है, इसका मिलता हुआ एक शब्द बरहा भी मिलता है जिसका अर्थ मोर, मुरगा, इंधन का बोझ, बलिपशु.मोटा रस्सा, साही नामक जन्तु, बारहवें दिन प्रसूता का स्नान;) ‘एक शब्द बारहौं का अर्थ निकलता संतान उत्पन्न होने के बाद बारहवें दिन की क्रिया जो हवन नामकरण आदि किया जाता है I’ प्रौक्षन्---- सिञ्चन करना, अभिषेक करना, जातम----उत्पन्न हुए, अग्रतः---पूर्व में, सर्व प्रथम; तेन—- उसके द्वारा; देवा---देवताओं ने; साध्या--- साधकों ने; ऋषय:--ऋषियों ने; च---और; ये--- जितने;

अर्थ:--- जो आदिपुरुष; परमपुरुष; सबसे पहले प्रकट हुआ (उत्पन्न हुआ) प्रथम पुरुष उसमें ही, जितने साधक और ऋषि थे उन्होंने कुशासन पर बैठा हुआ पितर की कल्पना करके उसका सिंचन अर्थात अभिषेक संस्कार करके मानसिक यज्ञ सम्पन्न किया I

श्रीमद्भागवत के अनुसार इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया गया है:----सबसे

पहले उत्पन्न हुआ वह पुरुष ही उस समय यज्ञ का साधन था, देवताओं ने उसे संकल्प द्वारा

Page 69 of 523

Page 70 of 523

यूप में बंधा हुआ पशु माना और उस मानसिक यज्ञ में उस पशु का भावना द्वारा हि प्रोक्षण आदि संस्कार भी किया (यहाँ बर्हिषि का अर्थ यज्ञ पशु अर्थात वह पशु जिसकी बलि दी जानी है, ऐसे पशु की कल्पना की गई है) इस प्रकार संस्कार किये हुए पुरुष रूपी पशु के द्वारा देवताओं, साध्यों और ऋषियों ने उस मानसिक यज्ञ को पूर्ण किया I

कहीं अन्यत्र मैंने इस प्रकार अर्थ भी पढा है----मंत्रद्रष्टा ऋषियों एवं योगाभ्यासियों ने सर्वप्रथम प्रकट हुए

पूजनीय विराट पुरुष को यज्ञ (सृष्टि के पूर्व विद्यमान महान ब्रह्मांड रूपयज्ञ अर्थात् सृष्टि यज्ञ) में अभिषिक्त करके उसी यज्ञरूप परम पुरुष से ही यज्ञ (आत्मयज्ञ) का प्रादुर्भाव किया I

मेरा अभिप्रायः इस पक्ष मे उपरोक्त लिखे गये अर्थों से भिन्न है-----

पूर्व में उत्पन्न उस पुरुष का अर्थात
पितर [(जो पिता, पितामह, प्रपितामह,

प्रप्रपितामह आदि से भी ऊपर है) का यजमान रूप में अभिषेक (सिंचन) करके यज्ञ में

Page 70 of 523

कुशासन (बैठने के लिये कुशा घास का आसन)
दिया और देवताओं , साधकों और ऋषियों , जितने
थे उनके द्वारा यज्ञ किया गया । (यह ठीक उसी
प्रकार है जिस प्रकार हम जिनको देख नहीं
सकते उन अपने पितर आदि की मानसिक (प्राणमय
कोष में ,मनोमय कोष में) उपस्थिति की कल्पना
करते हैं]।

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद -कथाङ्क में
अर्थ :- देवताओं , साध्यों तथा ऋषियों ने
सर्वप्रथम उत्पन्न हुए उस यज्ञपुरुष को
कुशा पर अभिषिक्त किया और उसी से उसका यजन
किया ।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि ,
मथुरा , द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के
अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों
व्याख्या है जो इस प्रकार है :-

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं
जातमग्रत : ।

तेन देवा ऽ अयजन्त साध्या ऽ ऋषयश्च ये ॥

सृष्टि से पूर्व उस यज्ञ साधन भूत पुरुष को
यज्ञ में संस्कृत करते हुए मन्त्रद्रष्टा

Page 72 of 523

ऋषियों ने उसी पुरुष से मानस याग को सम्पन्न किया I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रत: I तेन देवाऽअयजन्त साध्याऽऋषयश्च येII

मन्त्रद्रष्टा ऋषियों एवं योगाभ्यासियों ने सर्वप्रथम प्रकट हुए विराट् पुरुष को

यज्ञ(सृष्टि के पूर्व विद्यमान महान् ब्रह्मांडरूप यज्ञ अर्थात् सृष्टि यज्ञ) में

अभिषिक्त करके उसी परम पुरुष से ही यज्ञ(आत्मयज्ञ) का प्रादुर्भाव किया I

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या:-

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रत: I तेन देवाऽअयजन्त साध्याऽऋषयश्च ये II

Page 72 of 523

तम् । यज्ञम्। बर्हिषि । प्र।औक्षन् ।
पुरुषम् । जातम् । अग्रत :॥ तेन । देवा :।
अयजन्त ।

साध्या :। ऋषय:। च। ये ॥

पदार्थ :-- (तम्) उक्तम् (यज्ञम्)
संपूजनीयम् (बर्हिषि) मानसे ज्ञानयज्ञे
(प्र) प्रकर्षेण (औक्षन्) सिञ्चन्ति
(पुरुषम्) पूर्णम् (जातम्)
प्रादुर्भूतञ्जगत्कर्तारम् (अग्रत :)
सृष्टे प्राक् (तेन) तदुपदिष्टेन वेदेन
(देवा :) विद्वांस : (अयजन्त) पूजयन्ति
(साध्या :) साधनं योगाभ्यासादिकं
कुर्वन्तो ज्ञानिन : (ऋषय:) मन्त्रार्थविद :
(च) (ये) ।

अन्वय :--हे मनुष्या :! ये देवा : साध्या
ऋषयश्च यमग्रतो जातं यज्ञं पुरुषं
बर्हिषि प्रोक्षन् त एव तेनायजन्त च तं
यूयं विजानीत ॥

भावार्थ :-- विद्वद्भिर्मनुष्यै :
सृष्टिकर्तेश्वरो योगाभ्यासादिना सदा
हृदयान्तरिक्षे ध्यातव्य : पूजनीयश्च ॥

पदार्थ :-- हे मनुष्यो ! (ये) जो (देवा :) विद्वान् (च) और (साध्या :) योगाभ्यास आदि साधन करते हुए (ऋषय:) मन्त्रार्थ जानने वाले ज्ञानी लोग जिस (अग्रत :) सृष्टि से पूर्व (जातम्) प्रसिद्ध हुए (यज्ञम्) सम्यक् पूजने योग्य (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा को (बर्हिषि) मानस ज्ञान यज्ञ में (प्र , औक्षन्) सींचते अर्थात् धारण करते हैं , वे ही (तेन) उसके उपदेश किये हुए वेद से और (अयजन्त) उसका पूजन करते हैं , (तम्) उसको तुम लोग भी जानो ॥

भावार्थ :--विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि सृष्टिकर्ता ईश्वर का योगाभ्यासादि से सदा हृदयरूप अवकाश में ध्यान और पूजन किया करें ।

यत्पुरुषमित्यस्य नारायण ऋषि :। पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्द :। गान्धार : स्वर : ॥ पुनस्तमेव विषयमाह ॥ फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ॐ यत् पुरुषं व्यदधु : कतिधा व्यकल्पयन् ।

Page 75 of 523

मुखं किमस्यासीत् किम्बाहू किमूरू
पादा उच्येते II (पु.सू. 10)

(कृष्ण यजुः पुरुषसुक्त में इसप्रकार दिया गया है:----‘ॐ तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः’ जोकि इसके 8 वें श्लोक में है, इसमें पाठ भेद नहीं है)

अन्वय:- यत् पुरुषं व्यदधु: कतिधा व्यकल्पयन् I अस्य मुखं किम् आसीत्, किम् बाहू, किम् उरू, पादा उच्येते I

शब्दार्थः-- यत्---जब, जिस समय; पुरुषं--- विराट् पुरुष को; व्यदधुः---विस्तृत किया, प्रकट किया; कतिधा----किस प्रकार, कितनी प्रकार से; व्यकल्पयन्----कल्पना की, वर्ग विभाजन किया, अवयवों का विभाजन किया; मुखं---मुख, किम्---क्या, कैसा, कहां; आसीत्---था; बाहू---भुजायें; उरू---दोनों जंघायें; पादा---पैर, चरण, पांव, अंश; कहे गये, बताये गये, कल्पित किये गये;

अर्थः--- जब पुरुष को प्रकट किया गया (कल्पना का विस्तार किया गया) तब

किस प्रकार कल्पना की गई, कितनी प्रकार से उसका विस्तार किया गया I

Page 75 of 523

Page 76 of 523

इसका मुख कहां था, कैसा था, भुजाएं क्या थी, कैसी थी, कहाँ थी; दोनों जंघायें, पांव कैसे बताये गये थे, अर्थात कहां और कैसे थे I

श्रीमद्भागवत् में अर्थ इस प्रकार है----- जब प्राणमय देवताओं ने उस यज्ञपुरुष (प्रजापति) को प्रकट किया, उस समय उसके अवयवों के रूप में कितने विभाग किये I इस पुरुष का मुख क्या था, दोनों बाहें क्या थीं I दोनों जाँघें और दोनों

पैर कौन थे अर्थात कैसे बने I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है-----संकल्प द्वारा प्रकट हुए जिस विराट पुरुष का, ज्ञानीजन विविध प्रकार से वर्णन करते हैं, वे उसकी कितने प्रकार से कल्पना करते हैं? उसका मुख क्या है? भुजा, जाघें और पाँव कौन-से हैं? शरीर-संरचना में वह पुरुष किस प्रकार पूर्ण बना?

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:-पुरुष का जब विभाजन हुआ तो उसमें कितनी विकल्पनायें की गयीं? उसका मुख क्या था? उसके बाहू क्या थे? उसके जंघे क्या थे ? और उसके पैर क्या कहे जाते हैं।

Page 76 of 523

Page 77 of 523

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

यत् पुरुषं व्यदधु: कतिधा
व्यकल्पयन् I

मुखं किमस्यासीत्किम्बाहू किमूरू पादाऽउच्येते II

जिस विराट् पुरुष को सड्ंकल्प द्वारा प्रकट करते हुए अनेक प्रकार से कल्पना

की कि इस पुरुष का मुख क्या हुआ? भुजा, जांघ और चरण कौन से कहे जाते हैं? शरीर की रचना करते हुए वह विराट् कितने प्रकार से पूर्ण हुआ?

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

यत्पुरुषं व्यदधु: कतिधा व्यकल्पयन् I

मुखं किमस्यासीत् किं बाहू
किमूरु पादाऽउच्च्येते II

Page 77 of 523

संकल्प द्वारा प्रकट हुए विराट् पुरुष का
ज्ञानीजन विविध प्रकार से वर्णन करते हैं ,
वे उसकी कितने प्रकार से कल्पना करते हैं ?
उनका मुख क्या है ? भुजा , जंघाएँ और पाँव
कौन से हैं ? शरीर संरचना में वह पुरुष किस
प्रकार पूर्ण बना ?

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना
निर्मितं
संस्कृतार्यभाषाभ्यांसमलङ्कृतम्
व्याख्या :-

यत्पुरुषं व्यदधु : कतिधा
व्यकल्पयन् ।

मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरु
पादाऽउच्च्येते ॥

यत् । पुरुषम् । वि । अदधु :। कतिधा । वि ।
अकल्पयन् ॥ मुखम् । किम् । अस्य । आसीत् ।

किम् । बाहूऽइति बाहू । किम् । ऊरूऽइत्यूरू ।
पादौ । उच्च्येतेऽइत्युच्च्येते ॥

पदार्थ :-- (यत्) यम् (पुरुषम्) पूर्णम् (वि)
विविध प्रकारेण (अदधु :) धरन्ति (कतिधा)
कतिप्रकारै : (वि) विशेषेण (अकल्पयन्)
कथयन्ति (मुखम्) मुखस्थानीयं श्रेष्ठम्

Page 79 of 523

(किम्) (अस्य) पुरुषस्य (आसीत्) अस्ति (किम्) (बाहू) भुजबलभृत् (किम्) (ऊरू) जानुन ऊर्द्ध्वावयवस्थानीयम् (पादौ) नीचस्थानीयम् (उच्येते)II

अन्वय:-- हे विद्वांसो! भवन्तो यद्यं पुरुषं व्यदधुस्तं कतिधा व्यकल्पयन्नस्य सृष्टौ मुखं किमासीद् बाहू किमुच्येते I ऊरू पादौ च किमुच्येतेII

भावार्थ:--- हे विद्वांसोऽत्र संसारेऽसंख्यं सामर्थ्यमीश्वरस्यास्ति तत्र समुदाये मुखमुत्तमाङ्गं बाह्वादीनि चाङ्गानि कानि सन्ति इति ब्रूत II

पदार्थ:--हे विद्वान् लोगो! आप (यत्) जिस (पुरुषम्) पूर्ण परमेश्वर को (वि, अदधु:) विविध प्रकार से धारण करते हो, उसको (कतिधा) कितने प्रकार से (वि,अकल्पयन्) विशेषकर करते हैं और (अस्य) इस ईश्वर की सृष्टि में (मुखम्) मुख के समान श्रेष्ठ (किम्) कौन (आसीत्) है (बाहू) भुजबल का धारण करनेवाला (किम्) कौन (ऊरू) घोंटू के

Page 79 of 523

Page 80 of 523

कार्य्य करने हारे अर्थात् करने वाले और (पादौ) पाँव के समान नीच (किम्) कौन (उच्येते) कहे जाते हैं II (कई स्थानों पर लेखक ने आसीत् का अर्थ वर्तमान काल में लगाया है जबकि इसका अर्थ भूत काल के प्रयोग से ही ठीक अर्थ बनता है क्योंकि यह एक कल्पना है कि सृष्टि कैसे बनी)

भावार्थ:--हे विद्वानों! इस संसार में असंख्य सामर्थ्य ईश्वर का है, उस समुदाय में उत्तम अङ्ग मुख और बाहू आदि अङ्ग कौन हैं? यह कहिये II

ब्राह्मण इत्यस्य नारायण ऋषि:I पुरुषो देवताI निचृदनुष्टुप छन्द:l गान्धार:

स्वर:ll पुनस्तमेव विषयमाह II फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है II

ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुख्मासीद्बाहू राजन्यः कृत: I

Page 80 of 523

Page 81 of 523

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां
शूद्रो अजायत II (पु.सू.11)

(कृष्ण यजुः पुरुषसूक्त में इसप्रकार
दिया गया है-- ॐ यत् पुरुषं व्यदधु: कतिधा व्यकल्पयन् I मुखं किमस्यासीत् किं बाहू
का ऊरू पादा उच्येते II यह पाठ है I---अन्वय--- यत् व्यदधु: पुरुषम् कतिधा व्यकल्पयन् I किम् अस्य मुखम् आसीत् किं बाहू का ऊरू पादा उच्येते I—अर्थ—वह जो पुरुष उत्पन्न हुआ उसके कितनी प्रकार से कल्पना की गयी है I उसका मुख क्या था, कैसा था, क्या भुजाएं, क्या पैर कहे जाते हैं) I

अन्वयः----ब्राह्मणो अस्य मुखम् असीत्, राजन्य बाहू कृतः I यद् वैश्यः तद् अस्य ऊरू, शूद्रो पद्भ्यां अजायत II

शब्दार्थः---- ब्राह्मण:---- ब्राह्मण(ज्ञानीजन) आदि जैसे शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थ,हवन, यज्ञ, जप, तप आदि ईश्वर विषयक ज्ञान रखने वाला, अग्रजन्मा, (सिर, आँख, नाक, कान, जिव्हा, सकल ज्ञान, स्मरणशक्ति, मस्तिष्क,समस्त नाडी आदि का आधार मुख) भूदेव, विप्र, ब्राह्मण जाति,
शिव, विष्णु, मन्त्र से भिन्न वेद् का अंश,

Page 81 of 523

Page 82 of 523

(शतपथ आदि ग्रन्थ) अग्नि; अस्य---उसका; मुखम्---मुख, अग्रभाग, बाहू----भुजायें; राजन्यः-----राजा, क्षत्रिय, रक्षक, शासन व्यवस्थापक; कृतः----बने, बनाये, उत्पन्न हुये, माना; ऊरू---जंघायें; तद्---उसकी, यद् — जो; वैश्यः----व्यापार, कृषि आदि करने वाला, बनिया; पद्भ्यां----पावों से, पैरों से; शूद्र:----सेवक, शूद्र जाति; अजायत----- उत्पन्न हुए;

अर्थ:-- विराट पुरुष का मुख ब्राह्मण अर्थात ज्ञान, विवेक, ज्ञानीजन (विवेकवान) हुए। क्योंकि कोई भी बात मुख अर्थात मुंह से निकलती है, देखने, सोचने-समझने, सुनने, भोज्य पदार्थों का भोग करने के सभी मुख में ही हैं I अर्थात् उसकी रचना में मुख्य ज्ञान, ज्ञानीजन हैं, क्षत्रिय अर्थात् पराक्रमी व्यक्ति, उसके शरीर में विद्यमान बाहुओं के समान हैं । वैश्य अर्थात् पोषणशक्ति-सम्पन्न व्यक्ति उसके जंघा एवं सेवाधर्मी व्यक्ति जोकि समाज का आधार स्तम्भ हैं वे उसके पैर हुए। अर्थात ब्रह्मांड में सर्व प्रथम ब्राह्मण अर्थात ज्ञान, सोचने, विचारने के लिए मुख

Page 82 of 523

Page 83 of 523

जिसमें सर, आँख कान, नासिका आदि ज्ञानेन्द्रियां, आदि स्थापित किये I क्षत्रिय संज्ञक भुजाएं वैश्य संज्ञक जंघाएँ, तथा सेवक रूपी चरण अर्थात पैर (आधार)आदि की रचना करके स्थापित किये I

श्रीमद्भागवत् में अर्थ इस प्रकार है-----

ब्राह्मण इसका मुख था अर्थात मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति हुई I दोनों भुजायें क्षत्रिय जाति बनीं, अर्थात भुजाओं से क्षत्रियों का प्राकट्य हुआ I जो वैश्य हैं वे उसकी जंघाओं से, पैरों से शूद्र उत्पन्न हुये I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है-----विराट पुरुष का मुख ब्राह्मण

अर्थात् ज्ञानी (विवेकवान) जन हुए | क्षत्रिय अर्थात पराक्रमी व्यक्ति, उसके शरीर में विद्यमान बाहुओं के समान हैं | वैश्य अर्थात् पोषणशक्ति-सम्पन्न व्यक्ति उसके जंघा एवं सेवाधर्मी व्यक्ति उसके पैर हुए I

पुरूष सूक्त--ऋग्वेद मंडल 10.का 90 वां सूक्त पुरुष सूक्त कहलाता है। इस सूक्त का

Page 83 of 523

Page 84 of 523

ऋषि नारायण है और देवता पुरुष है । पुरुष
वह है जो प्रकृति को प्रभावित कर सके ।

(संकल्प द्वारा प्रकट हुए जिस विराट पुरुष का ज्ञानी जन विविध प्रकार से वर्णन करते हैं, वे उसकी कितने प्रकार से कल्पना करतेहैं? उसका मुख क्या है? भुजा, जाँघें और पाँव कौन से हैं? शरीर-संरचना में वह पुरुष किस प्रकार पूर्ण बना? ।।10।।)

जिसका पुरुष का विधान किया गया, उसकी कितने प्रकार कि कल्पना हुई अर्थात उस पुरुष कि कितने प्रकार से कल्पना कि गयी I प्रजापति द्वारा जिस समय पुरुष विभक्त हुए तो उनको कितने भागों में विभक्त किया गया, इनके मुख बाहू ऊरू और चरण क्या कहे जाते हैंI (उत्तर) ब्राह्मणजाति इस पुरुष के मुख से, क्षत्रिय जाति भुजा से, वैश्य जाति ऊरूद्वय से और शूद्रजाति दोनों चरणों से उत्पन्न हुईं, इस कारण ब्राह्मणादि चार जाति परमात्मा के मुख भुजा, ऊरू और चरण कहाते हैं I पुरुष सूक्त में जगत् की उत्पत्ति का प्रकरण है, सब चराचरों कि उत्पत्ति का इसमें प्रसंग है, इस कारण यहाँ कल्पना शब्द से उत्पत्ति का ही अर्थ लिया

Page 84 of 523

जायेगा न कि अलंकार कल्पना का अर्थ !
अन्यत्र भी वेद में उत्पत्ति का ही अर्थ
आया है यथा " सूर्याचन्द्रमसौ धाता
यथापूर्वमाकल्पयत् " ऋग्वेद मंडल 10 सूक्त
191 मन्त्र 3 अर्थात् सूर्य चन्द्रमा
जैसे विधाता ने पूर्व कल्प में बनाये थे
वैसे ही इस कल्प में बनाये हैं । यजुर्वेद
अध्याय 31 अथर्ववेद काण्ड 19 सूक्त 6 में
भी पुरुष सूक्त है । केवल अथर्ववेद में ऊरू
के स्थान में "मध्यं तदस्य यद्वैश्य :" इस
प्रकार पाठान्तर देखा जाता है ।

[**मेरा अभिप्राय यहां यह है कि ब्रह्म का
अर्थ निकलता है विराट , विस्तृत , महान् ,
मुखिया , मुख्य , कर्ता -धर्ता , कारक ।
ब्राह्मण नाम शिव , विष्णु , ज्ञान , अग्नि
अर्थात तेज का भी है । जो विवेकवान है
ज्ञानवान है वही तो ब्राह्मण है , ब्राह्मण
शब्द ब्रह्म से बना है। जो ब्रह्म (ईश्वर)
को छोड़कर अन्य किसी को नहीं पूजता , वह
ब्राह्मण कहा गया है । जिसका प्रसार
विस्तृत है वही तो ब्राह्मण है । रावण भी
कहता था अहम् ब्रह्मो अस्मि क्योंकि उसका
प्रसार बहुत था । उसका राज्य बहुत फैला हुआ

Page 86 of 523

था, उसका प्रभाव सभी पर था I इसलिये मेरे अभिप्राय से यहां पर ब्राह्मण का अर्थ
जाति विशेष से लगाने की अपेक्षा विस्तृत ज्ञानवान, अथवा तेजवान लगाना उपयुक्त होगा I इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि को जाति प्रथा से नहीं जोडना चाहिये बल्कि वर्ण अर्थात विभाग के अनुसार अर्थ करना चाहिये I मुनिराज शर्मा

***मेरा दूसरा विचार यह है कोई भी व्यक्ति हवन-यज्ञ आदि अकेला नहीं करताI करनेवाला (आचार्य, पाधा, ब्राह्मण, पुरोहित) कहलाता है और करवाने वाला (यजमान) कहलाता है I वास्तव में जब कोई व्यक्ति हवन-यज्ञ आदि के लिए दीक्षित हो जाता है सिद्धांतरूप से वह बार-बार नहीं उठ सकता यज्ञ की रक्षा हेतु, विभिन्न वस्तुओं के संचय हेतु या समय पर आवश्यकता पड़ने पर खर्च हेतु, कुछ अन्य प्रकार की सहायता हेतु, इसीप्रकार विभिन्न प्रकार से कार्यों के आधार पर कल्पना की गई I इनमें से मुख्य सहायक मन्त्रोच्चारण व अन्य विधि कर्ता को ब्राह्मण, यज्ञ की रक्षा का भार वहन कर्ता को क्षत्रिय, यज्ञ हेतु धन व अन्य सामग्री या अन्य बातों का

Page 86 of 523

ध्यान व हिसाब व्यवस्थापक को वैश्य तथा सेवक का भार का निर्वहन करने वाले को शूद्र आदि पद अर्थात नाम दिए गये हैं ।] राजन्य (क्षत्रिय) वीर -बलों के कार्य हेतु , ब्राह्मण मुख (मुख्य काम के लिए) हेतु , वैश्य उरु , अर्थात सर्व स्थान यात्रा और शूद्र पग यानि सेवा जैसे गुणों के लिए बने हैं। इसके अतिरिक्त यज्ञ का वर्णन भी है जो सृजन की प्रक्रिया को दर्शाता है। मुनिराज शर्मा

****मेरे अनुसार यह अर्थ उचित जान पडता है -----उसका मुख तेजवान और विस्तृत था । भुजाओं से पराक्रम उत्पन्न हुआ अर्थात पराक्रम शील उत्पन्न हुये । दोनों जंघाओं से व्यापारी , लेन देन करने वाले अंग अर्थात विभाग बने क्योंकि शरीर में कहीं से कुछ भी जाता है पहले उदर , पेट में जाता है और जङ्घा के द्वारा शरीर में जहां जिस अंग को जो कुछ जितना चाहिये उतना पहुंचता और व्यर्थ मल -मूत्र के रूप में बाहर किया जाता है । जो कि एक वैश्य की भान्ति नाप -तोल करके ही होता है । और शूद्र अर्थात सेवक पैरों से उत्पन्न हुए यहां शूद्र किसे माना जाये ?

Page 88 of 523

शरीर में जो विभिन्न पदार्थ लाने ले जाने का कार्य करते हैं, व्यर्थ वस्तुयें निकालने का कार्य करते हैं क्या वे शूद्र अथवा सेवक हैं जैसे शरीर के अन्दर कार्यरत विभिन्न इत्यादि विभिन्न शिरायें, कोशिकायें, अवयव: क्या इन अवयवों को शूद्र कि संज्ञा दी जा सकती है? समाज में जो वर्ण-व्यवस्था चल रही है यह प्रशासनिक व्यवस्था के अनुसार बनाई गयी थी, सेवक का कार्य बड़ा ही कठिन माना जाता था जबकि कृषि को उत्तम, बान अर्थात व्यापार आदि व्यवसाय को मध्यम तथा सेवाकार्य अर्थात नोकरी- चाकरी को घृणित कार्य कहा जाता था और इस विषय में एक कहावत प्रसिद्ध भी है ---- (उत्तम खेती मध्यम बान ‘व्यापार’ निखद चाकरी भीख निदान अर्थात खेती का व्यवसाय अति उत्तम है, व्यापार मध्यम और चाकरी करना सबसे निखद कार्य है इससे तो अच्छा भीख मांग कर गुजर कर ले) जबकि नगर, ग्राम के सीमांत क्षेत्र में रहने वाले जनों को प्रशासनिक व्यवस्था में स्थान नहीं दिया जाता था उन्हें अछूत कि संज्ञा दी जाती थी I ऋग्वेद में स्वस्ति वाचन के अंतिम श्लोक ---

Page 88 of 523

Page 89 of 523

अदितिद्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्र: I

विश्वे देवा अदिति: पञ्च जना अदितिर्जातमादितिर्जनित्वम् II

इसका अर्थ है ही द्युलोक, अंतरिक्ष, माता, पिता, पुत्र, सब देव, पञ्चजन (ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद), जो बन चुका है और जो बनने वाला है, वह सब अदिति ही है, अर्थात सबकुछ अदिति से ही है सबकी माता अदिति ही है I इसप्रकार हम देखते हैं कि पुरुष-सूक्त में कहीं भी किसीप्रकार से किसी का भी अपमान नहीं किया गया है और न ही किसी से किसी प्रकार का भेदभाव ही किया गया है I पुरुष सूक्त से यही शिक्षा मिलती है कि हम सब एक ही ईश्वर कि सन्तान हैंI केवल सत्ता के लालची अंग्रजों की नीति अपना काम साधने के लिए इस प्रकार
की भ्रान्ति बनाते हैं I मुनिराज शर्मा

(यह मेरा व्यक्तिगत मन्तव्य है कृपया इसे अन्यथा न लें) I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- ब्राह्मण इसका मुख था (मुख से

Page 89 of 523

Page 90 of 523

ब्राह्मण उत्पन्न हुए) क्षत्रिय दोनों भुजाएं बने(दोनों भुजाओं से क्षत्रिय उत्पन्न हुए) इस पुरुष की जो दोनों जंघाएँ थीं वे ही वैश्य हुईं अर्थात उनसे वैश्य उत्पन्न हुए और पैरों से शूद्रवर्ण प्रकट हुआ I

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृत: I ऊरू तदस्य यद्वैश्यः
पद्भ्यांs शूद्रो अजायत II
ब्राह्मण इस प्रजापति का मुख, क्षत्रिय बाहु, वैश्य जंघा और शूद्र चरण रूप हुआ?

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृत: I ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याँशूद्रो अजायत II

Page 90 of 523

विराट् पुरुष का मुख
ब्राह्मण (ज्ञानीजन ,ज्ञानवान) हुए ,
क्षत्रिय (पराक्रमी व्यक्ति), उसके शरीर
में विद्यमान बाहुओं के समान हैं । वैश्य
अर्थात पोषण शक्ति सम्पन्न व्यक्ति उसके
जंघा एवं सेवाधर्मी व्यक्ति , उसके पैर हुए
।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना
निर्मितं
संस्कृतार्यभाषाभ्यांसमलङ्कृतम्
व्याख्या

:--

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू
राजन्य : कृत :।

ऊरू तदस्य यद्वैश्य : पद्भ्याँ्
शूद्रोऽअजायत ॥

ब्राह्मण :। अस्य । मुखम् । आसीत् । बाहूऽइति
बाहू । राजन्य :। कृत :।। ऊरूऽइत्यूरू । तत् ।
अस्य । यत् । वैश्य :। पद्भ्यामिति पत्ऽभ्याम् ।
शूद्र :। अजायत ।।

पदार्थ :-- (ब्राह्मण :) वेदेश्वरविदनयो :
सेवक उपासको वा (अस्य) ईश्वरस्य (मुखम्)

Page 92 of 523

मुखमिवोत्तम: (आसीत्) अस्ति (बाहू) भुजाविव बलवीर्य्ययुक्त: (राजन्य:) राजपुत्र: (कृत:) निष्पन्न: (ऊरू) ऊरू इव वेगादिकर्मकारी (तत्) (अस्य) यत्) (वैश्य:) यो यत्र तत्र विशति प्रविशति तदपत्यम् (पद्भयाम्) सेवानिरभिमानाभ्याम् (शूद्र:) मूर्खत्वादिगुण्विशिष्टो मनुष्य: (अजायत) जायतेI

अन्वय:-- हे जिज्ञासवो! यूयमस्य सृष्टौ ब्राह्मणो मुखामासीद् बहू राजन्य: कृतो यदूरू तदस्य वैश्य आसीत् पद्भ्यां शूद्रोऽजायतेत्युत्तराणि यथाक्रमं विजानीत् II

भावार्थ:-- ये विद्याशमदमादिपूत्तमेषु गुणेषु मुखमिवोत्तमास्ते ब्राह्मणा: I

येऽधिकवीर्य्या बाहुवत्कार्य्यसाधकास्ते क्षत्रिया: I ये व्यवहारविद्याकुशलास्ते

वैश्या ये च सेवायां साधवो विद्याहीना: पादाविव मूर्खत्वादिनीचगुणयुक्तास्ते शूद्रा: कार्य्या मन्तव्याश्च II

Page 92 of 523

पदार्थ :-- हे जिज्ञासु लोगो ! (अस्य) इस ईश्वर की सृष्टि में (ब्राह्मण :) वेद ईश्वर का ज्ञाता इनका सेवक वा उपासक (मुखम्) मुख के तुल्य उत्तम ब्राह्मण (आसीत्) है (बाहू) भुजाओं के तुल्य बल पराक्रमयुक्त (राजन्य :) राजपूत (कृत :) किया (यत्) जो (ऊरू) जाँघों के तुल्य वेगादि काम करनेवाला (तत्) वह (अस्य) इसका (वैश्य :) सर्वत्र प्रवेश करनेहारा वैश्य है (पद्भ्याम्) सेवा और अभिमान रहित होने से (शूद्र :) मूर्खपन आदि गुणों से युक्त शूद्र (अजायत) उत्पन्न हुआ , ये उत्तर क्रम से जानो ॥ भावार्थ :-- जो मनुष्य विद्या और शमदमादि उत्तम गुणों में मुख के तुल्य उत्तम हों , वे ब्राह्मण , जो अधिक पराक्रम वाले भुजा के तुल्य कार्य्यों को सिद्ध करनेहारे हों , वे क्षत्रिय , जो व्यवहारविद्या में प्रवीण हों , वे वैश्य और जो सेवा में प्रवीण , विद्याहीन , पगों के समान मूर्खपन आदि नीच गुणयुक्त है , वे शूद्र करने और मानने चाहियें ॥

चन्द्रमा इत्यस्य नारायण ऋषि :। पुरुषो देवता । अनुष्टुप् छन्द :। गान्धार : स्वर :॥

Page 94 of 523

पुनस्तमेव विषयमाह II फिर उसी विषय को अगले मन्त्रमें कहा है II

-- ------------------------------ ------------------------------ -- -----------------

ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो
अजायत I

श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत I I(पु.सू.12)

(कृष्ण यजुः पुरुषसूक्त में इसप्रकार दिया गया है-- ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुख्मासीद्बाहू राजन्यः कृत: I यह मन्त्र है I इसका वर्णन श्लोक 11 में किया गया है)

अन्वयः---- चन्द्रमा मनसो जातः चक्षोः सूर्यो अजायत I श्रोत्रात् वायुः च प्राणः च मुखात् अग्निः अजायत I I

शब्दार्थ:---चन्द्रमा--चन्द्र; मनसो----मन से, मन के द्वारा; जातः--उत्पन्न हुआ था; चक्षोः--आँखों से, नेत्रों से;सूर्यो-- सूर्य, ज्योति; अजायत--उत्पन्न हुआ; ! श्रोत्रात्---कानों से; वायुः----वायु; च--- और; प्राणः----प्राणवायु; च---और; मुखात्---

Page 94 of 523

Page 95 of 523

मुख से; अग्निः---तेज; अजायत----उत्पन्न
हुआ;

अर्थ--विराट पुरुष के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ I नेत्रों से सूर्य अर्थात् ज्योति (प्रकाश) की उत्पत्ति हुई I कानों
से वायु तथा प्राणवायु की उत्पत्ति हुई और मुख अग्नि, तेज की उत्पत्ति हुई I

श्रीमद्भागवत में इसका अर्थ इस प्रकार है-----चन्द्रमा मन से प्रकट हुआ I नेत्रों अर्थात दोनों चक्षुओं से सूर्य अर्थात प्रकाश ज्योति का प्रादुर्भाव हुआ I कानों से वायु और प्राण तथा मुख से अग्नि का आविर्भाव हुआ I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है---विराट पुरुष परमात्मा के मन से

चन्द्रमा, नेत्रों से सूर्य, कर्ण से वायु एवं प्राण तथा मुख से अग्नि का प्रकटीकरण

हुआ I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- इस परम् पुरुष के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुए, नेत्रों से सूर्य प्रकट हुए,

Page 95 of 523

कानों से वायु और प्राण तथा मुख से अग्नि की उत्पत्ति हुई ।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि , मथुरा , द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है :-

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः
सूर्यो ऽ अजायत ।

श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च
मुखादग्निरजायत ॥

उसी पुरुष के मन से चंद्रम , चक्षु से सूर्य , श्रोत्र से वायु और प्राण तथा मुख से

अग्नि प्रकट हुई ।

वाजसनेयि —माध्यन्दिन —शुक्ल यजुर्वेद — संहिता के अनुसार पुरुष सूक्त की व्याख्या इस प्रकार है :--

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो
अजायत ।

श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च
मुखादग्निरजायत । ।

विराट पुरुष के मन से चन्द्रमा , नेत्रों से सूर्य , कर्ण से वायु एवं प्राण तथा मुखसे अग्नि का प्राकट्य हुआ ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना
निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां
समलङ्कृतम् व्याख्या

:-

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः
सूर्योऽजायत ।

श्रोत्राद्वायुश्च
प्राणश्च मुखादग्निरजायत ।।

चन्द्रमा । मनसः। जात :। चक्षो :। सूर्य :। अजायत ।। श्रोत्रात् । वायु :। चः। प्राण :। च । मुखात् । अग्नि :। अजायत ।

पदार्तः :--(चन्द्रमा :) चन्द्रलोक : (मनसः) मननशीलात् सामर्थ्यात् (जात :) (चक्षो :) ज्योति : स्वरूपात् (सूर्य :) सूर्यलोक : (अजायत) जात : (श्रोत्राद्) श्रोत्रावकाशरूपसामर्थ्यात् (वायु :) (च) आकाशप्रदेशा : (प्राणः) जीवननिमित्त : (च) (मुखात्) मुख्यज्योतिर्मयाद्भक्षणरूपात् (अग्नि :) (पावक :) (अजायत)

अन्वय :-- हे मनुष्या :! अस्य ब्राह्मण :
पुरुषस्य मनसश्चन्द्रमा जातश्चक्षो :
सूर्योऽजायत श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च
मुखादग्निरजायतेति बुध्यध्वम् ॥

भावार्थ :--यदिदं सर्वं जगत्
कारणादीश्वरेणोत्पादितं वर्त्तते तत्र
चन्द्रलोको मन :स्वरूप : सूर्य्यश्चक्षु :
स्थानी वायु : प्राणश्च
श्रोत्रवन्मुखमिवाग्निर्लोमवदोषधिवनस्प
तयो नाड़ीवन्नद्योऽस्थिवत्
पर्वतादिर्वर्त्तत इति वेदितव्यम् ॥

पदार्थ :-- हे मनुष्यो ! इस पूर्ण ब्रह्म के
(मनस:)ज्ञानस्वरूप सामर्थ्य से (चन्द्रमा :)
चन्द्रलोक (जात :) उत्पन्न हुआ (चक्षो :)
ज्योतिस्वरूप सामर्थ्य : से (सूर्य्य :)
सूर्य्यमण्डल (अजायत) उत्पन्न हुआ
(श्रोत्रात्) श्रोत्र नामक अवकाश रूप
सामर्थ्य से (वायु :) वायु (च) तथा आकाश
प्रदेश (च) और (प्राण :) जीवन के निमित्त दश
प्राण और (मुखात्) मुख्य ज्योतिर्मय
भक्षणस्वरूप सामर्थ्यसे (अग्नि :) अग्नि
(अजायत) उत्पन्न हुआ है , ऐसा तुमको जानना
चाहिए ॥

भावार्थ :-- जो यह सब जगत् कारणसे इश्वर ने उत्पन्न किया है , उसमें चन्द्रलोक मनस्वरूप , सूर्य्यलोक नेत्ररूप , वायु और प्राण श्रोत्र के तुल्य , मुख के तुल्य अग्नि , ओषधि और वनस्पति रोमों के तुल्य नदी नाड़ियों के तुल्य और पर्वतादि हड्डी के तुल्य हैं , ऐसा जानना चाहिए ॥

नाभ्या इत्यस्य नारायण ऋषि :। पुरुषो देवता । अनुष्टुप छन्द :। गान्धार : स्वर :। पुनस्तमेव विषयमाह ॥ फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो
द्यौः समवर्तत ।

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा
लोकाँ अकल्पयन् । (पु .सू .13)

[(कृष्ण यजुः पुरुषसूक्त में इसप्रकार दिया गया है - ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत । मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत । अन्वय :--मनसः चन्द्रमा जातः । चक्षोः सूर्यो अजायत ।

Page 100 of 523

मुखात् इन्द्रः च अग्नि च प्राणात् वायुः अजायत्I) अर्थ—चन्द्रमा मन से उत्पन्न
हुआ और चक्षु सूर्य से उत्पन्न हुए I मुख से इन्द्र और अग्नि प्राण से वायु उत्पन्न
हुए I)]

अन्वयः---- नाभ्या अन्तरिक्षं आसीत्, शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत I पद्भ्यां भूमि: दिशः श्रोत्रात् तथा लोकां अकल्पयन् II

शब्दार्थः---- नाभ्या----नाभि से; अन्तरिक्षं----आकाश; आसीत्---था; शीर्ष्णो--- मस्तक से; द्यौः----स्वर्गलोक आदि अन्य लोक; समवर्तत----साथ-साथ प्रकट हुआ, प्राकट्य हुआ; पद्भ्यां---पैरों से; भूमि:----भूमि; दिशः---दिशायें; श्रोत्रात्-- कानों से; तथा---और; लोकां---लोकों की; अकल्पयन्--- कल्पना हुई, उत्पत्ति

हुई;

अर्थः--नाभि से अन्तरिक्ष हुआ था, मस्तक से स्वर्गलोक आदि लोकों का समानरुप् से उद्भव हुआ I पैरोंसे भूमि, कानों से दिशायें प्रकट हुईं I इसी प्रकार लोकों की उत्पत्ति की कल्पना की गई थी I

Page 100 of 523

Page 101 of 523

श्रीमद्भागवत में इसका अर्थ इस प्रकार है---- नाभि से अन्तरिक्ष-लोक की उत्पत्ति हुई, मस्तक से स्वर्ग लोक प्रकट हुआ, पैरों से पृथ्वी हुई और कान से दिशाएँ प्रकट हुईंI इस प्रकार उन्होंने समस्त लोकों की कल्पना की I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- विराट पुरुष की नाभि से अंतरिक्ष, सिर से द्युलोक, पाँवों से भूमि तथा कानों से दिशाएँ प्रकट हुईं | इसी प्रकार (अनेकानेक) लोकों को कल्पित किया गया है (रचा गया है) I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- उन्हीं परम् पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष लोक उत्पन्न हुआ, मस्तक से स्वर्ग प्रकट हुआ, पैरों से पृथ्वी,कानों से दिशाएँ प्रकट हुईं। इस प्रकार समस्त
लोक उस पुरुष में ही कल्पित हुए।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

Page 101 of 523

Page 102 of 523

नाभ्या s आसीदन्तरिक्षं् शीर्ष्णो
द्यौः समवर्त्तत I

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा
लोकाँ s अकल्पयन् I

नाभि से अंतरिक्ष, शिर से स्वर्ग, पांवों से पृथ्वी, श्रोत्र से सब दिशाएं उत्पन्न हुईंI इसी प्रकार तीनों लोकों की कल्पना की गई I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

नाभ्या ऽआसीदन्तरिक्षं् शीर्ष्णो
द्यौः समवर्त्तत I

पद्भ्यां भूमिर्दिशः
श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ अकल्पयन् I

विराट् पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष, सिर से द्युलोक, पावों से भूमि तथा कानों से दिशाएँ प्रकट हुईं I इसी प्रकार अनेकानेक लोकों को कल्पित किया गया है(रचा गया है)

Page 102 of 523

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना
निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां
समलङ्कृतम् व्याख्या

:-

नाभ्याऽआसीदन्तरिक्षँ् शीर्ष्णो
द्यौः समवर्त्तत ।

पद्भ्यां भूमिर्दिशः
श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ ॥ ऽअकल्पयन् ।

नाभ्या :। आसीत् । अन्तरिक्षम् । शीर्ष्ण :।
द्यौ :। सम् । अवर्त्तत् ॥ पद्भ्यामिति
पत्ऽभ्याम् । भूमि :। दिश :। श्रोत्तात् । तथा ।
लोकान् ॥ अकल्पयन् ॥

पदार्थ :-- (नाभ्या :)
अवकाशयान्मध्यवर्त्तिसामर्थ्यात्
(आसीत्) अस्ति (अन्तरिक्षम्)
मध्यवर्त्याकाशम् (शीर्ष्ण :) शिर
इवोत्तमसामर्थ्यात् (द्यौ :)
प्रकाशयुक्तलोक : (सम्) (अवर्त्तत)
(पद्भ्याम्) पृथ्वीकारणरूपसामर्थ्यात्
(भूमि :) (दिश :) पूर्वाद्या : (श्रोत्रात्)
अवकाशमयात् (तथा) तेनैव प्रकारेण (लोकान्)
(अकल्पयन्) कथयन्ति

अन्वय :--हे मनुष्या :! यथाऽस्य नाभ्या अन्तरिक्षमासीच्छीर्ष्णो द्यौ : पद्भ्यां भूमि : समवर्त्तत श्रोत्राद्दिशोऽकल्पयँस्तथाऽन्यान्ल्लोकानुत्पन्नान् विजानीत् ॥

भावार्थ :--हे मनुष्या :! यद्यदत्र सृष्टौ कार्य्यभूतं वस्तु वर्त्तते तत्तत्सर्वं विराडाख्यस्य कार्यकारणस्याऽवयवरूपं वर्त्तत इति वेद्याम् ॥

पदार्थ :-- हे मनुष्यो ! जैसे इस पुरुष परमेश्वर के (नाभ्या :) अवकाशरूप मध्यम सामर्थ्य से (अन्तरिक्षम्) लोकों के बीच का आकाश (आसीत्) हुआ (शीर्ष्ण :) शिर के तुल्य उत्तम सामर्थ्य से (द्यौ :) प्रकाशयुक्त लोक (पद्भ्याम्) पृथ्वी के कारणरूप सामर्थ्य से (भूमि :) पृथ्वी (सम् , अवर्त्तत) सम्यक् वर्त्तमान हुई और (श्रोत्रात्) अवकाशरूप सामर्थ्य से (दिश :) पूर्व आदि दिशाओं की (अकल्पयन्) कल्पना करते हैं , (तथा) वैसे ही ईश्वर के सामर्थ्य से अन्य (लोकान्) लोकों को उत्पन्न हुए जानो ॥

भावार्थ :-- हे मनुष्यो ! जो-जो इस सृष्टि में कार्यरूप वस्तु है, वह-वह सब विराट् रूप कार्यकारण का अवयवरूप है, ऐसा जानना चाहिए ॥

यत्पुरुषेणेत्यस्य नारायण : ऋषि:। पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धार : स्वर :॥ पुनसत्मेव विषयमाह ॥ फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।

वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः । (पु॰सू॰ 14)

[यहाँ सृष्टि यज्ञ के प्रारम्भिक स्वरूप का दर्शन है]

अन्वयः --- यत् देवा पुरुषेण हविषा यज्ञम अतन्वत , वसन्तो अस्या आसीत् आज्यं , ग्रीष्म इध्मः ,शरद् हविः ।

शब्दार्थः ---- यत:---जब; पुरुषेण ----पुरुष द्वारा अर्थात विराट् पुरुष द्वारा ;

हविषा ------आहुति से ; देवा -----देवताओं ने ; यज्ञम ----यज्ञ कार्य को ; अतन्वत ----आयोजित

Page 106 of 523

किया; वसन्तो----वसन्त ऋतु; आसीत्---थी, होगई थी; आज्यं--घी; ग्रीष्म:---गर्मी, ग्रीष्म ऋतु; इध्मः----ईन्धन्; शरद्-----शीत ऋतु; हविः----हविष्य (सामग्री) I

अर्थः--- जब देवताओं ने यज्ञ कार्य को आयोजित किया उस समय विराट् पुरुष

द्वारा दी जाने वाली आहुति से वसन्त ऋतु घी में, गर्मी की ऋतु ईन्धन् में, तथा

शीत ऋतु हवन- यज्ञ की सामग्री में परिवर्तित हो गई थी I

{(कृष्ण यजुः पुरुषसुक्त में इसप्रकार दिया गया है----ॐ धाता पुरस्ताद्यमुदाजहार शक्रः प्रविद्वान् प्ररिश्चतस्रः I तमेवं विद्वानमृत इह् भवति नान्यः पन्था अयनाय विद्यते I यह मन्त्र है I) और इसका अर्थ इस प्रकार किया गया है ----------------

धाता पुरस्ताद्यमुदाजहार शक्रफ्प्रविद्वान् प्रतिशश्चतस्र ।

तमेवम् विद्वान् अमृत इह भवति नान्यफ्पन्धा अयनाय विद्यते॥18 II

Page 106 of 523

अर्थ :--ज्ञानीजन उस पुरुष को जानते हैं , जो की सृष्टि से भी पहले था , जिसने इसको अच्छी तरह से समझ लिया है , वह इस जन्म में ही मुक्ति प्राप्त कर लेगा , उसके लिए किसी दूसरे पथ को तलाशने की आवश्यकता नहीं है । मैं इन परमपुरुष , महान आदिपुरुष को जानता हूँ जो कि अंधकार से परे सूर्य की भांति चमकता है । एक अकेले उसी को जानकर कोई मृत्यु के पार जा सकता है अर्थात मृत्यु को लांघ सकता है । वहां उसपार जाने का कोई अन्य मार्ग नहीं है ।

एक अनन्त त्रिकाल सच , चेतन शक्ति दिखात ।
सिरजत , पालत , हरत , जग, महिमा बरनि न जात ॥

अर्थ :----समस्त सीमाओं से परे और भूतकाल , वर्तमान काल , और भविष्य काल , तीनों कालों में सच एक ही है । जो चेतना और शक्ति दिखाता है अर्थात जो चेतना शक्ति (दिव्य दृष्टि) के द्वारा दिखाई देता है । वह ही जगत का सृजन करता है अर्थात सृष्टि की रचना करता है , पालना करता है और इसको हरता है अर्थात इसका विनाश करता है । इसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

रहीम का निम्न दोहा भी यही बताता है ।

Page 108 of 523

एकै साधै सब सधै, सब साधै सब जाय I रहिमन सेवै मूल को, फूलै फलै अघाय I I

अर्थ----रहीम कहते हैं कि एक की साधना करने से ही सब को साधा जा सकता है, सब को साधने से सबकुछ चला जाता है I वृक्ष की एक जड़ को ही सींचने से वृक्ष फलता फूलता है और फैलता है I

पुरुषसूक्त को समझने के लिए विद्वद्जन इसे भी पढ़ें----

विशेष:--(श्रीमद्भागवत--महापुराण द्वितीय स्कन्ध सृष्टि-वर्णन नामक पांचवें और छठे अध्याय में इसप्रकार बताया गया है):------ द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव, और जीव-- वास्तव में भगवान् से भिन्न दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है I वेद (जो कुछ भी जानने योग्य है), नारायण परायण हैं अर्थात उनका गुणगान करने वाले हैं I देवता भी नारायण के अंगों से ही कल्पित हुए हैं और समस्त यज्ञ आदि भी उन नारायण अर्थात ईश्वर की प्रसन्नता के लिए ही हैं और उनकी प्रसन्नता के लिए ही सब
किये जाते हैं और उनसे जिन लोकों की प्राप्ति होती है, वे भी नारायण में ही कल्पित हैं I सभी प्रकार के योग, सभी

Page 108 of 523

Page 109 of 523

तपस्यायें, नारायण अर्थात ईश्वर की ओर ले जाने वाली और नारायण में ही कल्पित हैं I समस्त साध्य और साधनों का पर्यवसान (मिलन) इन्हीं प्रभु, ईश्वर,नारायण में है I वे द्रष्टा होने पर भी ईश्वर हैं, स्वामी हैं; निर्विकार होने पर भी सर्व स्वरूप हैं I भगवान् माया के गुणों से रहित एवं अनंत हैं I सृष्टि, स्थिति, और प्रलय के लिए रजोगुण, सत्वगुण, और तमोगुण—ये तीन गुण माया माया के द्वारा उनमें स्वीकार किये गये हैं I ये ही तीनों गुण द्रव्य, ज्ञान, और क्रिया का आश्रय ले कार मायातीत नित्य मुक्त पुरुष को ही माया में स्थित होने पर कार्य, कर्ण और कर्तापन के अभिमान से बाँध लेते हैं, जबकि वे इन्द्रियातीत अर्थात 5 ज्ञानेन्द्रियों, 5 कर्मेन्द्रियों, व एक मन से परे भगवान् गुणों के इन तीन आवरणों से अपने स्वरूप को भलीभांति ढक लेते हैं, इसलिए लोग उनको जान नहीं पातेI उन मायापति भगवान् ने एक से बहुत होने की इच्छा होने
पर अपनी माया से अपने स्वरूप में स्वयं प्राप्त काल, कर्म और स्वभाव को स्वीकार कर लिया I भगवान् की शक्ति से ही काल के द्वारा उन तीनों गुणों में क्षोभ (हलचल, विकार)

Page 109 of 523

Page 110 of 523

उत्पन्न होने से स्वभाव द्वारा रूपांतरित करने से कर्म द्वारा महत्तत्व का जन्म हुआ, और इसी प्रकार अहंकार, आदि अन्य गुणों, विराट् सृष्टि के पृथ्वी, शब्द सम्पूर्ण भोग तत्वों का अविर्भाव हुआ I

जिस समय ये पंचभूत, इन्द्रिय,मन और सत्वगुण आदि तीनों गुण परस्पर

संगठित नहीं थे, तब ये अपने रहने के लिए भोगों के साधनरूप शरीर की रचना नहीं कर सके I जब भगवान ने इन्हें अपनी शक्ति से प्रेरित किया, तब वे तत्व परस्पर एक दूसरे से मिल गये और आपस में कार्य कारण भाव स्वीकार करके व्यष्टि-समष्टि पिंड और ब्रह्माण्ड दोनों की रचना की I वह ब्रह्माण्डरूप अंडा एक हजार वर्ष तक निर्जीवरूप से जल में पड़ा रहा; फिर काल, कर्म और स्वभाव को स्वीकार करनेवाले भगवान् ने उसे जीवित कर दिया I उस अंडे को फोड़ कर उसमें से वही विराट् पुरुष निकला, जिसकी जंघा, चरण, भुजाएं, नेत्र, मुख और सिर सहस्रों की संख्या में हैं I विद्वान् पुरुष (उपासना के लिये) उसी के अंगों में समस्त लोक और उनमें रहने वाली वस्तुओं की

Page 110 of 523

Page 111 of 523

कल्पना करते हैं I जैसे उसकी कमर से नीचे के अंगों में सातों पाताल और उसके पेडू (धुनी)से उपर के अंगों में सातों स्वर्ग की कल्पना की जाती है (जिन्हें इस्लाम व इसाई सात आसमान कहते हैं I) ब्राह्मण इस विराट पुरुष का मुख हैं, भुजाएं क्षत्रिय हैं, जांघों से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं I पैरों से लेकर कटि पर्यन्त सातों पाताल तथा भूलोक की कल्पना की गई है; नाभि में भुवर्लोक की, हृदय में स्वर्लोक की और परमात्मा के वक्ष:स्थल में महर्लोक की कल्पना की गई है I उसके गले में जनलोक, दोनों स्तनों में तपोलोक और मस्तक में ब्रह्मा का नित्य निवास सत्यलोक है I उस विराट् पुरुष कमर में अतल, जांघों में वितल, घुटनों में पवित्र सुतललोक, और जंघाओं में तलातल की कल्पना की गई है I एड़ी के उपर की गांठों में महातल, पंजे में और एडियों में रसातल और तलुओं में पाताल समझना चाहिए I इस प्रकार विराट् पुरुष सर्व लोकमय है I विराट् भगवान् के अंगों में इसप्रकार भी लोकों की कल्पना की जाती है की उनके चरणों में पृथ्वी है, नाभि में भुवर्लोक है और सर में स्वर्लोक है I (पंचम

Page 111 of 523

Page 112 of 523

अध्याय का भाव)---- उन्हीं विराट पुरुष के मुख से वाणी और उसके अधिष्ठाता अग्नि, उनकी सात धातुओं से गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, उष्निक्, बृहती, पङ्ति और

जगती सातों छन्द उनकी सात धातुओं से निकले हैंI

उस विराट् पुरुष की जिह्वा से मनुष्यों, पितरों और देवताओं के भोजन करने

योग्य अमृतमय अन्न, सभी रस, रसनेन्द्रिय और उनके अधिष्ठाता वरुण देव, नासा छिद्रों से प्राण, अपान, व्यान, उदान, और समान—ये पांच प्राण और वायु, घ्राणेन्द्रिय से अश्विनीकुमार, समस्त औषधियां व सभी गन्ध उत्पन्न हुए i स्वर्ग और सूर्य उनकी नेत्रेन्द्रिय तथा नेत्र-गोलक बने I उनके कानों से दिशाएँ और तीर्थ तथा श्रोत्रेन्द्रिय से आकाश और शब्द निकले, त्वचा से यज्ञ, स्पर्श और वायु; रोम से उद्भिज पदार्थ, केश, दाढ़ी-मूंछ और नखों से मेघ, बिजली, शिला एवं लोहा आदि धातुएं, भुजाओं से संसार के रक्षक लोकपाल प्रकट
हुए I उनका चलना-फिरना भू: भुव: स्व: --- तीनों लोकों का आश्रय है I विराट् पुरुष का

Page 112 of 523

Page 113 of 523

लिङ्ग जल,वीर्य, सृष्टि, मेघ और प्रजापति
का आधार है, उनकी जननेन्द्रिय मैथुनजनित आनन्द का उद्गम है i विराट् पुरुष की पायु- इन्द्रिय यम, मित्र और मलत्याग का तथा गुदाद्वार हिंसा, निर्ऋति, मृत्यु और नरक का उत्पत्ति स्थान है I पीठ से पराजय, अधर्म और अज्ञान, नदियों से नद-नदी हड्डियों से पर्वतों का निर्माण हुआ है I उनके उदर में मूल प्रकृति, रस नाम की धातु तथा समुद्र, समस्त प्राणी और उनकी मृत्य समाई हुई है I उनका हृदय ही मन की जन्म भूमि है I यहां विज्ञजन यह सुचारू रूप से जान लें I यहां स्वयं ब्रह्मा जी द्वारा नारद जी को किये गये उपदेश के अनुसार ब्रह्मा जी ने नारद जी को बताया कि हम, तुम,धर्म, सनकादि, शंकर, विज्ञान, और अन्त:करण—सबके सब उनके चित्त में आश्रित हैं II कहां तक गिनाये जाएँ--- यहां तक कि मैं, तुम, सनकादि, शंकर, देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, पक्षी, मृग,रेंगनेवाले जन्तु, गन्धर्व,अप्सरायें, यक्ष, राक्षस, भूत-प्रेत, सर्प, पशु, पितर, सिद्ध, विद्याधर, चारण, वृक्ष, और भी नाना प्रकार के जीव—जो आकाश, जल या स्थल में रहते हैं--- ग्रह-नक्षत्र, केतु (पुच्छल तारे), तारे,

Page 113 of 523

Page 114 of 523

बिजलीऔर बादल—ये सब-के-सब विराट् पुरुष
ही हैं I यह सम्पूर्ण विश्व—जो कुछ भी था, है या होगा---सबको वह घेरे हुए है और उसके अंदर यह विश्व उसके केवल दस अंगुल (ब्रह्माण्ड के सात आवरणों का वर्णन करते हुए वेदान्त प्रक्रिया में ऐसा माना है कि — पृथ्वी से दस गुणा जल है, जल दस गुणा अग्नि, अग्नि से दस गुणा वायु, वायु से दस गुणा आकाश, आकाश से दस गुणा अहंकार, अहंकार से दस गुणा महत्तत्व और महत्तत्व से दस गुणी मूल प्रकृति है I वह प्रकृति भगवान् के केवल एक पाद में है I इसप्रकार भगवान् की महत्ता प्रकट की गयी है I यह दशांगुल-न्याय कहलाता है I) परिमाण में ही स्थित है I जैसे सूर्य अपने मण्डल को प्रकाशित करते हुए ही उसके बाहर-भीतर सर्वत्र एकरस प्रकाशित हो रहा है I जो कुछ मनुष्य की क्रिया और संकल्प से बनता है, उससे वह परे है और अमृत एवं अभयपद अर्थात मोक्ष का स्वामी है I यही
कारण है कि कोई भी उसकी महिमा का पार नहीं पा सकता I सम्पूर्ण लोक भगवान् एक पादमात्र (अंशमात्र) हैं तथा उनके अंशमात्र लोकों में समस्त प्राणी निवास करते हैं I भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक के

Page 114 of 523

Page 115 of 523

ऊपर महर्लोक है I उसके भी ऊपर जन, तप और सत्यलोकों में क्रमशः अमृत, क्षोभ एवं अभय का नित्य निवास है I जन, तप और सत्य—इन तीनों लोकों में ब्रह्मचारी,-वानप्रस्थ एवं सन्यासी निवास करते हैं I दीर्घकालीन ब्रह्मचर्य से रहित गृहस्थ भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक के भीतर ही निवास करते हैं I शास्त्रों में दो मार्ग बतलाये गये हैं—एक अविद्यारूप कर्म-मार्ग, जो सकाम पुरुषों के लिए है और दूसरा उपासनारूप विद्या का मार्ग, जो निष्काम उपासकों के लिए है I मनुष्य दोनों में से किसी एक का आश्रय लेकर भो प्राप्त कराने वाले दक्षिण मार्ग से अथवा मोक्ष प्राप्त कराने वाले उत्तरमार्ग से यात्रा करता है; किन्तु पुरुषोत्तम भगवान् दोनों के आधारभूत हैं I जैसे सूर्य अपनी किरणों से सबको प्रकाशित करते हुए भी सबसे अलग रहते हैं, वैसे ही जिन परमात्मा से इस अंड की और पंचभूत, एकादश इन्द्रिय, एवं गुणमय विराट् की उत्पत्ति हुई है--वे प्रभु भी इन समस्त वस्तुओं के अंदर और उनके रूपमें रहते हुए भी उनसे सर्वथा अतीत हैं I

Page 115 of 523

Page 116 of 523

ब्रह्मा जी ने आगे बताया---जिस समय इस विराट् पुरुष के नाभि-कमल से मेरा जन्म
हुआ, उस समय इस पुरुष के अंगों के अतिरिक्त मुझे और कोई भी यज्ञ की सामग्री नहीं मिली I तब मैंने उनके अंगों में ही यज्ञ के पशु, युप (स्तम्भ), कुश, यज्ञभूमि और यज्ञ के योग्य उत्तम काल कल्पना की I यज्ञ के लिए आवश्यक पात्र आदि स्नेहपदार्थ, छ: रस, लोहा, मिटटी, जल, ऋक, यजु:, साम, चातुर्होत्र, यज्ञों के नाम, मन्त्र, दक्षिणा, व्रत, देवताओं के नाम, पद्धतिग्रन्थ, संकल्प, तन्त्र (अनुष्ठान की रीति), गति, मति, श्रद्धा, श्रद्धा, प्रायश्चित और समर्पण-यह समस्त यज्ञ-सामग्री मैंने विराट् पुरुष के अंगों से ही इकट्ठी की I इसप्रकार विराट् पुरुष के अंगों से ही सारी सामग्री का संग्रह करके मैंने उन्हीं सामग्रियों से उन यज्ञरूप परमात्मा का यज्ञ के द्वारा यजन किया I भाव या अभाव, कार्य या कारण के रूप में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो भगवान से भिन्न हो I (षष्ठम अध्याय) मुनिराज शर्मा}

श्रीमद्भागवत में इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है------ उस समय देवताओं ने यज्ञ करना

Page 116 of 523

Page 117 of 523

चाहा, परन्तु यज्ञ की कोई सामग्री उपलब्ध न हुई, तब उन्होंने पुरुषस्वरूप में ही हविष्य की भावना की I जब पुरुषरुप हविष्य
से हि देवताओं ने यज्ञ क विस्तार किया, उस समय उनके सङ्कल्पानुसार वसन्त ऋतु घी हुई, ग्रीष्म रितुसे समिधा का काम दिया और शरद् ऋतु से विशेष प्रकार के चारु-पुरोडाशादि हविष्य की आवश्यकता पूर्ण हुई I

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----जब देवों ने विराट पुरुष रूप को हवि मानकर यज्ञ का शुभारम्भ किया, तब घृत वसंत ऋतु, ईंधन(समिधा) ग्रीष्म ऋतु एवं हवि शरद ऋतु हुई I

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- जिस पुरुषरूप हविष्य से देवों ने यज्ञ का विस्तार किया, वसंत उसका घी था, ग्रीष्म काष्ठ एवं शरद् हवि थी।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

Page 117 of 523

यत्पुरुषेण हविषा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म ऽइध्मः
शरद्धविः ।

उक्त प्रकार देव – शरीर की प्राप्ति पर
देवताओं ने पुरुष रूप को मानस हविमानकर
उसके द्वारा मानस यज्ञ को विस्तृत किया ।
उस समय वसंत ऋतु , घृत , ग्रीष्म समिधा और शरद
ऋतु हवि हुई ।

वाजसनेयि —माध्यन्दिन —शुक्ल यजुर्वेद —
संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या
इस प्रकार है :--

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोस्यासीदाज्यं ग्रीष्म ऽइध्मः
शरद्धविः ।

जब देवों ने विराट् पुरुषरूप को हवि
मानकर यज्ञ का शुभारम्भ किया , तब घृत बसंत
ऋतु , ईंधन (समिधा) ग्रीष्मऋतु एवं हवि
शरद्ऋतु हुई । {यहाँ सृष्टि यज्ञ के
प्रारम्भिक स्वरूप का वर्णन है ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना
निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां
समलङ्कृतम् व्याख्या :-

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्मऽइध्मः
शरद्धविः ।

यत् । पुरुषेण । हविषा । देवा :। यज्ञम् ।
अतन्वत ॥ वसन्त :। अस्य । आसीत् । आज्यम् ।
ग्रीष्म :। इध्म :। शरत् । हवि :॥

पदार्थ :--(यत्) यदा (पुरुषेण) पूर्णेन
परमात्मा (हविषा) होतुमादातुमर्हेण
(देवा :) विद्वांस : (यज्ञम्) मानसं
ज्ञानमयम् (अतन्वत) तन्वते विस्तृणन्ति
(वसन्त :) पूर्वाह्ण : (अस्य) यज्ञस्य (आसीत्)
अस्ति (आज्यम्) (ग्रीष्म :) मध्याह्न :
(इध्म :) प्रदीपक : (शरत्) अर्द्धरात्र : (हवि :)
होतव्यं द्रव्यम् ॥

अन्वय :----हे मनुष्या :! यद्धविषा पुरुषेण
सह देवा यज्ञमतन्वत तदाऽस्य वसन्त आज्यं
ग्रीष्म इध्म : शरद्धविरासीदिति यूयमपि
विजानीत ॥

भावार्थ :-- यदा बाह्यसामग्रयभावे
विद्वांसो
सृष्टिकर्त्तुरीश्वरस्योपासनाख्यं

Page 120 of 523

मानसं ज्ञानयज्ञं विस्तारयेयुस्तदा पूर्वाह्णादिकाल एव साधनरूपेण कल्पनीय:ll

पदार्थ:-- हे मनुष्यो! (यत्) जब (हविषा) ग्रहण करने योग्य (पुरुषेण) पूर्ण परमात्मा के साथ (देवा:) विद्वान् लोग (यज्ञन्) मानसज्ञान यज्ञ को (अतन्वत) विस्तृत करते हैं, (अस्य) इस यज्ञ के (वसन्त:) पूर्वाह्ण काल ही (आज्यम्) घी (ग्रीष्म:) मध्याह्न काल (इध्म:) इन्धन प्रकाशक और (शरत्) आधी रात (हवि:) होमने योग्य पदार्थ (आसीत्) है, ऐसा जानो ll

भावार्थ:-- जब बाह्य सामग्री के अभाव में विद्वान् लोग सृष्टिकर्ता ईश्वर की उपासनारूप मानसज्ञान यज्ञ को विस्तृत करें, तब पूर्वाह्न आदि काल ही साधनरूप से कल्पना करना चाहिये ll

सप्तास्येत्यस्य नारायण ऋषि: l पुरुषो देवताl अनुष्टुप छन्द: l गान्धार: स्वर:l पुनस्तमेव विषयमाह ll फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ll

-- ------------------------------ ------------------------------ -- --------------

Page 120 of 523

ॐ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रि : सप्त
समिधः कृताः ।

देवा यद्यज्ञं तन्वाना अवध्नन्
पुरुषं पशुम् ॥ (पु॰सू॰ 15)

अन्वयः --- यद् देवा यज्ञं पुरुषं पशुम्
तन्वाना अवध्नन् अस्य सप्त आसन् परिधय :
त्रिसप्त समिधः कृताः ।

शब्दार्थः ---- देवा ---देवताओंने ; यद् ---जिस;
यज्ञं ---यज्ञ के लिये ; पुरुषं ---पुरुष को ;
पशुम् ---प्राणी को , अर्थात बलि पशु ;
तन्वाना ----कोमलता से , संकल्प द्वारा ;
अवध्नन् ----बान्ध दिया , निश्चित् कर दिया ,
नियुक्त किया ; अस्य ---इसकी ; सप्त -----सात ;
आसन्---बिस्तर , आसन; परिधय :----परिधियां ;
त्रिसप्त ----इक्कीस् ; समिधः —-समिधायें ;
कृताः ----बनायी गई ;

अर्थ :-- जब देवताओं ने जिस यज्ञ के लिये
पुरुष प्राणी को संकल्प द्वारा नियुक्त
किया था सात समुद्र उसके आसन की परिधि थे
और इक्कीस प्रकार की समिधायें बनाई थी । (यह
अलग बात है कि मानसिक यज्ञ में छन्दों को
ही समिधा कल्पित किया गया है ।

Page 122 of 523

श्रीमद्भागवत में अर्थ इस प्रकार मिलता है-------प्रजापति के प्राणरूपी देवताओं ने जब मानसिक यज्ञ का अनुष्ठान करते समय संकल्प द्वारा पुरुष रूपी पशु का बन्धन किया था, उस समय सात समुद्र, इस यज्ञ की परिधि थे और इक्कीस प्रकार के छंदों की समिधा हुई! (गायत्री आदि 7, श्रुति जगति आदि 7, और कृष्नि आदि 7---ये 21 छन्द हैं I)

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- देवों ने जिस यज्ञ का विस्तार किया, उसमें विराट पुरुष को ही पशु (हव्य) रूप की भावना से बाँधा (नियुक्त किया), उसमें यज्ञ की सात परिधियाँ (सात समुद्र) एवं इक्कीस (छंद) समिधाएँ हुईंI

मेरे अभिप्राय से अर्थ यह है--देवताओं ने जिस यज्ञ के लिये पुरुष प्राणी को संकल्प द्वारा नियुक्त किया था सात समुद्र उसके आसन की परिधि थे और इक्कीस प्रकार की समिधायें बनाई थी I (यह अलग बात है कि मानसिक यज्ञ में छन्दों को ही समिधा कल्पित किया गया है I)

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- देवताओं ने जब यज्ञ करते समय

Page 122 of 523

Page 123 of 523

(संकल्प से) औरुश्रुप पशु का बंधन किया, तब सात समुद्र इसकी परिधि (मेखलाएँ) थे। इक्कीस प्रकार के छंदों की (गायत्री,अतिजगती, और कृति में से प्रत्येक के सात-सात प्रकार से) समिधाएँ बनीं।

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

ॐ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रि: सप्त
समिधः कृताः I

देवा यद्यज्ञं तन्वाना s अवध्नन्
पुरुषं पशुम् II

जब देवताओं ने मानस यज्ञ को विस्तृत करते हुए इस विराट्पुरुष में पशु रूप की भावना कर बाँधा, तब यज्ञ की सात परिधियाँ हुईं और इक्कीस छंद इसकी समिधाएँ हुईं I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रि: सप्त
समिधः कृताः I

Page 123 of 523

देवा यद्यज्ञं तन्वाना ऽ अवध्नन्
पुरुषं पशुम् ॥

देवों ने जिस यज्ञ का विस्तार किया, उसमें विराट्पुरुष को ही पशु (हव्य) रूप की भावना से बाँधा (नियुक्त किया), उसमें यज्ञ की सात परिधियाँ (सात समुद्र) एवं इक्कीस (छंद) समिधाएँ हुईं।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या

:-

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रि: सप्त
समिधः कृताः ।

देवा यद्यज्ञं तन्वानाऽअबध्नन्
पुरुषं पशुम् ॥

सप्त । अस्य । आसन्। परिधय । इति परिऽधय :। त्रि :। सप्त । समिध इति सम्ऽइध :। यत् । यज्ञम् । तन्वाना :। अबध्नन् । पुरुषम् । पशुम् ॥

पदार्थ :--(सप्त) गायत्र्यादीनि छन्दांसि (अस्य) यज्ञस्य (आसन्) सन्ति (परिधय :) परित : सर्वत : सूत्रवद्धीयन्ते ये ते (त्रि :)

Page 125 of 523

त्रिवारम् (सप्त) एकविंशति: प्रकृति: महत्तत्वं, अहंकार:, पञ्च स्थूलानि, पञ्च सूक्ष्मभूतानि, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि,सत्त्वरजस्मांसि त्रयो गुणाश्चेत्येकविंसशति: (समिध:) सामग्रीभूताः (कृता:) निष्पदिता: (देवा:) विद्वांसः (यत्) यम् (यज्ञम्) मानसं ज्ञानमयम् (तन्वानाः) विस्तृण्वन्तः (अबध्नन्) बध्नन्ति (पुरुषम्) परमात्मानम् (पशुम्) द्रष्टव्यम्II

अन्वय:--हे मनुष्या:! यद्यं यज्ञं तन्वाना देवा: पशुं पुरुषं हृद्यबध्नन् तस्याऽस्य सप्त परिधय आसंस्त्रि: सप्त समिध: कृतास्तं यथाविद विजानीत II

भावार्थ:--हे मनुष्या:! यूयमिममनेकविधकल्पितपरिध्यादिसामग्रीयु क्तं यज्ञं कृत्वा पूर्णमीश्वरं विज्ञाय सर्वाणि प्रयोजनानि साध्नुत II

पदार्थ:--हे मनुष्यो! (यत्) जिस (यज्ञम्) मानसज्ञान यज्ञ को (तन्वाना:) विस्तृत
करते हुए (देवा:)विद्वान् लोग (पशुम्) जानने योग्य (पुरुषम्) परमात्मा को हृदय में (अबध्नन्) बांधते(अस्य) इस यज्ञ के

Page 125 of 523

(सप्त) सात गायत्री आदि छन्द (परिधय :) चारों ओर से सूत के सात लपेटों के समान (आसन्) हैं (त्रि :, सप्त) इक्कीस अर्थात् प्रकृति , महत्तत्व , अहंकार , पांच सूक्ष्मभूत , पांच स्थूलभूत , पांच ज्ञानेन्द्रिय और सत्त्व , रजस् , तमस् , तीन गुण ये (समिध :) सामग्रीरूप (कृता :) किये उस यज्ञको यथावात् जानो ॥

भावार्थ :-- हे मनुष्यो ! तुम लोग इस अनेक प्रकार से कल्पित परिधि आदि सामग्री

से युक्त मानस यज्ञ को कर उससे पूर्ण ईश्वर को जान के सब प्रयोजनों को सिद्ध

करो ॥

यज्ञेनेत्यस्य नारायण ऋषि :। पुरुषो देवता । विराट् त्रिष्टुप छन्द :। धैवत : स्वर :॥ पुनस्तमेव विषयमाह ॥ फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

Page 127 of 523

ते ह् नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः I (पु॰सू॰16)

अन्वयः- तानि धर्माणि देवाः प्रथमानि आसन् यज्ञेन यज्ञम् अयजन्त I ते ह् नाकं महिमानः सचन्त, यत्र पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति I

शब्दार्थः---- तानि---उन्होंने, जिन्होंने; धर्माणि---धर्मात्मा, महात्मा; देवाः--- देवताओं ने; प्रथमा---पहले से ही, पूर्व में ही; न्यासन्---धरोहर के रूप में रखे, सङ्कल्प् किये हुये; यज्ञेन---यज्ञ के द्वारा; यज्ञम्---यज्ञ-पुरुष का,; अयजन्त---- अनुष्ठान किया; ते---वे; ह्---ही; नाकं---- स्वर्गमें; महिमानः---महत्व, सम्मान, महानता को प्राप्त हुए; सचन्त---संचय करते हैं; यत्र---जहां; पूर्वे---पूर्व में; पहले से ही; साध्याः---साधक गण; देवाः--देवगण; सन्ति—रहते हैं;

अर्थः--- धर्मात्मा देवताओं जिन्होंने पूर्वं में धरोहर स्वरुप संकल्प किये हुये यज्ञके द्वारा यज्ञपुरुष का अनुष्ठान किया I वे ही स्वर्गलोक की महानता अर्थात स्वर्ग के यश को सञ्चय करते हैं जहां पूर्व से ही साधक, सुर देवगण रहते हैं I अर्थात

Page 127 of 523

Page 128 of 523

इसप्रकार देवताओं ने सबसे पहले पुरुष की आराधना की, यद्यपि यह एक अध्यात्मिक यज्ञ था, फिर भी यह धर्म में सबसे पहले हुआ, जो यह यज्ञ करते हैं, वे अवश्य ही स्वर्ग को प्राप्त करेंगे जिनको साध्य देवताओं ने प्राप्त किया है I

श्रीमद्भागवत में इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है---- देवताओं ने पूर्वोक्त मानसिक यज्ञ द्वारा यज्ञस्वरूप पुरुष-प्रजापति की आराधना की I इस आराधना से समस्त जगत् को धारण करने वाले वे पृथ्वी आदि मुख्य भूत प्रकट हुए I इस यज्ञ की उपासना करने वाले महात्मा लोग उस स्वर्गलोक को प्राप्त होते हैं, जहां प्राचीन साध्य देवता निवास करते हैंI

कहीं अन्यत्र इसका अर्थ इस प्रकार मिलता है----- आदि श्रेष्ठ धर्मपरायण देवों ने, यज्ञ से यज्ञरूप विराट सत्ता का यजन किया | यज्ञीय जीवन जीनेवाले धार्मिक महात्माजन पूर्वकाल के साध्य देवताओं के निवास, स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं I ईश्वर की महिमा बताने के लिए महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी ने ठीक ही कहा है------

Page 128 of 523

Page 129 of 523

गीता प्रेस गोरखपुर के वेद-कथाङ्क में अर्थ:- --देवताओं ने (पूर्वोक्त रूप से)
यज्ञ के द्वारा यज्ञस्वरूप परम्-पुरुष का यजन (आराधन, यज्ञ) किया। इस यज्ञ से सर्व प्रथम धर्म उत्पन्न हुए। उन धर्मों के
आचरण से वे देवता महान महिमावाले हो कर उस स्वर्गलोक का सेवन करते हैं, जहां प्राचीन साध्य-देवता निवास करते हैं।[अत:हम सभी सर्वव्यापी जड़-चेतनात्मकरूप विराट् पुरुष की करबद्ध स्तुति करते हैं।]

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों की व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् I

ते ह् नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः I

मानस यज्ञ के द्वारा देवताओं ने यज्ञ रूप प्रजापति की पूजा की और वे धर्मधारकों में प्रमुख हुए I जिस स्वर्ग लोक में प्राचीन

Page 129 of 523

Page 130 of 523

साध्य देवता निवास करते हैं, उसी स्वर्ग को सिद्ध महात्माजन प्राप्त होते हैं I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् I

ते ह् नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः I

आदिकालीन श्रेष्ठ धर्मपरायण देवों ने, यज्ञ द्वारा यज्ञरूप विराट् का यजन कियाI यज्ञीय जीवन जीनेवाले (याजक) पूर्वकाल के सिद्ध- साध्यगणों तथा

देवताओं के निवास महिमाशाली स्वर्गलोक को मानते हैं I

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनानिर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या:-

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि
धर्माणि प्रथमान्यासन् I

Page 130 of 523

ते ह् नाकं महिमानः सचन्त यत्र
पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

यज्ञेन । यज्ञम । अयजन्त । देवा :। तानि ।
धर्माणि । प्रथमानि । आसन्॥ ते । ह् । नाकम् ।
महिमान :। सचन्त । यत्र । पूर्वे । साध्या :।
सन्ति । देवा :।

पदार्तः :--(यज्ञेन) उक्तेन ज्ञानेन
(यज्ञम्) पूजनीयं सर्वरक्षकमग्निवत्तपनम्
(अयजन्त) पूजयन्ति (देवा :) विद्वांस : (तानि)
ईश्वरपूजनादीनि (धर्माणि) धारणात्मकानि
(प्रथमानि) अनादिभूतानि मुख्यानि (आसन्)
सन्ति (ते) (ह) एव (नाकम्) अविद्यामानदु :खं
मुक्तिसुखम् (महिमान :) महत्त्वयुक्ता :
(सचन्त) समवयन्ति प्राप्नुवन्ति (यत्र)
यस्मिन् सुखे (पूर्वे) इत: पुर्वसम्भवा :
(साध्या :) कृतसाधना : (सन्ति) (देवा :)
देदीप्यमाना विद्वांस :॥

(निरुक्तकार इमं मन्त्रमेव व्याचष्टे -
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा
अग्निनाग्निमयजन्त देवा अग्नि
पशुरासीत्तमालभन्त तेनायजन्तेति च
ब्राह्मणम् । तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्
ते ह नाकं महिमान : समसेवन्त यत्र पूर्वे

Page 132 of 523

साध्या: सन्ति देवा: साधना द्युस्थाने देवगणा इति नैरुक्ता:II निरुक्ति नैगम अध्याय 12I खं 41II)

अन्वय:--हे मनुष्या:! ये देवा यज्ञेन यज्ञमयजन्त तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ते महिमान: सन्तो यत्र पूर्वे साध्या देवा: सन्ति तन्नाकं ह सचन्त
तद्यूयमप्याप्नुत II

भावार्थ:--मनुष्यैर्योगाभ्यासादिना सदा परमेश्वर उपासनीय: I अनेनानादिकालीनधर्मेण मुक्तिसुखं प्राप्य पूर्वविद्वद्वदानन्दितव्यम्II

पदार्थ:-- हे मनुष्यो! जो (देवा:) विद्वान् लोग (यज्ञेन) पूर्वोक्त ज्ञानयज्ञ से(यज्ञम्)

पूजनीय सर्वरक्षक अग्निवत् तेजस्वी ईश्वर की (अयजन्त) पूजा करते हैं (तानि) वे ईश्वर की पूजा आदि (धर्माणि) धारणरूप धर्म (प्रथमानि) अनादि रूप से मुख्य (आसन्) हैं (ते) वे विद्वान् (महिमान:) महत्त्व से युक्त हुए (यत्र) जिस सुख में (पूर्वे) इस समय से पूर्व हुए (साध्या:) साधनों को किये

Page 132 of 523

Page 133 of 523

हुए (देवा:) प्रकाशमान विद्वान् (सन्ति) हैं, उस (नाकम्) स्ब दु:खरहित मुक्तिसुख को (ह) ही (सचन्त) प्राप्त होते है, उसको तुम लोग प्राप्त होओ II

भावार्थ:--मनुष्यों को चाहिए कि योगाभ्यास आदि से सदा ईश्वर की उपासना कर इस अनादिकाल से प्रवृत्त धर्म से मुक्तिसुख को पाके पहिले मुक्त हुए विद्वानों के समान आनन्द भोगें II

अद्भय इत्यस्योत्तरनारायण ऋषि:I आदित्यो देवताI भुरिक् त्रिष्टुप् छन्द:I धैवत स्वर:II पुनस्तेनमेव विषयमाह II फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है II

------------------------- -------------------------
-- ----------------------

ऋग्वेद के अनुसार पुरुष सूक्त के 16 सूक्तों का उल्लेख मिलता है I

बाद में 2 सूक्त और संज्ञान में आये हैं जो इस प्रकार हैं I वैसे यजुर्वेद सायण-भाष्य में २२ सूक्त बताये गये हैं I विशेष— [(कृष्ण यजुर्वेद पुरुषसूक्त व सायण

Page 133 of 523

Page 134 of 523

भाष्य और सांख्य मेंइसप्रकार दिया गया है
—

ॐ वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णें तमसस्तु पारे ।

सर्वाणि भूतानि विचिन्त्य धीरो नामानि कृत्वाभिवदन् यदास्ते ।।17 II

अन्वय -तमस: तु पारे आदित्यवर्णे एतम् महान्तम् पुरुषं अहम् वेद । यत् धीरो सर्वाणि भूतानि विचिन्त्य नामानि कृत्वा अभिवदन् आस्ते।।

शब्दार्थ = तमस: -अविद्या रूप अंधकार से, तु-तो,पारे -अतीत /परे/से दूर, आदित्यवर्णे - सूर्य की भांति स्वयंप्रकाशस्वरूप में, एतम् - इस, महान्तम् पुरुषं- महान पुरुष (परमेश्वर) को, अहम् वेद -मैं जानता हूं । यत्-जो, धीरो
- ध्यानशील/ बुध्दिमान/ अथवा बुद्धिमान के लिए, सर्वाणि भूतानि - सभी प्राणियों को, विचिन्त्य - विचार करके / उनके अनुरूप चिंतन करके, नामानि कृत्वा - नामों/ विभिन्न नामसंज्ञा प्रदान करके, अभिवदन्-

Page 134 of 523

Page 135 of 523

संबोधित करते हुए /नमस्क्रिया द्वारा, आस्ते- विराजमान हैं / बैठा है।।

सरलार्थ = अविद्या रूप अंधकार से अतीत अर्थात् परे सूर्य के भांति

स्वयंप्रकाशस्वरूप इस महान पुरुष (परमेश्वर) को मैं जानता हूं । जो ध्यानशील, बुद्धिमान (अथवा बुद्धिमान के लिए) सभी प्राणियों को विचारकर विभिन्न नामसंज्ञा प्रदान करके, संबोधित करते हुए विराजमान है अर्थात् बैठा (प्रतिष्ठित) है) पाठान्तर से यह श्लोक इस प्रकार भी है:--वेदाहमेतम् पुरुषम् महान्तम् आदित्यवर्णम् तमसस्तु पारे । सर्वाणि रूपाणि विजित्य धीरो नामानि कृत्वा भिवदन्यदास्ते॥17II

अर्थ:--मैं उस महान, प्रसिद्ध पुरुष को जानता हूँ, जो सूर्य के भांति चमकता है जो अन्धकार से परे है, जिसने सभी स्वरूपों को बनाया, जिसने सबको नाम दिया और जो सब पर राज्य करता है I (इस श्लोक में विचिन्त्य के स्थान पर विजित्य शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ होता है जीतकर अर्थात सबको अपने अधिकार में लेकर)

Page 135 of 523

Page 136 of 523

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों
की व्याख्या है उसमें यह श्लोक संख्या 18 पर दिया है जिसका का अर्थ इस प्रकार है:-

वेदाहमेतं पुरुषम महान्तमादित्यवर्णं तमस: परस्तात् I

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्य:पन्था विद्यतेऽयनाय II

मैं इस अत्यंत महान, अनुपम आदित्य रूप पुरुष को अन्धकार रहित जानता हूँI उस आदित्य को जान लेने पर मृत्यु को जीता जाता है I आश्रय प्राप्ति के लिए अन्य कोई मार्ग नहीं है I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमस: परस्तात् I

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्य:पन्था विद्यतेऽयनाय II

Page 136 of 523

सूर्य के समतुल्य तेजसम्पन्न ,
अंधकाररहित , वह विराट् पुरुः है , जिसको
जानने के पश्चात साधक (उपासक) को मोक्ष की
प्राप्ति होती है । मोक्ष प्राप्ति का यही
मार्ग है , इससे भिन्न कोई मार्ग नहीं ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना
निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां
समलङ्कृतम्

व्याख्या :--

वेदाहमेतं पुरुषं
महान्तमादित्यवर्णं तमस : परस्तात् ।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति
नान्य :पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

वेद । अहम्। एतम् । पुरुषम् । महान्तम् ।
आदित्यवर्णमित्यादित्यऽवर्णम् ।
विदित्वा । अति। मृत्युम् । एति । न। अन्य :।
पन्था :। विद्यते । अयनाय ॥

पदार्थ :-- (वेद) जानामि (अहम्) (एतम्)
पूर्वोक्तं परमात्मानाम् (पुरुषम्)

स्वस्वरूपेण पूर्णम् (महान्तम्)
महागुणविशिष्टम् (आदित्यवर्णम्)

आदित्यस्य वर्ण : स्वरूपमिव स्वरूपं यस्य तं स्वप्रकाशम् (तमस:) अज्ञानान्धकाराद्वा (परस्तात्) परस्मिन् वर्त्तमानम् (तम्) (एव) (विदित्वा) विज्ञाय (अति) उल्लङ्घने (मृत्युम्) दु :खप्रदं मरणम् (एति) गच्छति (न) (अन्य :) भिन्न : (पन्था :) मार्ग : (विद्यते) भवति (अयनाय) अभीष्टस्थानाय मोक्षाय ॥

अन्वय :--हे जिज्ञासोऽहं यमेतं महान्तमादित्यवर्णं तमस : परस्ताद्वर्त्तमानं पुरुषं वेद तमेव विदित्वा भवान् मृत्युमत्येति । अन्य : पन्था अयनाय न विद्यते ॥

भावार्थ :-- यदि मनुष्या ऐहिकपारमार्थिके सुखे इच्छेयुस्तर्हि सर्वेभ्यो बृहत्तमं स्वप्रकाशानन्दस्वरूपमज्ञानलेशाद् दूरे वर्त्तमानं परमात्मानं ज्ञात्वैव मरणाद्यगाधदु :खसागरात् पृथग्भवितुं शक्नुवन्त्ययमेव सुखप्रदो मार्गोऽस्ति । अस्मादन्य : कश्चिदपि मनुष्याणां मुक्तिमार्गो न भवति ॥

पदार्थ :-- हे जिज्ञासु पुरुष ! (अहम्) मैं जिस (एतम्) इस पूर्वोक्त (महान्तम्) बड़े -

बड़े गुणों से युक्त (आदित्यवर्णम्) सूर्य के तुल्य प्रकाशस्वरूप् (तमस:) अन्धकार वा अज्ञान से (परस्तात्) पृथक् वर्त्तमान (पुरुषम्) स्वस्वरूप से सर्वत्र पूर्ण परमात्मा को (वेद) जानता हूं (तम्, एव) उसीको (विदित्वा) जान के आप (मृत्युम्) दु:खदायी मरण को (अति, एति) उल्लङ्घन कर जाते हो, किन्तु (अन्य:) इससे भिन्न (पन्था:) मार्ग (अयनाय) अभीष्ट स्थान मोक्ष के लिये (न, विद्यते) नहीं विद्यमान है ॥

भावार्थ :-- यदि मनुष्य इस लोक-परलोक के सुखों की इच्छा करें तो सबसे अति बड़े स्वयंप्रकाश और आनन्दस्वरूप अज्ञान के लेश से पृथक वर्त्तमान परमात्मा को मरणादि अथाह दु:खसागर से पृथक हो सकते हैं, यही सुखदायी मार्ग है, इससे भिन्न कोई भी मनुष्यों की मुक्ति का मार्ग नहीं है ॥

प्रजापतिरित्यस्योत्तरनारायण ऋषि:। आदित्यो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत

स्वर:॥ पुनरीश्वर: कीदृश इत्याह ॥ फिर ईश्वर कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

Page 140 of 523

-- ------------------------------ ------------------------------ -- ----------------

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों
की व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

अद् भ्य: सम्भृत: पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मण: समवर्त्तताग्रे I

तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्यदेवत्वंमाजानमग्रे II

पृथ्वी आदि की रचना के निमित्त पंचभूत से जिस रस की पुष्टि हुई और जो

विश्वकर्म वाला है, उसका रस सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ, उस रस को और रूप को धारण करते हुए सूर्य नित्य प्रकट होते हैं I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

अद् भ्य: सम्भृत: पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मण: समवर्त्तताग्रे I

Page 140 of 523

तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति
तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥

सर्वप्रथम सब कर्म करने वाले परमात्मा (विश्वकर्मा) ने पृथ्वी एवं जल बनाये और उस जलरूप रस (प्राणतत्व) से सृष्टि का निर्माण हुआ । मर्त्य को देवत्व प्रदान करते हुए वह विश्व - निर्माता विश्व का निर्माण करता है ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या :-

अद् भ्य : सम्भृत : पृथिव्यै रसाच्च
विश्वकर्मण : समवर्त्तताग्रे ।

तस्य त्वष्टा विदधद् रूपमेति
तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥

अद्भ्य इत्युत्ऽभ्यः । सम्भृत इति सम्ऽभृतः । सम्। अवर्त्तत । अग्रे ॥ तस्य । त्वष्टा । विदधदिति विऽदधत् । रूपम् । एति । तत् । मर्त्यस्य । देवत्वमिति देवऽतवम् आजानमित्याऽजानम् । अग्रे ॥

पदार्थ :-- (अद्भ्य :) जलेभ्य : (सम्भृत :) सम्यक् पुष्ट (पृथिव्यै) पर्थिव्या :। अत्र

Page 142 of 523

पञ्चम्यर्थे चतुर्थी (रसात्) जिह्वाविषयात् (च) (विश्वकर्मणः) विश्वानि सर्वाणि सत्यानि कर्माणि यस्याश्रयेण तस्मात् सूर्य्यात् (सम्) (अवर्त्तत) (अग्रे) प्राक् (तस्य) (त्वष्टा) तनूकर्ता (विदधत्) विधानं कुर्वन् (रूपम्) स्वरूपम् (एति) (तत्) (मर्त्यस्य) मनुष्यस्य (देवत्वम्) विद्वत्त्वम् (आजानम्) समन्ताज्जनानाम् मनुष्याणामिदं कर्त्तव्यं कर्म (अग्रे) आदित:II

अन्वय:-- हे मनुष्या:! योऽद्भय: पृथिव्यै विश्वकर्मणश्च सम्भृतस्तस्माद् रसादग्र इदं सर्वं समवर्त्तत तस्याऽस्य जगतो तद् रूपं त्वष्टा विदधदग्रे मर्त्यस्याजानं देवत्वमेतिII

भावार्थ:-- हे मनुष्या:! योऽखिलकार्यकर्ता परमात्मा कारणात् कार्याणि निर्मिमीते

सकलस्य जगत: शरीराणां रूपाणि विदधाति तज्ज्ञानं तदाज्ञापालनमेव

देवत्वमस्तीति जानीत II

पदार्थ:-- हे मनुष्यो! जो (अद्भय:) जलों (पृथिव्यै:) पृथिवी (च) और (विश्वकर्मण:) सब

Page 142 of 523

कर्म जिसके आश्रय से होवे उस सूर्य से (सम्भृत :) सम्यक् पुष्ट हुआ उस (रसात्) रस से (अग्रे) पहिले यह सब जगत् (सम् अवर्त्तत) वर्त्तमान होता है (तस्य)उस इस जगत् के (तत्) उस (रूपम्) स्वरूप को (त्वष्टा) सूक्ष्म करने वाला ईश्वर (विदधत्) विधान करता हुआ (अग्रे) आदि में (मर्त्यस्य) मनुष्य के (आजानम्) अच्छे प्रकार कर्तव्य कर्म और (देवत्वम्) विद्वता को (एति) प्राप्त होता है ॥

भावार्थ :-- हे मनुष्यों ! जो सम्पूर्ण कार्य करने हारा परमेश्वर कारण से कार्य

बनाता है , सब जगत् के शरीरों के रूपों को बनाता है , उसका ज्ञान और उसकी आज्ञा का पालन ही देवत्व है , ऐसा जानो ॥

वेदाहमित्यस्योत्तरनारायण ऋषि :। आदित्यो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्द :। धैवत : स्वर :॥ अथ विज्ञानं जिज्ञासवे कथमुपदिशेदित्याह ॥

अब विद्वान् जिज्ञासु के लिये कैस उपदेश करे , इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

Page 144 of 523

-- ------------------------------ ------------------------------ -- --------

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽअन्तरजायमानो बहुधा वि जायते I

तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा II श्लोक 19)

सर्वात्मा प्रजापति गर्भ में प्रविष्ट होकर अजन्मा होते हुए भी अनेक कारण रूप होकर जन्म लेते हैं I ब्रह्मज्ञानीजन उन प्रजापति के स्थान को देखते हैं I सम्पूर्ण भुवन उस कारणात्मक प्रजापति रूप ब्रह्म में ही स्थित है I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते I

Page 144 of 523

तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह
तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥

प्रजापालक परमात्मा की सत्ता सम्पूर्ण
पदार्थों में विद्यमान है , वह अजन्मा होकर
भी अनेक रूपों में प्रकट होता है । उसकी
कारण शक्ति में सम्पूर्ण भुवन समाहित हैं ।
ज्ञानीजन उसके मुख्य स्वरूप को देख पाते
हैं ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना
निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां
समलङ्कृतम् व्याख्या :-

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽअन्तरजायमानो
बहुधा वि जायते ।

तस्य योनिं परि पश्यन्ति
धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥

प्रजापतिरिति प्रजाऽपति :। चरति । गर्भे ।
अन्त :। अजायमान :। बहुधा । वि । जायते ॥ तस्य ।
योनिम् । परि । पश्यन्ति । धीरा :। तस्मिन् । ह ।
तस्थु :। भुवनानि । विश्वा ॥

पदार्थ :-- (प्रजापति :) प्रजापालको
जगदीश्वर : (चरति) (गर्भे) गर्भस्थे
जीवात्मानि (अन्त :) हृदि (अजायमान :)

स्वस्वरूपेणानुत्पन्न : सन् (बहुधा) बहुप्रकारै : (वि) विशेषेण (जायते) प्रकटो भवति (तस्य) प्रजापते : (योनिम्) स्वरूपम् (परि) सर्वत : (पश्यन्ति) प्रेक्षन्ते (धीरा :) ध्यानवन्त : (तस्मिन्) जगदीश्वरे (ह) प्रसिद्धम् (तस्थु :) तिष्ठन्ति (भुवनानि) भवन्ति येषु तानि लोकजातानि (विश्वा) सर्वाणि ॥

अन्वय :--हे मनुष्या :! योऽजायमान : प्रजापतिगर्भेऽन्तश्चरति बहुधा विजायते तस्य यं योनिं धीरा : परिपश्यन्ति तस्मिन् ह विश्वा भुवनानि तस्थु :॥

भावार्थ :-- योऽयं सर्वरक्षक ईश्वर : स्वयमुत्पन्न : सन् स्वसामर्थ्याज्जगदुत्पाद्य तत्रान्त : प्रविश्य सर्वत्र विचरति यमनेकप्रकारेण प्रसिद्धं विद्वांस एव जानन्ति तं जगदधिकरणं सर्वव्यापकं परमात्मानं विज्ञाय मनुष्यैरानन्दितव्यम् ॥

पदार्थ :-- हे मनुष्यो ! जो (अजायमान :) अपने स्वरुप से उत्पन्न नहीं होनेवाला (प्रजापति :) प्रजा का रक्षक जगदीश्वर (गर्भे) गर्भस्थ जीवात्मा और (अन्त :) सबके

Page 147 of 523

हृदय में (चरति) विचरता है और (बहुधा) बहुत प्रकारों से (वि, जायते) विशेषकर प्रकट होता (तस्य) उस प्रजापति के जिस (योनिम्) स्वरूप को (धीरा:) ध्यानशील विद्वान् जन (परि, पश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं (तस्मिन्) उसमें (ह) प्रसिद्ध (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक-लोकान्तर तस्थु: स्थित हैं II

भावार्थ:-- जो यह सर्वरक्षक ईश्वर आप उत्पन्न न होता हुआ अपने सामर्थ्य से जगत् को उत्पन्न कर और उसमें प्रविष्ट होके सर्वत्र विचरता है, जिस अनेक प्रकार से प्रसिद्ध ईश्वर को विद्वान् लोग ही जानते हैं, उस जगत् के आधाररूप सर्वव्यापक परमात्मा को जान के मनुष्यों को आनन्द भोगना चाहिए II

यो देवेभ्य इत्यस्योत्तरनारायण ऋषि:I सूर्य्यो देवताI अनुष्टुप् छन्द:I गान्धार: स्वर:II अथ सूर्य: कीदृश इत्याह II अब सूर्य्य कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है II

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के

Page 147 of 523

Page 148 of 523

अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों
की व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

यो देवेभ्यऽ आतपति यो देवानां पुरोहित I

पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये II (श्लोक 20)

जो सूर्यात्मक प्रजापति सब ओरसे देवताओं के लिए प्रकाशित होते हैं और जो देवताओं में पूजनीय एवं उनसे प्रकट हुए हैं, उन तेजस्वी ब्रह्म को नमस्कार हैI

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

यो देवेभ्यऽ आतपति यो देवाना पुरोहित: I

पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये II

देव समुदाय में अग्रणी एवं उन्हें(देवोंको) प्रकाशित करने वाले, जिनका प्राकट्य सब देवों से पहले ही हुआ
है, उन तेज सम्पन्न ब्रह्म को नमन है I

Page 148 of 523

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना
निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां
समलङ्कृतम् व्याख्या :-

यो देवेभ्यऽ आतपति यो देवानां पुरोहित :
।

पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय
ब्राह्मये ॥

य:। देवेभ्य :। आतपतीत्याऽतपति । य:। देवानाम् ।
पुरोहित इति पुर :ऽहित :॥ पूर्व :। य:।
देवेभ्य :। जात :। नम:। रुचाय । ब्राह्मये ।

पदार्थ :-- (य:) सूर्य : (देवेभ्य :)
दिव्यगुणेभ्य : पृथिव्यादिभ्य : (आतपति)
समन्तात् तपति (य:) (देवानाम्)
पृथिव्यादिलोकानाम् (पुरोहित :)
पुरस्ताद्धिताय मध्ये धृत : (पूर्व :) (य:)
(देवेभ्य :) पृथिव्यादिभ्य : (जात :) उत्पन्न :
(नम:) अन्नम् (रचाय) रुचिकरात् (ब्राह्मये)
यो ब्रह्मण : परमेश्वरस्यापत्यमिव
तस्मात् । अत्रोभयत्र पञ्चम्यर्थे चतुर्थी
॥

अन्वय :-- हे मनुष्य :! यो देवेभ्य आतपति यो
देवानां पुरोहितो यो देवेभ्य :

जातस्तस्माद् रुचाय ब्राह्मये नमो
जायते ॥

भावार्थ :-- हे मनुष्या :! येन जगदीश्वरेण
सर्वेषां हितायान्नाद्युत्पादननिमित्त :
सूर्य्यो निर्मितस्तमेव सततमुपासीध्वम् ॥

पदार्थ :-- हे मनुष्यो ! (य:) जो सूर्यलोक
(देवेभ्य :) उत्तम गुणों वाले पृथिवी आदि के
अर्थ (आतपति) अच्छे प्रकार तपता है (य:) जो
(देवानाम्) पृथिवी आदि लोकों के (पुरोहित :)
प्रथम से हितार्थ बीच में स्थित किया (य:)
जो (देवेभ्य :) पृथिवी आदि से (पूर्व :) प्रथम
(जात ;) उत्पन्न हुआ उस (रचाय) रूचि
करानेवाले (ब्राह्मये) परमेश्वर के
सन्तान के तुल्य सूर्य्य से (नम:) अन्न
उत्पन्न होता है ॥

भावार्थ :-- हे मनुष्यों ! जिस जगदीश्वर ने
सबके हित के लिए अन्न आदि की उत्पत्ति के
निमित्त सूर्य्यको बनाया है , उसी परमेश्वर
की उपासना करो ॥

रुचिमित्यस्योत्तरनारायण ऋषि :।
विश्वेदेवा देवता :। अनुष्टुप छन्द :।

Page 151 of 523

गान्धार: स्वर:II अथ विद्वत्कृत्यमाह II अब विद्वानों का कृत्य कहते हैंII

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि, मथुरा, द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों
की व्याख्या है जो इस प्रकार है:-

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽ अग्रे तदब्रुवन् I

यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवाऽअसन् वशे II (श्लोक 21)

देवताओं ने श्रेष्ठ ज्योति स्वरूप सूर्य को प्रकट कर प्रथम यह कहा कि हे आदित्य! जो ब्राह्मण तुमें अजर अमर रूप से इस प्रकार प्रकट जानते हैं, देवता उस ज्ञानी ब्राह्मण के वशवर्ती होते हैं I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽअग्रे तद्ब्रुवन् I

Page 151 of 523

यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य
देवाऽ असन् वशे ॥

ब्रह्मज्ञानी देवों का प्रारम्भिक कथन है
कि जो प्रकाशमय ब्रह्म को प्रकट करने वाले
ज्ञानी उसको (विराट् सत्ताको) जानते हैं ,
उनके अधिकार में समस्त देवशक्तियाँ रहती
हैं ।

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना
निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां
समलङ्कृतम् व्याख्या :---

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽअग्रे
तदब्रुवन् ।

यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात् तस्य
देवाऽअसन् वशे ॥

रुचम् । ब्राह्मम् । जनयन्त :। देवा :। अग्रे ।
तत् । अब्रुवन् । य:। त्वा । एवम् । ब्राह्मण :।
विद्यात् । तस्य । देवा :। असन् । वशे ।

पदार्थ :-- (रुचम्) रुचिकरम् (ब्राह्मम्)
ब्राह्मोपासकम् (जनयन्त :) निष्पादयन्त :
(देवा :) विद्वांस : (अग्रे) (तत्)
ब्रह्मजीवप्रकृतिस्वरूपम् (अब्रुवन्)
ब्रुवन्तु (य:) (त्वा) (एवम्) अमुना

Page 153 of 523

प्रकारेण (ब्राह्मण:) (विद्यात्) विजानीयात् (तस्य) देवा:) विद्वांसः (असन्) स्यु: (वशे) तदधीना:II

अन्वय:--हे ब्रह्मनिष्ठ! ये रुचं ब्राह्मं त्वा जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् यो ब्राह्मण एवं विद्यात् तस्य ते देवा वशे असन्II

भावार्थ:--इदमेवाऽ ऽद्यं विद्वत्कृत्यमस्ति यद्वेदेश्वरधर्मादिषु रुचिरुपदेशेना- ध्यापनधार्मिकत्वजितेन्द्रियत्व-शरीरात्मबलवर्द्धनमेवं कृते सति सर्वे दिव्या गुना भोगाश्च प्राप्तुं शक्या:II

पदार्थ:--हे ब्रह्मनिष्ठ पुरुष! जो (रुचम्) रुचिकारक (ब्राह्मम्) ब्रह्म के उपासक (त्वा) आपको (जनयन्त:) सम्पन्न करते हुए (देवा:) विद्वान् लोग (अत्रे) पहिले (तत्) ब्रह्म, जीव और प्रकृति के स्वरूप को (अब्रुवन्) कहें (य:) जो (ब्राह्मण:) ब्राह्मण (एवम्) ऐसे (विद्वान्) जाने (तस्य) उसके वे (देवा:) विद्वान् (वशे) वशमें (असन्) हों

Page 153 of 523

भावार्थ :-- यही विद्वानों का पहिला कर्तव्य है की जो वेद , ईश्वर और धर्मादि में रूचि , उपदेश , अध्यापन , धर्मात्मता , जीतेन्द्रियता , शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाना , ऐसा करने से ही सब उत्तम गुण और भोग प्राप्त हो सकते हैं ॥

श्रीश्च त इत्यस्योत्तरनारायण ऋषि :। आदित्यो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप छन्दः । धैवत : स्वर :॥ अथेश्वर : कीदृश इत्याह ॥ अब ईश्वर कैसाहै , इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

श्री राम शर्मा आचार्य गायत्री तपोभूमि , मथुरा , द्वारा कृत अनुवादित यजुर्वेद के अध्याय 31 में पुरुषसूक्त के २२ सूक्तों की व्याख्या है जो इस प्रकार है :-

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च
पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि
रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।

इष्णन्निषाणामुं म ऽ इषाण
सर्वलोकं म ऽ इषाण ॥ (श्लोक 22)

हे ज्योतिस्वरूप ब्रह्म ! जो लक्ष्मी सबको समृद्ध करती है , वह वैभव रूपा लक्ष्मी

Page 155 of 523

तुम्हारी पत्नी रूप है, दिन-रात दोनों तुम्हारे पार्श्व हैं, नक्षत्र तुम्हारा रूप और द्यावा पृथ्वी तुम में व्याप्त हैं
I कर्म-फल की इच्छा वाले तुम, मेरे लिए परलोक की इच्छा करते हुए मुझे मुक्त करने की इच्छा करो I

वाजसनेयि—माध्यन्दिन—शुक्ल यजुर्वेद— संहिता के अनुसार पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है:--

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् I

इष्णन्निषाणामुं म ऽ इषाण
सर्वलोकं म ऽ इषाण II

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! सबको सम्पन्नता प्रदान करने वाली वैभवरुपी लक्ष्मी आपकी पत्नी स्वरूप हैं, भुजाएं
रति और दिन एवं नक्षत्र आपके रूप हैंI द्युलोक एवं पृथ्वी आपके मुख सदृश हैं I इच्छाशक्ति से सबकी इच्छाओं को पूर्ण करने में समर्थ हे ईश्वर! हमारी उत्तम लोकों की

Page 155 of 523

Page 156 of 523

प्राप्ति की इच्छा पूर्ति के लिए आप कृपा करें I

-- ऋषि, देवता, छंद-विवरण—

ऋषि-नारायण पुरुष 1 से 16 श्लोक I उत्तरनारायण 17 से 22 श्लोक

देवता—पुरुष जगद् बीज 1 से 16 श्लोक I आदित्य 17 से 22 श्लोक छंद—निवृत् अनुष्टुप् 1-3,8-11,14 I अनुष्टुप् 4,5,7,12,13,15,20,21 I विराट् अनुष्टुप् 6 I विराट् त्रिष्टप् 16 I भुरिक् त्रिष्टुप् 17,19 I निवृत् अनुष्टुप् 18 I निवृत् आर्षी त्रिष्टुप् 22 I

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितं संस्कृतार्यभाषाभ्यां समलङ्कृतम् व्याख्या:---

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् I

इष्णन्निषाणामुं म ऽ इषाण सर्वलोकं म ऽ इषाण II

Page 156 of 523

श्री :। च। ते । लक्ष्मी :। च। पत्न्यौ ।
अहोरात्रेऽइत्यहोरात्रे । पार्श्वेऽइति
पार्श्वे । नक्षत्राणि । रूपम् । अश्विनौ ।
व्यात्तमिति विऽआत्तम् । इष्णन् । इषाण ।
अमुम् । मे । इषाण । सर्वलोकमिति सर्वऽलोकम् ।
मे । इषाण ॥

पदार्थ :-- (श्री :) सकला शोभा (च) (ते) तव
(लक्ष्मी :) सर्वमैश्वर्य्यम् (च) (पत्न्यौ)
स्त्रीवद्वर्त्तमाने (अहोरात्रे)
(पार्श्वे) (नक्षत्राणि) (रूपम्) (अश्विनौ)
सूर्याचन्द्रमसौ (व्यात्तम्) विकसितं
मुखमिव । अत्र वि , आङ् पूर्वाड् डुदाञ्
धातो : क्त :। (इष्णन्) इच्छन् (इषाण) कामय
(अमूम्) इत: परं परोक्षं सुखम् (मे) मह्यम्
(इषाण) प्रापय (सर्वलोकम्) सर्वेषां
दर्शनम् (मे) मह्यम् (इषाण)॥

अन्वय :-- हे जगदीश्वर ! यस्य ते श्रीश्च
लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे
यस्य ते सृष्टावश्विनौ व्यात्तं
नक्षत्राणि रूपं स त्वं
मेऽमुमिण्णन्निषाण मे सर्वलोकमिषाण मे
सर्वाणि सुखानीषाण ॥

भावार्थ :-- हे राजादयो मनुष्या :! यथेश्वरस्य न्यायादयो गुणा व्याप्ति : कृपा पुरुषार्थ : सत्यं रचनं सत्या नियमाश्च सन्ति तथैव युष्माकमपि सन्तु यतो युष्माकमुत्तरोत्तरं सुख वर्द्धेतेति ॥

अत्रेश्वर सृष्टिराजगुणवर्णनादेतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाऽध्यायोवतार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

पदार्थ :-- हे जगदीश्वर ! जिस (ते) आपकी (श्री :) समग्र शोभा (च) और (लक्ष्मी :) सब ऐश्वर्य (च) भी (पत्न्यौ) दो स्त्रियों के तुल्य वर्त्तमान (अहोरात्रे) दिन -रात (पार्श्वे) आगे-पीछे जिस आपकी सृष्टि मेन (अश्विनौ) सूर्य -चन्द्रमा (व्यात्तम्) फैले मुख के समान (नक्षत्राणि) नक्षत्र (रूपम्) रूप वाले हैं , सो आप (मे) मेरे (अमुम्) परोक्ष सुख को (इष्णन्) चाहते हुए (इषाण) चाहना कीजिये (मे) मेरे लिये (सर्वलोकम्) सबके दर्शन को (इषाण) प्राप्त कीजिये , मेरे लिये सब् सुखों को (इषाण) पहुंचाइये ॥

Page 159 of 523

भावार्थ:--हे राजा आदि मनुष्यों! जैसे ईश्वर के न्याय आदि गुण, व्याप्ति, कृपा, पुरुषार्थ, सत्य रचना और सत्य नियम हैं, वैसे ही तुम लोगों के भी हों, जिससे तुम्हारा उत्तरोत्तर सुख बढ़ेII

-- ------------------------------ ------------------------------ -- ----------------

पुरुष-सूक्तस्य सायणभाष्यम् अनुसारेण:----

‘सहस्रशीर्षा' इति षोडशर्चं षष्ठं सूक्तम् । नारायण नामर्षिरन्त्या त्रिष्टुप् शिष्टा अनुष्टुभः । अव्यक्तमहदादिविलक्षणश्चेतनो यः पुरुषः ‘पुरुषाश्च परं किंचित्’ (कठोपनिषद वल्ली 3 सूक्त 11)

इत्यादिश्रुतिषु प्रसिद्धः स देवता । तथा चानुक्रान्तं--- सहस्रशीर्षा षोळश नारायणः

पौरुषमानुष्टुभं त्रिष्टुबन्तं तु' इति । गतो विनियोगः ।।

Page 159 of 523

Page 160 of 523

स॒हस्र॑शीर्षा॒ पुरु॑षः सहस्रा॒क्षः स॒हस्र॑पात् ।

स भूमिं॑ वि॒श्वतो॑ वृ॒त्वात्य॑तिष्ठद्दशाङ्गु॒लम् ॥

सहस्रऽशीर्षा । पुरुषः । सहस्रऽअक्षः ।
सहस्रऽपात् । सः । भूमिम् । विश्वतः ।
वृत्वा। अति । अतिष्ठत् । दशऽअङ्गुलम् ॥ १
॥

सर्वप्राणिसमष्टिरूपो ब्रह्माण्डदेहो विराडाख्यो यः पुरुषः सोऽयं सहस्रशीर्षा । सहस्रशब्दस्योपलक्षणत्वादनन्तैः शिरोभिर्युक्त इत्यर्थः। यानि सर्वप्राणिनां शिरांसि तानि सर्वाणि तद्देहान्तः

पातित्वात्तदीयान्येवेति सहस्रशीर्षत्वम् । एवं सहस्राक्षित्वं सहस्रपादत्वं च । “सः पुरुषः “भूमिं ब्रह्माण्डगोलकरूपां “विश्वतः सर्वतः “वृत्वा परिवेष्ट्य “दशाङ्गुलं दशाङ्गुलपरिमितं देशम् “अत्यतिष्ठत् अतिक्रम्य व्यवस्थितः । दशाङ्गुलमित्युपलक्षणम्।

Page 160 of 523

Page 161 of 523

ब्रह्माण्डाद्बहिरपि सर्वतो
व्याप्यावस्थित इत्यर्थः॥

पुरु॑ष ए॒वेदं सर्वं॒ यद्भू॒तं यच्च॒
भव्य॑म् । उ॒तामृ॑त॒त्वस्येशा॑नो॒
यदन्ने॑नाति॒रोह॑ति ॥

पुरुषः । एव । इदम् । सर्वम् । यत् । भूतम्
। यत् । च। भव्यम् ।

उत। अमृतऽत्वस्य । ईशानः । यत् । अन्नेन ।
अतिऽरोहति ।। २ ॥

यत् “इदं वर्तमानं जगत् तत् “सर्वं “पुरुष “एव । यत् च “भूतम् अतीतं जगत् “यच्च “भव्यं भविष्यज्जगत् तदपि पुरुष एव । यथास्मिन् कल्पे वर्तमानाः प्राणिदेहाः सर्वेऽपि विराट्पुरुषस्यावयवाः तथैवातीतागामिनोरपि कल्पयोर्द्रष्टव्यमित्यभिप्रायः । "उत अपि च “अमृतत्वस्य देवत्वस्य अयम् “ईशानः स्वामी । “यत् यस्मात्कारणात् “अन्नेन प्राणिनां भोग्येनान्नेन निमित्तभूतेन “अतिरोहति स्वकीयां कारणावस्थामतिक्रम्य परिदृश्यमानां जगदवस्थां प्राप्नोति

Page 161 of 523

Page 162 of 523

तस्मात्प्राणिनां कर्मफलभोगाय जगदवस्थास्वीकारान्नेदं तस्य
वस्तुत्वमित्यर्थः ॥

ए॒तावा॑नस्य महि॒मातो॒ ज्यायाँ॑श्च॒
पूरु॑षः ।पादो॑ऽस्य॒ विश्वा॑ भू॒तानि॑
त्रि॒पाद॑स्या॒मृतं॑ दि॒वि ॥

एतावान् । अस्य । महिमा । अतः । ज्यायान् ।
च। पुरुषः ।

पादः । अस्य । विश्वा । भूतानि । त्रिऽपात्
। अस्य । अमृतम् । दिवि ।। ३ ।।

अतीतानागतवर्तमानरूपं जगद्यावदस्ति “एतावान् सर्वोऽपि “अस्य पुरुषस्य “महिमा स्वकीयसामर्थ्यविशेषः। न तु तस्य वास्तवस्वरूपम् । वास्तवस्तु "पुरुषः अतः महिम्नोऽपि “ज्यायान् अतिशयेनाधिकः । एतच्चोभयं स्पष्टीक्रियते। “अस्य पुरुषस्य “विश्वा सर्वाणि “भूतानि कालत्रयवर्तीनि प्राणिजातानि “पादः चतुर्थोंऽशः। “अस्य पुरुषस्य अवशिष्टं “त्रिपात् स्वरूपम् “अमृतं विनाशरहितं
सत् “दिवि द्योतनात्मके स्वप्रकाशस्वरूपे व्यवतिष्ठत इति शेषः ।

Page 162 of 523

Page 163 of 523

यद्यपि 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तैतैत्तिरीय आरण्यक. ८.श्लोक १; तैत्तिरीय उपनिषद.

अनुवाक २. श्लोक १) इत्याम्नातस्य परब्रह्मण इयत्ताभावात् पादचतुष्टयं निरूपयितुमशक्यं तथापि जगदिदं ब्रह्मस्वरूपापेक्षयाल्पमिति विवक्षितत्वात् पादत्वोपन्यासः ॥ ।

त्रि॒पादू॒र्ध्व उदै॒त्पुरु॑ष॒ः पादो॑ऽस्ये॒हाभ॑व॒त्पुनः॑ ।

ततो॒ विष्व॒ङ्व्य॑क्रामत्साशनानश॒ने अ॒भि ॥

त्रिऽपात् । ऊर्ध्वः । उत् । ऐत् । पुरुषः
। पादः । अस्य । इह । अभवत् । पुनरिति। ततः
। विष्वङ् । वि। अक्रामत् । साशनानशने इति
। अभि ।। ४ ।।

योऽयं “त्रिपात् "पुरुषः संसाररहितो ब्रह्मस्वरूपः सोऽयम् “ऊर्ध्व “उदैत्

अस्मादज्ञानकार्यात्संसाराद्बहिर्भूतोऽ त्रत्यैर्गुणदोषैरस्पृष्ट उत्कर्षेण स्थितवान्। तस्य “अस्य सोऽयं “पादः लेशः

Page 163 of 523

Page 164 of 523

सोऽयम् “इह मायायां “पुनः अभवत् सृष्टिसंहाराभ्यां पुनःपुनरागच्छति । अस्य सर्वस्य जगतः परमात्मलेशत्वं भगवताप्युक्तं---- विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ' (भ. गीता. अध्याय१०. श्लोक४२) इति । “ततः मायायामागत्यानन्तरं “विष्वङ् देवमनुष्यतिर्यगादिरूपेण विविधः सन् “व्यक्रामत् व्याप्तवान् । किं कृत्वा । “साशनानशने अभिलक्ष्य । साशनं भोजनादिव्यवहारोपेतं चेतनं प्राणिजातम् अनशनं तद्रहितमचेतनं गिरिनद्यादिकम् । तदुभयं यथा स्यात्तथा स्वयमेव विविधो भूत्वा व्याप्तवानित्यर्थः ॥

तस्मा॑द्वि॒राळ॑जायत वि॒राजो॒ अधि॒
पूरु॑षः ।

स जा॒तो अत्य॑रिच्यत प॒श्चाद्भूमि॒मथो॑
पु॒रः ॥

तस्मात् । विऽराट्। अजायत । विऽराजः ।
अधि। पुरुषः ।।

सः । जातः । अति । अरिच्यत । पश्चात् ।
भूमिम् । अथो इति । पुरः ॥ ५ ॥

Page 164 of 523

Page 165 of 523

विष्वङ् व्यक्रामदिति यदुक्तं तदेवात्र प्रपञ्च्यते । “तस्मात् आदिपुरुषात् “विराट् ब्रह्माण्डदेहः “अजायत उत्पन्नः
। विविधानि राजन्ते वस्तून्यत्रेति विराट् । “विराजोऽधि विराड्देहस्योपरि तमेव देहमधिकरणं कृत्वा “पुरुषः तद्देहाभिमानी कश्चित् पुमान् अजायत । सोऽयं सर्ववेदान्तवेद्यः परमात्मा स्वयमेव स्वकीयया मायया विराड्देहं ब्रह्माण्डरूपं सृष्ट्वा तत्र जीवरूपेण प्रविश्य ब्रह्माण्डाभिमानी देवतात्मा जीवोऽभवत् । एतच्चाथर्वणिका उत्तरतापनीये विस्पष्टमामनन्ति---- स वा एष भूतानीन्द्रियाणि विराजं देवताः कोशांश्च सृष्ट्वा प्रविश्यामूढो मूढ इव व्यवहरन्नास्ते माययैव' (नृ. ता. २. १, ९) इति । “स “जातः विराट् पुरुषः “अत्यरिच्यत अतिरिक्तोऽभूत् । विराड्व्यतिरिक्तो देवतिर्यङ्मनुष्यादिरूपोऽभूत् । “पश्चात् देवादिजीवभावादूर्ध्वं “भूमिं ससर्जेति शेषः । “अथो भूमिसृष्टेरनन्तरं तेषां जीवानां “पुरः ससर्ज । पूर्यन्ते सप्तभिर्धातुभिरिति पुरः शरीराणि ॥॥१७॥

Page 165 of 523

Page 166 of 523

यत्पुरु॑षेण ह॒विषा॑ दे॒वा य॒ज्ञमत॑न्वत ।

व॒स॒न्तो अ॑स्यासी॒दाज्यं॑ ग्री॒ष्म इ॒ध्मः श॒रद्ध॒विः ॥

यत् । पुरुषेण । हविषा । देवाः । यज्ञम् ।
अतन्वत ।

वसन्तः । अस्य । आसीत्। आज्यम् । ग्रीष्मः
। इध्मः । शरत् । हविः ॥ ६ ॥

“यत् यदा पूर्वोक्तक्रमेणैव शरीरेषुत्पन्नेषु सत्सु "देवाः उत्तरसृष्टिसिद्धयर्थं बाह्यद्रव्यस्यानुत्पन्नत्वेन हविरन्तरसंभवात् पुरुषस्वरूपमेव मनसा हविष्ट्वेन संकल्प्य “पुरुषेण पुरुषाख्येन “हविषा मानसं यज्ञम् “अतन्वत अन्वतिष्ठन् तदानीम् “अस्य यज्ञस्य “वसन्तः वसन्तर्तुरेव “आज्यम् “आसीत् अभूत् । तमेवाज्यत्वेन संकल्पितवन्त इत्यर्थः । एवं “ग्रीष्म “इध्मः आसीत्। तमेवेध्मत्वेन संकल्पितवन्त इत्यर्थः। तथा “शरद्धविः आसीत् । तामेव पुरोडाशादिहविष्ट्वेन संकल्पितवन्त

Page 166 of 523

इत्यर्थः । पूर्वं पुरुषस्य हविः सामान्यरूपत्वेन संकल्पः । अनन्तरं वसन्तादीनामाज्यादिविशेषरूपत्वेन संकल्प इति द्रष्टव्यम् ॥

[(यजुर्वेदीय पु o सू o के इस श्लोक (ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ;) का अर्थ जो कि इसके 14 वें श्लोक में दिया है)]

तं य॒ज्ञं ब॒र्हिषि॒ प्रौक्ष॒न्पुरु॑षं
जा॒तम॑ग्र॒तः । तेन॑ दे॒वा अ॑यजन्त
सा॒ध्या ऋष॑यश्च॒ ये ॥

तम् । यज्ञम् । बर्हिषि । प्र । औक्षन् । पुरुषम् । जातम् । अग्रतः । तेन । देवाः । अयजन्त। साध्याः । ऋषयः । च। ये ॥ ७ ॥

यज्ञं यज्ञसाधनभूतं “तं पुरुषं पशुत्वभावनया यूपे बद्धं “बर्हिषि मानसे यज्ञे “प्रौक्षन् प्रोक्षितवन्तः । कीदृशमित्यत्राह। “अग्रतः सर्वसृष्टेः पूर्वं “पुरुषं “जातं पुरुषत्वेनोत्पन्नम् । एतच्च प्रागेवोक्तं तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः ' इति । तेन पुरुषरूपेण पशुना

Page 168 of 523

“देवा "अयजन्त । मानसयागं निष्पादितवन्त इत्यर्थः । के ते देवा इत्यत्राह। “साध्याः सृष्टिसाधनयोग्याः प्रजापतिप्रभृतयः

तदनुकूलाः “ऋषयः मन्त्रद्रष्टारः “च “ये सन्ति । ते सर्वेऽप्ययजन्तेत्यर्थः ॥

तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व॒हुत॒ः सम्भृ॑तं
पृषदा॒ज्यम् ।

प॒शून्ताँश्च॑क्रे
वाय॒व्या॑नार॒ण्यान्ग्रा॒म्याश्च॒ ये ॥

तस्मात् । यज्ञात् । सर्वऽहुतः ।
सम्ऽभृतम् । पृषत्ऽआज्यम् ।।

पशून् । तान् । चक्रे । वायव्यान् ।
आरण्यान्। ग्राम्याः । च । ये ॥८॥

“सर्वहुतः । सर्वात्मकः पुरुषः यस्मिन् यज्ञे हूयते सोऽयं सर्वहुत् । तादृशात् “तस्मात् पूर्वोक्तात् मानसात् "यज्ञात् “पृषदाज्यं दधिमिश्रमाज्यं “संभृतं संपादितम् । दधि चाज्यं चेत्येवमादिभोग्यजातं सर्वं

Page 168 of 523

Page 169 of 523

संपादितमित्यर्थः । तथा “वायव्यान् वायुदेवताकाँल्लोकप्रसिद्धान् “आरण्यान् “पशून “चक्रे उत्पादितवान् । आरण्या हरिणादयः । तथा “ये “च “ग्राम्याः गवाश्वादयः तानपि चक्रे। पशूनामन्तरिक्षद्वारा वायुदेवत्यत्वं यजुर्ब्राह्मणे समाम्नायते-- वायवः स्थेत्याह वायुर्वा अन्तरिक्षस्याध्यक्षाः । अन्तरिक्षदेवत्याः खलु वै पशवः। वायव एवैनान्परिददाति ' (तै. ब्राह्मण. ३. २. १.
३) इति ।

तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व॒हुत॒ ऋच॒ः सामा॑नि जज्ञिरे ।

छन्दां॑सि जज्ञिरे॒ तस्मा॒द्यजु॒स्तस्मा॑दजायत ॥

तस्मात् । यज्ञात् । सर्वऽहुतः । ऋचः ।
सामनि । जज्ञिरे ।

छन्दांसि । जज्ञिरे । तस्मात् । यजुः । तस्मात् । अजायत ।। ९ ॥ "सर्वहुतः “तस्मात् पूर्वोक्तात् यज्ञात् “ऋचः “सामानि च जज्ञिरे उत्पन्नाः। “तस्मात्

Page 169 of 523

Page 170 of 523

यज्ञात् “छन्दांसि गायत्र्यादीनि “जज्ञिरे। “तस्मात् यज्ञात् "यजुः अपि अजायत ॥ तस्मा॒दश्वा॑ अजायन्त॒ ये के चो॑भ॒याद॑तः ।

गावो॑ ह जज्ञिरे॒ तस्मा॒त्तस्मा॑ज्जा॒ता अ॑जा॒वयः॑ ॥

तस्मात् । अश्वाः । अजायन्त । ये । के। च ।
उभयादतः ।

गाव: । ह । जज्ञिरे । तस्मात् । तस्मात् ।
जाताः । अजावयः ॥ १०॥

“तस्मात् पूर्वोक्ताद्यज्ञात् “अश्वा “अजायन्त उत्पन्नाः। तथा “ये "के “च अश्वव्यतिरिक्ता गर्दभा अश्वतराश्च उभयादतः ऊर्ध्वाधोभागयोरुभयोः दन्तयुक्ताः सन्ति तेऽप्यजायन्त। तथा “तस्मात् यज्ञात् "गावः च “जज्ञिरे । किंच “तस्मात् यज्ञात् "अजावयः च "जाताः ॥ ॥ १८
॥

यत्पुरु॑षं॒ व्यद॑धुः कति॒धा
व्य॑कल्पयन् ।

मुखं॒ किम॑स्य॒ कौ बा॒हू का ऊ॒रू पादा॑
उच्येते ॥

Page 170 of 523

Page 171 of 523

यत् । पुरुषम् । वि । अदधुः । कतिधा। वि ।
अकल्पयन् ।।

मुखम् । किम् । अस्य । कौ । बाहू इति । कौ ।
ऊरू इति । पादौ । उच्येते इति ॥११॥

प्रश्नोत्तररूपेण ब्राह्मणादिसृष्टिं वक्तुं ब्रह्मवादिनां प्रश्ना उच्यन्ते । प्रजापतेः प्राणरूपा देवाः “यत् यदा “पुरुषं विराड्रूपं “व्यदधुः संकल्पेनोत्पादितवन्तः तदानीं “कतिधा कतिभिः प्रकारैः “व्यकल्पयन् विविधं कल्पितवन्तः । “अस्य पुरुषस्य “मुखं “किम् आसीत्। “कौ “बाहू अभूताम् “का “ऊरू। कौ च “पादावुच्येते । प्रथमं सामान्यरूपः प्रश्नः पश्चात् मुखं किमित्यादिना विशेष विषयाः प्रश्नाः॥

ब्रा॒ह्म॒णो॑ऽस्य॒ मुख॑मासीद्बा॒हू
रा॑ज॒न्यः॑ कृ॒तः ।

ऊ॒रू तद॑स्य॒ यद्वैश्यः॑ प॒द्भ्यां
शू॒द्रो अ॑जायत ॥

ब्राह्मणः । अस्य । मुखम् । आसीत् । बाहू इति । राजन्यः । कृतः ।

Page 171 of 523

Page 172 of 523

ऊरू इति । तत् । अस्य । यत् । वैश्यः । पत्ऽभ्याम् । शूद्रः । अजायत ॥ १२ ॥

इदानीं पूर्वोक्तानां प्रश्नानामुत्तराणि दर्शयति । “अस्य प्रजापतेः “ब्राह्मणः ब्राह्मणत्वजातिविशिष्टः पुरुषः “मुखमासीत मुखादुत्पन्न इत्यर्थः । योऽयं “राजन्यः क्षत्रियत्वजातिमान् पुरुषः सः "बाहू “कृतः बाहुत्वेन निष्पादितः । बाहुभ्यामुत्पादित इत्यर्थः । तत् तदानीम् अस्य प्रजापतेः “यत् यौ “ऊरू तद्रूपः "वैश्यः संपन्नः । ऊरुभ्यामुत्पन्न इत्यर्थः । तथास्य “पद्भ्यां पादाभ्यां "शूद्रः शूद्रत्वजातिमान् पुरुषः "अजायत । इयं च मुखादिभ्यो
ब्राह्मणादीनामुत्पत्तिर्यजुःसंहितायां सप्तमकाण्डे ‘स मुखतस्त्रिवृतं निरमिमीत' (तैत्तीरिय. संहिता. ७. १. १. ४) इत्यादौ विस्पष्टमाम्नाता। अतः प्रश्नोत्तरे उभे अपि तत्परतयैव योजनीये ॥

च॒न्द्रमा॒ मन॑सो जा॒तश्चक्षो॒ः सूर्यो॑ अजायत ।

Page 172 of 523

Page 173 of 523

मुखा॒दिन्द्र॑श्चा॒ग्निश्च॑ प्रा॒णाद्वा॒युर॑जायत ॥

चन्द्रमाः । मनसः । जातः । चक्षोः । सूर्यः
। अजायत ।

मुखात् । इन्द्रः । च। अग्निः । च।
प्राणात् । वायुः । अजायत ॥ १३ ॥

यथा दध्याज्यादिद्रव्याणि गवादयः पशव ऋगादिवेदा ब्राह्मणादयो मनुष्याश्च तस्मादुत्पन्ना एवं चन्द्रादयो देवा अपि तस्मादेवोत्पन्ना इत्याह । प्रजापतेः “मनसः सकाशाद् “चन्द्रमाः “जातः । “चक्षोः च चक्षुषः “सूर्यः अपि “अजायत । अस्य “मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च देवावुत्पन्नौ । अस्य “प्राणाद्वायुरजायत ॥

नाभ्या॑ आसीद॒न्तरि॑क्षं शी॒र्ष्णो
द्यौः सम॑वर्तत ।

प॒द्भ्यां भूमि॒र्दिश॒ः श्रोत्रा॒त्तथा॑
लो॒काँ अ॑कल्पयन् ॥

नाभ्यः । आसीत् । अन्तरिक्षम् । शीर्ष्णः
। द्यौः । सम् । अवर्तत ।

Page 173 of 523

Page 174 of 523

पत्ऽभ्याम् । भूमिः । दिशः । श्रोत्रात् । तथा । लोकान् । अकल्पयन् ॥ १४ ॥

यथा चन्द्रादीन् प्रजापतेर्मनःप्रभृतिभ्योऽकल्पयन तथा “अन्तरिक्षादीन् “लोकान् प्रजापतेः नाभ्यादिभ्यो देवाः “अकल्पयन् उत्पादितवन्तः । एतदेव दर्शयति । “नाभ्याः प्रजापतेर्नाभेः “अन्तरिक्षमासीत् । "शीर्ष्णः शिरसः “द्यौः “समवर्तत उत्पन्ना। अस्य “पद्भ्यां पादाभ्यां “भूमिः उत्पन्ना। अस्य “श्रोत्रात् "दिशः उत्पन्नाः।।

स॒प्तास्या॑सन्परि॒धय॒स्त्रिः स॒प्त
स॒मिधः॑ कृ॒ताः ।

दे॒वा यद्य॒ज्ञं त॑न्वा॒ना
अब॑ध्न॒न्पुरु॑षं प॒शुम् ॥

सप्त । अस्य । आसन् । परिऽधयः । त्रिः ।
सप्त । सम्ऽइधः । कृताः ।

देवाः । यत् । यज्ञम् । तन्वानाः । अबध्नन्
। पुरुषम् । पशुम् ॥ १५ ॥

“अस्य सांकल्पिकयज्ञस्य गायत्र्यादीनि “सप्त छन्दांसि परिधयः “आसन् ।

Page 174 of 523

Page 175 of 523

ऐष्टिकस्याहवनीयस्य त्रयः परिधय उत्तरवेदिकास्त्रय आदित्यश्च सप्तमः परिधिप्रतिनिधिरूपः । अत एवाम्नायते-- न पुरस्तात्परि दधात्यादित्यो ह्येवोद्यन् पुरस्ताद्रक्षांस्यपहन्ति' (तैत्तीरिय. संहिता २.६.६.३) इति । तत एत आदित्यसहिताः सप्त परिधयोऽत्र सप्त छन्दोरूपाः । तथा “समिधः “त्रिः सप्त त्रिगुणीकृतसप्तसंख्याकाः एकविंशतिः “कृताः । द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंशः (तैत्तीरिय. संहिता. ५.१.१०.३) इति श्रुताः पदार्था एकविंशतिदारुयुक्तेध्मत्वेन भाविताः। यत् यः पुरुषो वैराजोऽस्ति ते “पुरुषं "देवाः प्रजापतिप्राणेन्द्रियरूपाः यज्ञं तन्वानाः मानसं यज्ञं तन्वानाः कुर्वाणाः पशुम् "अबध्नन् विराट्पुरुषमेव पशुत्वेन भावितवन्तः । एतदेवाभिप्रेत्य पूर्वत्र ‘ यत्पुरुषेण हविषा' इत्युक्तम्
॥

य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑यजन्त दे॒वास्तानि॒ धर्मा॑णि प्रथ॒मान्या॑सन् ।

Page 175 of 523

Page 176 of 523

ते ह॒ नाकं॑ महि॒मानः॑ सचन्त॒ यत्र॒ पूर्वे॑ सा॒ध्याः सन्ति॑ दे॒वाः ॥

यज्ञेन । यज्ञम् । अयजन्त। देवाः । तानि ।
धर्माणि । प्रथमानि । आसन् ।

ते । ह । नाकम् । महिमानः । सचन्त । यत्र ।
पूर्वे । साध्याः । सन्ति । देवाः ॥ १६ ॥

पूर्व प्रपञ्चेनोक्तमर्थं संक्षिप्यात्र दर्शयति । "देवाः प्रजापतिप्राणरूपाः "यज्ञेन यथोक्तेन मानसेन संकल्पेन यज्ञं यथोक्तयज्ञस्वरूपं प्रजापतिम् "अयजन्त पूजितवन्तः । तस्मात्पूजनात “तानि प्रसिद्धानि “धर्माणि जगद्रूपविकाराणां धारकाणि "प्रथमानि मुख्यानि आसन् । एतावता सृष्टिप्रतिपादकसूक्तभागार्थः संगृहीतः । अथोपासनतत्फलानुवादकभागार्थः संगृह्यते ।

"यत्र यस्मिन् विराटप्राप्तिरूपे नाके "पूर्वे "साध्याः पुरातना विराडुपास्तिसाधकाः “देवाः "सन्ति तिष्ठन्ति तत् "नाकं विराट्प्राप्तिरूपं स्वर्ग “ते “महिमानः तदुपासका महात्मानः

Page 176 of 523

Page 177 of 523

"सचन्त समवयन्ति प्राप्नुवन्ति ॥ ॥ १९॥ ॥
७ ॥

टिप्पणी

नारायणोपरि पौराणिकसंदर्भाः

सोमयागे प्राग्वंशे गार्हपत्य एवं आहवनीयाग्निखरयोः मध्ये दक्षिणाग्नेः अर्द्धचन्द्राकारं खरं भवति। अस्याः अग्नेः अधिपतिः नलः नैषिधो अस्ति। उत्तरवेदी मध्ये आग्नीध्रस्य खरः भवति। अनुमानमस्ति यत् प्राग्वंशे यः दक्षिणाग्निः अस्ति, सैव उत्तरवेद्यां उत्तरदिश्यां आग्नीध्रऋत्विजस्य खरमस्ति(आग्नीध्रोपरि टिप्पणी पठनीयः अस्ति)। पुराणेषु वर्णनमस्ति यत् बदरीतीर्थः नर-नारायणयोः तपःस्थानमस्ति। गंगायाः एके कूले नरः तपोरतः अस्ति, अपरे कूले नारायणः। आग्नीध्रऋत्विजस्य नारायणेन साकं समानता अस्ति वा न वा, अयं अन्वेषणीयं अस्ति।

पुरुषशब्दोपरि पौराणिकसंदर्भाः

पुरुषशब्दोपरि वैदिकसंदर्भाः

पुरुषसूक्तोपरि पौराणिकसंदर्भाः

Page 177 of 523

Page 178 of 523

पुरुषसूक्तोपरि टिप्पणी

वायुपुराणे अध्यायः १.सर्ग ७.सूक्त ५६ तः आरभ्य पुरुषसूक्तस्य विस्तृतव्याख्या उपलब्धमस्ति।

भागवतपुराणे स्कन्ध ३.अध्याय २६.सूक्त २५ एवं लिङ्गपुराणे १.८८.२८ पुरुषशब्दस्य व्याख्यारूपेण समाधितः व्युत्थानस्य वर्णनमस्ति।

१०.९०.१अ

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।

चतुर्मुखस्तु ब्रह्मत्वे कालत्वे चान्तकोऽभवत्।

सहस्रमूर्द्धा पुरुषस्तिस्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः ।।वायुपुराणम् सर्ग १.अध्याय ५.सूक्त २६।।

सहस्रशिरसं साक्षाद् यं अनन्तं प्रचक्षते ।

सङ्कर्षणाख्यं पुरुषं
भूतेन्द्रियमनोमयम् ॥ भागवतपु. स्कन्ध
३.अध्याय २६.सूक्त २५ ॥

Page 178 of 523

Page 179 of 523

सहस्राक्ष उपरि पौराणिकसंदर्भाः

सहस्रोपरि वैदिकसंदर्भाः

सहस्रशीर्षा -- कथितुं शक्यन्ते यत् अत्र शीर्षः साधारण शीर्षः नास्ति, अपितु यज्ञस्य शीर्षः अस्ति। सोमयागे प्रवर्ग्यकृत्ये द्वादशशीर्षाणां निर्माणं करणीयमस्ति(प्रवर्ग्योपरि टिप्पणी पठनीयः)। या प्रजाः अस्ति, तस्याः शिरोभवनम्, प्रवरणम्, तस्यां रेतः सिञ्चनम्। ये द्वादशशीर्षाः भवन्ति, तेषां प्रयोजनं तैत्तिरीयारण्यके ५.१२.१ कथितमस्ति। अनुमानमस्ति यत् सहस्रसंख्या सामवेदस्य, शतसंख्या यजुर्वेदस्य एवं दशसंख्या ऋग्वेदस्य प्रतीकमस्ति। शौनकीयअथर्ववेद ४.६.१ अनुसारेण - ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः । स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम् ॥
अतएव, दशशीर्षावस्थायां विषस्य अरसकरणं भवति। शतशीर्षावस्थायां ये प्राणाः रौद्राः सन्ति, तेषां शमनं भवति (शतरुद्रीयं)। ऋग्वेद ८.७८.१ अनुसारेण - पुरोळाशं नो अन्धस इन्द्र सहस्रमा भर। शता च शूर गोनाम्॥ ८.०७८.०१। पुरोडाशः

Page 179 of 523

Page 180 of 523

मस्तिष्कस्य प्रतीकं भवति। अत्र अन्धसः रूपान्तरणं सहस्रप्रकारस्य पुरोडाशे कथितं अस्ति।

सहस्राक्ष विषये, अथर्ववेदे ४.२०.८ कथनमस्ति - तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत्। तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः ॥४॥ आविष्कृणुष्व रूपाणि मात्मानमप गूहथाः । अथो सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्याः किमीदिनः ॥
५॥ दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्यः । पिशाचान्त्सर्वान् दर्शयेति त्वा रभ ओषधे ॥६॥ कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्ष्याः । वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः ॥७॥ उदग्रभं परिपाणाद्यातुधानं किमीदिनम् । तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्यम् ॥ अयं संकेतमस्ति यत् सहस्राक्ष अथवा सहस्रचक्षु - अवस्थायां स्वदोषाणां दर्शनस्य क्षमतायाः प्राप्तिर्भवति। संसारे स्वदोषाणां दर्शनं सर्वाधिकं कठिनं अस्ति। पुराणेषु अक्षाणां चतुःप्रकाराः सन्ति - कृत, त्रेता, द्वापर, कलि। महाभारत वनपर्व ७२ मध्ये कथनमस्ति

Page 180 of 523

Page 181 of 523

यत् यदा नलः अक्षविद्यायां निपुणं भवति, तदा कलिः तस्य देहं विसृजति।

सहस्रपादस्य विषये, अथर्ववेद ७.४२.२ मध्ये कथनमस्ति - श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः । स नो नि यच्छाद्वसु यत्पराभृतमस्माकमस्तु पितृषु स्वधावत्॥ अस्य मन्त्रस्य सायणभाष्ये सहस्रपादस्य भाष्यं सहस्ररश्मिः कृतं अस्ति। अतएव, सहस्राक्षः भूत्वा स्वपापानां दर्शनं पर्याप्तं नास्ति। स्वज्योतिषा अन्येषां पापानां अपि अपनयनं अपेक्षितं अस्ति। अपि च, अथर्ववेद १५.३.१५ अनुसारेण - अयं स देवो अप्स्वन्तः सहस्रमूलः परुशाको अत्त्रिः । य इदं विश्वं भुवनं जजान ।

पुरुषशब्दविषये, पुरुषोपि पञ्चपशुषु अन्तिमः पशुः अस्ति (अज, अवि, गौ, अश्व, पुरुष)। तेषां साम्यः सामवेदस्य भक्तिभिः सह अस्ति (हिंकारः, प्रस्तावः, उद्गीथः, प्रतिहारः, निधनम्)। अन्येभ्यः पशुभ्यः पुरुषः केन प्रकारेण विशिष्टः अस्ति। पशवः चतुष्पादाः भवन्ति, पुरुषः द्विपादः अस्ति। गुह्यार्थे द्विपादः ऊर्ध्वाधो

Page 181 of 523

Page 182 of 523

गत्यर्थकः अस्ति, एवं डा. फतहसिंहस्य कथनमस्ति। पशवः चतुष्पादाः सन्ति। तेषां गतिः तिर्यक् गतिः अस्ति। पशुशब्दोपरि टिप्पणी पठनीयः अस्ति। कथनमस्ति यत् पशवः चक्षणहीनाः सन्ति। अत्र चक्षणस्य अर्थं स्वगुणदोषाणां चक्षणं प्रतीयते। अनेन प्रकारेण, पुरुष-पशु मध्ये व्यावहारिकरूपेण के भेदाः सन्ति, अस्य विस्तृतविवेचनं अपेक्षितमस्ति।

१०.९०.१ब

स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।

भूम्याः वृतत्वं केन प्रकारेण भवेत्। महाभारते वनपर्वे १३४ अध्याये अष्टावक्र - वन्दि संवादः विद्यते यत्र अष्टावक्रः दशसंख्यायाः वैशिष्ट्यं कथ्यते। एकः वैशिष्ट्यं अस्ति - दश दिशः। यदि साधकः दशदिशानामुपरि आधिपत्यं प्राप्नोति, तदा भूम्याः वृतत्वं संभवति। दशदिशासु अष्टदिशानां गुणानां विवेचनं अष्टसखी शब्दस्य टिप्पण्यां विद्यते।

Page 182 of 523

Page 183 of 523

अत्यतिष्ठद् - ऋग्वेद १.१६३.२ मध्ये कथनमस्ति - इन्द्र एणं (अर्वोपरि) प्रथमो अध्यतिष्ठत्। अतएव, अत्यतिष्ठत् - यमनाय, नियन्त्रणाय। दशाङ्गुलम् - विष्णुधर्मोत्तरपुराणे ३.३६ कथनमस्ति यत् ग्रीवायाः मानं दश अङ्गुलं भवति। अङ्गुलमानस्य रहस्यं किमस्ति, अन्वेषणीयः। महाभारते द्रोणपर्व १९०.५५ मध्ये कथनमस्ति यत् युधिष्ठिरस्य रथः, यः पृथिवीतः चतुरङ्गुलमानेन उच्छ्रितः आसीत्, अनृतवचनेन भूमिस्पर्शी अभवत्। लक्ष्मीनारायणसंहिता १.५८१.३१ अनुसारेण यत्र नारायणेन भूम्या उपरि स्वकण्ठमण्याः स्थापना कृता आसीत्, तत् पुरुषोत्तमक्षेत्रः अस्ति। पुरुषसूक्तस्य पुरुषोत्तमक्षेत्रेण सह तादात्म्यं अस्ति वा न वा, अन्वेषणीयः अस्ति।१०.९०.२अ

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।

यथा सर्वविदितमस्ति, पशवः भूत-भव्यस्य अनुमानं कर्तुं अशक्ताः सन्ति।

सर्व उपरि वैदिकसंदर्भाः १०.९०.२ब

Page 183 of 523

Page 184 of 523

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ईशानोपरि पौराणिकसंदर्भाः

ईशानः उपरि टिप्पणी

पुराणेषु सार्वत्रिकरूपेण शिवस्यार्चनं पञ्चभिर्नामभिः - ईशानः, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव, सद्योजात इति करणीयस्य निर्देशाः सन्ति। नारदपुराण १.९१.६३ अनुसारेण ईशानपुरुषयोः भेदः अयमस्ति यत् ईशानशिवः पञ्चशीर्षात्मकः अस्ति, पुरुषः चतुश्शीर्षः। ईशानशिवस्य चत्वारि मुखानि चतुर्दिक्षु सन्ति, एकः मध्ये। अन्यत्र कथनमस्ति (लिङ्गपुराणम् २.१४.२१) यत् ईशानशिवः क्षेत्रज्ञः अस्ति, पुरुषः प्रकृतिः। क्षेत्रज्ञः प्रकृतेः भोक्ता अस्ति। ईशानः आकाशतत्त्वेन सह सम्बद्धः अस्ति, पुरुषः वायुतत्त्वेन (द्र. महाभूतोपरि टिप्पणी)। ईशानशिवः शान्त्यातीतकलया सम्बद्धः अस्ति, पुरुषः शान्तिकलया। शिवपुराणे ४.४२.२३ कथनमस्ति - ईशानः सर्वविद्यानां इति। अस्यां स्थित्यां प्रकृत्याः रूपं सरस्वत्यात्मकं अस्ति। ईशानस्य पत्नी सम्पत्तिः अस्ति(ब्रह्मवैवर्त्त २.१.१०७)

Page 184 of 523

Page 185 of 523

या दारिद्र्यस्य नाशं करोति। सायणभाष्ये सार्वत्रिकरूपेण ईशानशब्दस्य अर्थं समर्थः, ईश्वरः इति कृतमस्ति। यदन्नेनातिरोहति। पुरुषेण अन्नभक्षणान्तरं अन्नतः अमृतस्य प्राप्तिः ईशानरूपेणैव संभवमस्ति। १०.९०.३ब

पादो॑ऽस्य॒ विश्वा॑ भू॒तानि॑ त्रि॒पाद॑स्या॒मृतं॑ दि॒वि

पादोपरि पौराणिकसंदर्भाः I पादोपरि टिप्पणी १०.९०.६

वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविःI आज्योपरि टिप्पणी

इध्मोपरि पौराणिकसंदर्भाः I इध्मोपरि टिप्पणी

वराहपुराणे १८.२५ इध्मशब्दस्य निरुक्तिः विद्यते। ध्मा - प्रपूरणे, इ - आगति। काशकृत्स्न धातुकोशे ध्मा धातुः शब्दाग्नयोः संयोगे अस्ति, यथा शंखस्य ध्मानम्। वसन्तर्तौ इध्मस्य आवश्यकता नास्ति। वसन्तः समित्, सममिति अर्थे। अनेन कारणेन प्रपूर्णनस्य आवश्यकता नास्ति।

Page 185 of 523

Page 186 of 523

जावानी महाभारते ध्माकारौ भीम- अर्जुनौ हविरुपरि वैदिकसंदर्भाः

शरद्धविः। अस्मिन् संदर्भे तैत्तिरीयब्राह्मणस्य २.६.१९. अयं कथनं उल्लेखनीयमस्ति - वसन्तेनर्तुना देवाः । वसवस्त्रिवृता स्तुतम् । रथन्तरेण तेजसा । हविरिन्द्रे वयो दधुः । ग्रीष्मेण देवा ऋतुना । रुद्राः पञ्चदशे स्तुतम् । बृहता यशसा बलम् । हविरिन्द्रे वयो दधुः । वर्षाभिर्ऋतुनादित्याः । स्तोमे सप्तदशे स्तुतम् । वैरूपेण विशौजसा । हविरिन्द्रे वयो दधुः । शारदेनर्तुना देवाः । एकविँश ऋभवः स्तुतम् । वैराजेन श्रिया श्रियम् । हविरिन्द्रे वयो दधुः । हेमन्तेनर्तुना देवाः । मरुतस्त्रिणवे स्तुतम् । बलेन शक्वरीः सहः । हविरिन्द्रे वयो दधुः । शैशिरेणर्तुना देवाः । त्रयस्त्रिँशेऽमृतँ स्तुतम् । सत्येन रेवतीः क्षत्त्रम् । हविरिन्द्रे वयो दधुः। अत्र न केवलं शारदेन, अपितु सर्वैः ऋतुभिः इन्द्राय हविःप्रदानस्य उल्लेखमस्ति। अतएव, शरद्ऋतोः वैशिष्ट्यानां विशद् अध्ययनस्य आवश्यकता

Page 186 of 523

Page 187 of 523

अस्ति। वैदिकवाङ्मये सार्वत्रिकरूपेण शरदस्य लक्षणं बर्हिः अस्ति। देहे यः विद्योतनं, स्फूर्जनं अस्ति, तत् स्थानिकं नास्ति, अपितु तस्य विस्तारं बर्हिरिव सर्वत्रास्ति। अयं भक्त्याः पक्वावस्था अस्ति - श्रद्धा, अन्नाद्यं। वायुपुराणे ३०.७ वर्षाऋतोः संज्ञा जीवः अस्ति, शरदस्य सुधावन्त, हेमन्तस्य मन्युमन्त। अन्यत्र हेमन्तस्य लक्षणानि स्विष्टकृत्, स्वाहा इत्यादयः सन्ति। १०.९०.७

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः। तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये।।

बर्हिरुपरि वैदिकसंदर्भाः

यथा डा. सुकर्मपालसिंहतोमरस्य शोधप्रबन्धे कथितमस्ति, समाधिअवस्थायां या आनन्दवृष्टिः भवति, तस्याः प्रभावं पुरुषस्य बहिर्वृत्तिषु अपि भवति। आनन्दवृष्ट्याः प्रथमं प्रभावं मज्जा,
वपा उपरि भवति। तथा अस्य प्रभावस्य च्यवनं इन्द्रियेभ्योउपरि अपि भवति। अतएव, इन्द्रियाणां संज्ञापि बर्हिः भवति। तैत्तिरीयसंहिता ६.३.९.५ आदीनां कथनं

Page 187 of 523

Page 188 of 523

अस्ति - अग्रं वा एतत् पशूनां यद् वपाग्रमोषधीनां बर्हिः। बर्हिषः अथवा वपायाः अग्रविशेषणस्य किमर्थमस्ति। एकः संभावितार्थः -- ये तापसजनाः सन्ति, ते स्वअन्तःकरणैः, स्वकीयैः इन्द्रियैः भूत-भविष्यस्य ज्ञानं कर्तुं शक्ताः भवन्ति। लघुउदाहरणं। दीर्घकालीने उपवासे भोजनस्य स्वप्नाः दृश्यन्ते। बुभुक्षायाः या अनुभूति केवलं वपास्तरे आसीत्, तस्याः अवतरणं स्वप्नेषु भवितुं आरभ्यते। अग्रिमे चरणे तेषां अनुभूतिः चक्षु, श्रोत्रादिइन्द्रियेषु अपि भवति।

साध्योपरि पौराणिकसंदर्भाः

साध्योपरि वैदिकसंदर्भाः

ऋतूनां संदर्भे, शरदऋतोः लक्षणं बर्हिः अस्ति। अतःपरं हेमन्त-शिशिरयोः संज्ञा घोरः अस्ति। वर्षासु यः जलः पंकमिश्रितः भवति, शरत्सु तत् स्वच्छतां प्राप्नोति। ये जलाः पापयुक्ताः आसन्, ते विलीना भवन्ति। अस्याः स्थित्याः संज्ञा साध्यानां यज्ञः अस्ति। ताण्ड्यब्राह्मण ८.३.५ अनुसारेण साध्याः सोमयागे तृतीयसवनस्य छेदनं कुर्वन्ति। ते प्रातः

Page 188 of 523

Page 189 of 523

एवं माध्यन्दिनसवनेनैव स्वर्गं प्राप्नुवन्ति। येषां पापानां मार्जनं मृत्युविना (तृतीयसवनं) संभवं नास्ति, तत्र साध्यानां गतिर्नास्ति। एतेषां पापानां संज्ञा घोरः भवति।१०.९०.८

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् । पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यान् आरण्यान् ग्राम्याश्च ये।।

गवामयनसत्रयागस्य त्रयः भागाः भवन्ति
- .....। विषुवत् अहः माध्यन्दिनसवनेन तुल्यः अस्ति। अस्मिन्नहनि आदित्यस्य ये रश्मयः सन्ति, तेषां पृथिव्यां उपरि पातः ऋजुतमेन पथा भवति, यथा भौगोलिकरूपेण पृथिव्योपरि कल्पितायां विषुवत् रेखोपरि। अनुमानमस्ति यत् साध्यानां यागः विषुवत् अह्न यावत् सीमितः अस्ति। अतः परं यः यागं अस्ति, तत् यथार्थरूपेण मर्त्यस्तरस्य अमृतस्तरे रूपान्तरणस्य कृत्यमस्ति।

महाभारते आदिपर्वे १२९.४५ उत्तरपाञ्चालराज्ये द्रुपदस्य पितुः पृषतस्य उल्लेखमस्ति। अत्र पाञ्चालराज्यः सर्वहुतशब्दस्य

Page 189 of 523

Page 190 of 523

पर्यायवाची प्रतीयते। डा. फतहसिंहः कथयति स्म यत् द्रुपदः यागेषु पशुबन्धनार्थं मेथ्याः संज्ञा अस्ति द्रुपदेषु बद्धः। द्रु - द्रुतगतौ। द्रुपदस्य विपरीतं द्रोणः - द्रु न, स्थैर्यम् अस्ति। यदि
कोपि जनः यथार्थतः सर्वहोता, सर्वेषां जनानां होता, नेता, दूतः भवितुं इच्छति, तेषु मनःसु प्रवेशं वाञ्छति, तर्हि तस्य चेतनातन्त्रस्य अव्यवस्था अन्येषां चेतनातन्त्रेभ्यः न्यूना भवितुं अपेक्षितमस्ति। आधुनिकविज्ञाने अस्य संज्ञा एण्ट्रांपी आफ इन्फोर्मेशन अस्ति। यदि एवं न भवति, तर्हि चेतनातन्त्रोपरि येषां संवादानां आपतनं भविष्यति, ते विरूपाः, विकृताः भविष्यन्ति। श्रीरजनीशमहोदयानुसारेण (कुण्डली और सात शरीर प्रवचनमाला) कण्ठस्य विशुद्धिसंज्ञकचक्रस्य चेतनायाः अयं वैशिष्ट्यं अस्ति।

पृषदाज्योपरि वैदिकसंदर्भाः

पृषदाज्यस्य संभरणस्य का आवश्यकता अस्ति। कथनमस्ति यत् यः सोमः स्कन्दति, अनावश्यकरूपेण स्रवति, तस्य पुनः

Page 190 of 523

Page 191 of 523

सम्भरणस्य आवश्यकता भवति। पृषदाज्यस्य संभरणमपि सोमस्य संभरणस्य एकं कृत्यमस्ति। पृषदाज्यं प्राणानां रूपमस्ति। ये ग्राम्याः एवं आरण्यकाः पशवः सन्ति, तेषु पृषदाज्यरूपीप्राणानां विद्यमानता अस्ति। यः शुद्धआज्यः अस्ति, तस्मात् प्राणैः सह मनसः अपि विकासं भवति। पुरुषः मनसा सह अस्ति। किन्तु ये पशवः सन्ति, तेषु मनसः विकासं नास्ति, अयं ब्राह्मणे कथितमस्ति । पृषदाज्यं वैश्वदेवस्य स्थिरस्ति, यत्र जीवानां प्राणेषु एकात्मता नास्ति। यत्र एकात्मता भवति, सा स्थिति दशमीतिथितः परः एकादशीरुच्यते।

१०.९०.९

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात् यजुस्तस्मादजायत।।

वैदिकवाङ्मये सर्वहुतशब्दस्य उल्लेखाः सन्ति। लक्ष्मीनारायण संहितातः १.३०९ स्पष्टं भवति सर्वहुतस्य किं वैशिष्ट्यं भवितुं शक्यते। लोके कथानकाः प्रचलिताः सन्ति यत् अमुकः भक्तः यदा

Page 191 of 523

Page 192 of 523

बुभुक्षाग्रस्तः भवति, तदा सः पिपीलिकाभ्यः भोजनं प्रस्तौति। तेन तस्य स्वस्य बुभुक्षा शान्ता भवति। अस्यैव लोकस्य कथानकस्य विस्तारं लक्ष्मीनारायणसंहितायां अस्ति। यः सर्वेषां प्राणिनां बुभुक्षायाः स्वात्मनि अनुभवं कर्तुं शक्नोति, तस्य यज्ञात्, तस्य जीवनशैलीतः पृषदाज्यस्य संभरणं संभवमस्ति। प्रथमावस्थायां पृषदाज्यस्य संभरणं भविष्यति, तत्पश्चचात् आज्यस्य। अयमेव सोमयागः भविष्यति, यथा लक्ष्मीनारायणसंहितायाः कथायां सर्वहुतराजा पुष्करे सोमयागः करोति। १०.९०.१०

तस्मा॒दश्वा॑ अजायन्त॒ ये के चो॑भ॒याद॑तः । गावो॑ ह जज्ञिरे॒ तस्मा॒त्तस्मा॑ज्जा॒ता अ॑जा॒वयः॑ ॥

अश्वोपरि वैदिकसंदर्भाः, अश्वोपरि पौराणिकसंदर्भाः

अत्र पञ्चग्राम्यपशुषु चतुर्णां पशूनां उल्लेखमस्ति। पुरुषस्य उल्लेखं पूर्वमेव कृतमस्ति। एतेषां पशूनां किं महिमा अस्ति। शतपथब्राह्मण ६.२.१.५ अनुसारेण

Page 192 of 523

Page 193 of 523

पुरुषपशुः वैश्वकर्मणः अस्ति, अर्थात् पुरुषः पुरुषार्थयुक्तः अस्ति, सः दैवोपरि निर्भरः नास्ति। अन्ये चत्वारः ग्राम्याः पशवः दैवोपरि एव निर्भराः सन्ति। अश्वः वारुणमस्ति। वारुणं अर्थात् यत्र-यत्र अनृतमस्ति, तत्र-तत्र वरुणः बन्धनस्य, ग्रन्थेः सर्जनं करिष्यति। अनेनैव कारणेन महाभारते अश्वनिपुणस्य नकुलस्य संज्ञा विराड्नगरे ग्रन्थिकः अस्ति। यत्र अनृतं नास्ति, तत्र अश्वः सूर्यः, श्वेताश्वः भवितुं शक्यते। गावः रौद्राः, रुद्रदेवत्याः सन्ति। यागानां अवसाने अग्नेः स्विष्टकृत् इष्टिः भवति। तत् रुद्रस्य शमनाय भवति। रुद्रदेवः रौद्रप्रकृत्यापेक्षया सु-इष्टः भवतु, अयमर्थः। गौपशुः पृथिव्योपरि सूर्यस्य रश्मीनां संग्रहं करोति, येन भूतेषु या रौद्रता अस्ति, तस्य शमनं भवति। अविपशुः त्वष्टृदेवात्मकः अस्ति। त्वष्टृदेवस्य कार्यं ब्रह्माण्डे या ऊर्जा अस्ति, तस्याः सम्यक् उपयोजनं अस्ति। त्वष्टा देवः सूर्यं स्वभ्रम्योपरि रोपयित्वा तस्य रूपनिर्माणं करोति। तेन सूर्यस्य उदयः भवति। अतएव, छान्दोग्योपनिषदे

Page 193 of 523

Page 194 of 523

अविभक्तिः उदयेन सह सम्बद्धा अस्ति। अयं प्रतीयते यत् अविशब्दः आविःशब्दस्य, आविर्भावस्य परोक्षरूपमस्ति। आवश्यकता अस्ति यत् व्यवहारे ये पापाः सन्ति, तेषां उदयं न भवेत्, पुण्यानामेव उदयं भवेत्। अजाभक्तिः सूर्योदयात् पूर्वावस्था अस्ति। अस्याः सम्बन्धं व्याधिभिः सह अपि अस्ति। १०.९०.१२अ

ब्राह्मणो अस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः।

द्र. भविष्यपुराणम् ३.४.५.८

बाह्वोपरि वैदिकसंदर्भाः

बाहू राजन्यः कृतः केन कारणेन। पद्मपुराण १.३.१०५ आदिषु कथनमस्ति यत् ब्रह्मणः वक्षसः अवेः प्राकट्यमभवत्। वक्षः वैक्सिंग-वेनिंग, ध्माकरणस्य स्थानमस्ति। अविः आविर्भाव - तिरोभावस्य, उदयावस्थायाः प्रतीकमस्ति, पाप-पुण्यानां आविर्भावः - तिरोभावः। बाहुविषये सार्वत्रिकमन्त्रमस्ति - सवितुः प्रसवे अश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णोः हस्ताभ्यां इति। बाहुमूले पाप-पुण्यानां आविर्भावः -

Page 194 of 523

Page 195 of 523

तिरोभावः प्रचलति। अनेनानुसारेणैव बाह्वग्रे कर्मः प्रचलिष्यति। अतएव, वैदिकवाङ्मये सार्वत्रिककथनमस्ति - देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां आददे, इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा । मैसं १.१.१०, काठ.सं. १.९। बाहुमूले सवितृदेवस्य प्रसवस्य, प्रेरणस्य आवश्यकता अस्ति। नारदपुराणादिषु (नारद १.७.३) कथनमस्ति यत् बाहुराजा असूयादोषतः ग्रस्तः आसीत्, अनेन कारणेन तस्य राज्यः शत्रुभिः अपहृतमासीत्। बाह्वोः द्वे रूपौ स्तः - ऊर्ध्वबाहुः, तिर्यक्बाहुः। यदा वीर्यसंरक्षणस्य आवश्यकता भवति, तदा ऊर्ध्वबाहुरूपः अपेक्षितमस्ति (माश ५,४, १,
१७। १०.९०.१२ब

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

ऊरवोरुपरि टिप्पणी

देहे उरः, उदरादिकं यः मध्यभागमस्ति, तस्य संज्ञा ज्योति-अण्डः अस्ति (इन्द्राग्नी शिखण्डाभ्याम् (प्रीणामि)। तैसं

Page 195 of 523

Page 196 of 523

५.७.१५.१)। यावत् क्षुधादीनि पापानि विद्यमानानि सन्ति, तावत् अस्याण्डस्य भेदनं अपेक्षितं नास्ति। इन्द्राग्नी देवौ क्षुधादीनां पापानां अपहर्तारौ स्तः। यदा पापानां क्षयः भवति, तदा ज्योतिराण्डस्य भेदनं, ऊरवोः स्थापनं अपेक्षितं अस्ति। इन्द्राबृहस्पती ऊरवोः देवौ स्तः। यावत् पापानां प्रतिष्ठा अस्ति, तावत् अमावास्या अस्ति। यदा पापानां क्षयः भवति, तदा पौर्णमासः भवति (तैब्रा ३, १, १, ११)।

ऊरू वैश्यः केन प्रकारेण। पद्मपुराण १.३.१०५ आदिषु कथनमस्ति यत् ब्रह्मणः उदरात् गौ-महिष्यादीनां सृष्टिरभवत्। गोः कृत्यं सूर्यस्य रश्मिभिः भोजनस्य निर्माणं, अन्यशब्देषु, रश्मीनां संचयं अस्ति। पृथ्वीरूपी या गौः अस्ति, तस्यापि अयमेव कार्यमस्ति। यस्य ऊर्जायाः संचयं भवति, तस्य उपयोगं सर्वभूतानां पुष्ट्यै भवति। देहे यः ऊरुसंज्ञकः अंगः अस्ति, तत् उदरस्य निकटतमः अस्ति। व्यावहारिकरूपेण, नायं ऊरु अस्ति, अयं पूरुः अस्ति। अनुमानमस्ति यत् यदा नाभिद्वारः सूर्यस्य

Page 196 of 523

Page 197 of 523

रश्मीनां आगमनाय द्वारं भवति, तदैव पूरुः ऊरुः भवति। पूरुः अर्थात् यः देहस्य न्यूनतायाः पूरणं करोति। ऊरु - यः देहस्य चेतनायाः अतिक्रमणं कृत्वा बहिर्गन्तुं शक्यते।

१०.९०.१३

चन्द्रमा मनसो जातः चक्षोः सूर्यो अजायत। मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत।।

तुलनीयः -- स प्राणेभ्य एवाधि पशून्निरमिमीत मनसः पुरुषं चक्षुषोऽश्वं प्राणाद्गां श्रोत्रादविं वाचोऽजं तद्यदेनान्प्राणेभ्योऽधि निरमिमीत तस्मादाहुः प्राणाः पशव इति मनो वै प्राणानां प्रथमं तद्यत्मनसः पुरुषं निरमिमीत तस्मादाहुः पुरुषः प्रथमः पशूनां वीर्यवत्तम इति मनो वै सर्वे प्राणा मनसि हि सर्वे प्राणाः प्रतिष्ठितास्तद्यन्मनसः पुरुषं निरमिमीत तस्मादाहुः पुरुषः सर्वे पशव इति। माश ७,५,२,६

Page 197 of 523

Page 198 of 523

मनउपरि पौराणिकसंदर्भाः मनउपरि संक्षिप्तटिप्पणी एवं संदर्भाः, चक्षुरुपरि वैदिकसंदर्भाः, प्राणोपरि पौराणिकसंदर्भाः, प्राणोपरि वैदिकसंदर्भाः,

वायुरुपरि टिप्पणी

डा. फतहसिंहः कथयति स्म यत् वैदिकवाङ्मये शब्दानां त्रिप्रकाराः सन्ति -- बहुवचनं, द्विवचनं एवं एकवचनम्। शब्दस्य यः एकवचनमस्ति, तत् दिव्यरूपमस्ति। अनेन प्रकारेण, अथर्ववेदे ११.६ सूक्ते प्राणस्य एकवचनस्य रूपस्य वर्णनमस्ति। अस्य प्राणस्य रूपं वायुरूपं दृश्यते। अस्मिन् सूक्ते स्तनयित्नु, विद्युत्, वर्षणादिशब्दाः सन्ति। वैदिकवाङ्मये एतेषां मूलं वायुरस्ति।

महाभारते शान्तिपर्व ३२८.३८ मध्ये यदा स्थूलदेहस्थिताः प्राणाः ब्रह्माण्डस्थितानां वायूनां रूपाणि धारयिष्यन्ति, तदा उदानादीनां प्राणानां ब्रह्माण्डे किं रूपं अस्ति, अस्य वर्णनमस्ति। १०.९०.१५

Page 198 of 523

Page 199 of 523

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः । देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥१५॥

परिधिरुपरि टिप्पणी एवं संदर्भाः, कवचोपरि टिप्पणी

१०.९०.१६अ

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

एषा ऋचा ऋग्वेदे १.१६४.५० अपि विद्यमाना अस्ति। अस्याः सायणभाष्ये कथनमस्ति यत् आदित्याश्चैवेहासन्नङ्गिरसश्च तेऽग्रेऽग्निनाग्निमयजन्त ते स्वर्गं लोकमायन्(ऐतरेय. ब्राह्मण. १. १६) । यथा विदितमस्ति, अङ्गिरसां यज्ञः मन्दगत्या प्रचलति, श्वःसुत्यया, आदित्यानां त्वरितगत्या, अद्यसुत्यया। अतएव अयं संभवमस्ति यत् यज्ञेन यज्ञं शब्दौ मन्दगति एवं तीव्रगतियज्ञयोः वाचकौ स्तः। तैत्तीरीयब्राह्मणं ३.९.१९ तः संकेतं मिलति यत् एकः यज्ञः निष्कामयज्ञः अस्ति, द्वितीयः कामनापरकः।

Page 199 of 523

Page 200 of 523

ऋग्वेद १.१६४.४३ ऋचा अस्ति - शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण । उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥४३॥ अत्र कथनमस्ति - उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्। अयं अर्धर्चः यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् इति अर्धर्चस्य तुल्यं अस्ति। सायणभाष्यानुसारेण उक्षा - फलसेचनसमर्थः। जगद्व्यवहारे बहवः कार्याः, अनुष्ठानाः भवन्ति ये त्वरितफलदायकाः सन्ति। धारणा अस्ति यत् शक्तिपूजा त्वरितफलदायी अस्ति, न शिवपूजा। डा. फतहसिंहानुसारेण पृश्निशब्दः चित्र-विचित्रस्य, जगद्व्यवहारस्य बोधकः अस्ति। नायं सात्त्विकव्यवहारः। किन्तु या संसारव्यवहारस्य प्रथमानुभूतिः अस्ति, तत् मिथ्या नास्ति, तस्याः पाचनं, परिपाकं एव यज्ञमस्ति। एते धर्माः प्रथमानि सन्ति। काशिकानुसारेण धर्मशब्दः पुंल्लिंगः अस्ति, धर्माणि नपुंसकः।

१०.९०.१६ब

Page 200 of 523

Page 201 of 523

ते ह नाकं महिमानः सचन्ते यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।

नाकोपरि संदर्भाः,

ये स्वसंकल्पानां सिद्धिहेतु यज्ञेन यज्ञं कुर्वन्ति, ते ह नाकं महिमानः सचन्ते यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।। संकल्पसिद्धियज्ञस्य आरम्भः लघुत्तमाकारतः भविष्यति एवं क्रमिकरूपेण बृहत्तररूपं धारयिष्यति। अयं एकः विकल्पः अस्ति। द्वितीयः विकल्पः साध्यानां देवानां अस्ति। यदा संकल्पः अतिप्रबलः अस्ति, तदा क्रमस्य आवश्यकता नास्ति।

इसप्रकार पुरुषसूक्त सृष्टि के उद्भव एवं विकासकर्म की कल्पना का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है I

यं शैषाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो

Page 201 of 523

Page 202 of 523

बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः I

अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः

सोऽयं नो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः II

(कल्याण ईश्वराङक)

अन्वयः----यं शैषाः शिव समुपासते इति, वेदान्तिनो ब्रह्म: इति, बौद्धा बुद्ध इति, नैयायिकाः प्रमाणपटवः कर्ते इति I अथ जैनशासनरताः मीमांसकाः नित्य अर्हन् कर्मे इति, सो अयं नो विदधातु वाञ्छित फलं त्रैलोक्यनाथो हरिः I

शब्दार्थः----- यं----जिसकी; शैषाः----अन्य; समुपासते------उपासना करते हैं; शिव----शिव; इति---ऐसा, शिव रूप में; वेदान्तिनो-----वेदों में विश्वास रखने वाले,वेदों को मानने वाले; ब्रह्म:-----ब्रह्म; इति----ऐसा है, बौद्धा---- बुद्ध को मानने वाले; बुद्ध----भगवान बुद्ध; इति----ऐसा; नैयायिकाः----तार्किक, वाद-विवाद करने वाले; प्रमाणपटवः-----प्रमाणपटु, प्रमाणित करने में, अन्वेषक; कर्ते---करते

Page 202 of 523

Page 203 of 523

हैं; I अथ----ऐसे ही; जैनशासनरताः-----जैन नियमों को मानने वाले; मीमांसकाः------ अनुसंधान करने वाले, पूछ-ताछ करने वाले; दर्शनशास्त्री, नित्य----हर समय; अर्हन्---- पूजा-उपासना; कर्मे------कर्म में; इति----ऐसा विश्वास् करते हैं;, सो-----इसी प्रकार; नो---- जो कोई, विदधातु----प्रदान करते हैं, रचना करते हैं, अर्थात देते हैं;वाञ्छित---- इच्छापूर्ण; फलं-----फल; अयं---इन; त्रैलोक्यनाथो----तीनों लोकों के स्वामी; हरिः----श्री हरि, विष्णु;

अर्थः---जिसकी अन्य शिव रूप में उपासना करते हैं, वेदों को मानने वाले ब्रह्म रूप में, बुद्ध को मानने वाले, भगवान बुद्ध रूप में, तार्किक, वाद-विवाद करने वाले, अन्वेषक, प्रमाणित करने में; इसीप्रकार जैन नियमों को मानने वाले; अनुसंधान करने वाले, पूछ-ताछ करने वाले, दर्शन शास्त्री हर समय पूजा- उपासना, कर्म में, जो कोई इच्छित फल प्रदान करते हैं ऐसे ये तीनों लोकों के स्वामी श्री हरि विष्णु हैं I

बौद्ध मतानुसार ईश्वर स्तुति:------

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स I

Page 203 of 523

Page 204 of 523

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स I नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स I बुद्धं सरणं गच्छामि I धम्मं सरणं गच्छामि I
संघं सरणं गच्छामि I
दुतियम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि I दुतियम्पि धम्मं सरणं गच्छामि I
दुतियम्पि संघं सरणं गच्छामि I
ततीयम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि I
ततीयम्पि धम्मं सरणं गच्छामि I
ततीयम्पि संघं सरणं गच्छामि I
पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदम् समादियामि I अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदम् समादियामि I
कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदम् समादियामि I
मुसावादा वेरमणी सिक्खापदम् समादियामि I सुरा-मेरय-मज्जा-पमा-दट्ठाना

Page 204 of 523

Page 205 of 523

वेरमणी सिक्खापदम् समादियामि I

अर्थः------पूर्ण प्रज्ञ, अर्हन्, भगवान् (बुद्ध) को नमस्कार हो I पूर्ण प्रज्ञ, अर्हन्, भगवान् (बुद्ध) को नमस्कार हो I

पूर्ण प्रज्ञ, अर्हन्, भगवान् (बुद्ध)को नमस्कार हो I

मैं बुद्ध के शरण में आता हूँ, धर्म के शरणापन्न होता हूँ,

संघ के शरणमें जाता हूँ, द्वितीय बार मैं बुद्ध के शरणापन्न होता हूँ, धर्म के शरणमें जाता हूँ, संघ के शरण में जाता हूँ! तीसरी मैं बुद्ध के शरणापन्न होता हूँ, धर्म के शरणमें जाता हूँ, संघ के शरण में जाता हूँ I मैं जीव की हिंसा न करने की प्रतिज्ञा करता हूँ I मैं उस वस्तु के न लेने की प्रतिज्ञा करता हूँ, जो मुझे न दी गई हो I कामनाओं में मिथ्याचरण न करने की मैं प्रतिज्ञा करता हूँ ! असत्य वचन से बचने की मैं प्रतिज्ञा करता हूँ I मैं सुरा-मद्यादि मादक वस्तुओं से बचने की प्रतिज्ञा करता हूँ I (कल्याण ईश्वराङक)

Page 205 of 523

ॐ बुद्धं शरणं गच्छामि , एष मे शरणं I मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ अर्थात बुद्ध की शरण लेता हूँ , ये ही मेरी शरण हैं I

ॐ धम्मं शरणं गच्छामि , एष मे शरणं I मैं धर्म की शरण में जाता हूँ अर्थात धर्म की शरण लेता हूँ I यह ही मेरी शरण है I

ॐ संघं शरणं गच्छामि , एष मे शरणं I मैं संघ की शरण में जाता हूँ अर्थात संघ की शरण लेता हूँ I यही मेरी शरण है I

ॐ मणि पद्मे अहं I मैं कमल में मणि के समान हूँ I

जैन मतानुसार ईश -स्तुति **--------**

- जैन मतानुसार जैन समाज के लोग णमोंकार मन्त्र को प्रणव लगाकर ही पढ़ते हैं ।यथा :- ں
- पंच परमेष्ठी नमस्कारं अर्थात णमोंकार मन्त्र या नवकार अथवा नमस्कार मन्त्र **:-**

ॐ णमो अरिहंताणं ,
ॐ णमो सिद्धाणं ,

Page 207 of 523

ॐ णमो आयरियाणं ।
ॐ णमो उवज्झायाणं ।
ॐ णमो लोए सव्व साहूणं ।

अर्थ:----- सभी अरिहंतों को नमस्कार हो I
सभी सिद्धों को नमस्कार हो!
सभी आचार्यों को नमस्कार हो I
सभी उपाध्यायों को नमस्कार हो I
इस लोक के समस्त साधुओं को नमस्कार हो I

ॐ को नमन्, ओंकार को नमन्
अरिहंतों को नमन्, श्री सिद्धों को नमन् ।
ॐ को नमन्, ओंकार को नमन्
आचार्यों को नमन्, उवाज्झायों को नमन्
ॐ को नमन्, ओंकार को नमन्
सर्व साधू को नमन्, जिन धर्म को नमन् ।। 1 ।।

ॐ को नमन्(ओम,ओं, प्रणवाक्षर चिन्ह) को (नमन्), नमस्कार है) ।
ओंकार, ॐ ध्वनि स्वरूप को नमस्कार है । अरिह्न्तों, (अरि से अर्थ शत्रु और अरिहंत का अर्थ हुआ जिसने सभी इंद्रियों, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, आदि विषय शत्रुओं को जीत लिया है, उन शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर के वश में कर लिया है वह स्वयमेव ईश्वर, परमात्मा, या ब्रम्ह, स्वरूप हो जाता है, इसी लिए यहाँ अरिहंत शब्द ईश्वर, परमात्मा,

Page 207 of 523

Page 208 of 523

ब्रम्ह वाचक सिद्ध हो जाता है,पूजा योग्य) को नमस्कार है ।
सिद्धों (अशरीर, अव्यक्त) को नमस्कार है । आचार्यों (गुरू), को नमस्कार है । उवज्झायों (उपाध्याय, पुजारी या पूजा कर्म करवाने वाले गुरू,) को नमस्कार है । सर्व साधुओं को नमस्कार है । जिन धर्म (भगवान महावीर स्वामी को इन्द्रीयों को वश में कर लेने के कारण सकल विषय इन्द्रीयों पर विजय का लेने के कारण जिन की उपाधी मिली थी उन्हें जिन अथवा विजेता कहा जाता था और उनके अनुयायी जैन और धर्म जिन अथवा जैन धर्म कहाया) को नमस्कार है। जो कि जैन समाज की धर्मं के प्रति निष्ठा को सूचक है। जैन मतानुसार ‘ओम’ के इस स्वरूप में साधक की विभिन्न अवस्थाओं का निरूपण होता है।

ॐ मंगलं, ओंकार मंगलं,
अरिहंत मंगलं, श्री सिद्ध मंगलं ।
ॐ मंगलं, ओंकार मंगलं,
आचार्य मंगलं, उवज्झाय मंगलं ।
ॐ मंगलं, ओंकार मंगलं,
सर्व साधू मंगलं, जिन धर्म मंगलं ।। 2 ।।

ॐ मंगलकारी है। ओंकार, ॐ ध्वनि स्वरूप मंगलकारी है।

Page 208 of 523

Page 209 of 523

अरिहंत मंगलकारी हैं । श्री सिद्ध मंगलकारी हैं ।
आचार्य मंगलकारी हैं । उवज्झाय मंगलकारी हैं । सर्व साधू मंगलकारी हैं । जिन धर्म मंगलकारी है

ॐ उत्तमा, ओंकार उत्तमा,
अरिहंत उत्तमा, श्री सिद्ध उत्तमा ।
ॐ उत्तमा, ओंकार उत्तमा,
आचार्य उत्तमा, उवज्झाय उत्तमा ।
ॐ उत्तमा, ओंकार उत्तमा,
सर्व साधू उत्तमा, जिन धर्म उत्तमा ।। 3 ।।

ॐ उत्तम है । ओंकार, ॐ ध्वनि स्वरूप उत्तम है।
अरिहंत उत्तम हैं । श्री सिद्ध उत्तम हैं ।
आचार्य उत्तम हैं । उवज्झाय उत्तम हैं ।
सर्व साधू उत्तम हैं । जिन धर्म उत्तम है ।

ॐ शरणा, ओंकार शरणा,हम
अरिहंत शरणा, श्री सिद्ध शरणा ।
ॐ शरणा, ओंकार शरणा,
आचार्य शरणा, उवज्झाय शरणा ।
ॐ शरणा, ओंकार शरणा,
सर्व साधू शरणा, जिन धर्म शरणा ।
ॐ को नमन्, ओंकार को नमन् ।। 4 ।।

Page 209 of 523

Page 210 of 523

हम सब ॐ की शरण हैं । हम सब ओंकार, ॐ ध्वनि स्वरूप ईश्वर की शरण हैं ।
अरिहंतों की शरण हैं । श्री सिद्धों की शरण हैं ।
आचार्यों की शरण हैं । उवाज्झायों की शरण हैं ।
सर्व साधू की शरण हैं । जिन धर्म की शरण हैं ।

अरिहंत नमो भगवन्त नमो

परमेश्वर जिनराज नमो I

प्रथम जिनेश्वर प्रेमे पेखत

सिद्धं सघला काज नमो II

अर्थ:---- अरिहंत को नमस्कार, भगवान को नमस्कार, परम ईश्वर जिनराज (विजेताओं के अधिपति अर्थात भगवान महावीर) को नमस्कार I सर्व प्रथम भगवान महावीर को प्रेम में देखा जाता है, जो सारे कार्यों को सिद्ध करने वाले हैं I

प्रभु पारंगत परम महोदय, अविनाशी अकलंक नमो I

Page 210 of 523

Page 211 of 523

अजर-अम्रर अद्भुत अतिशय निधि, प्रवचन जलधि मयंक नमो II

सब करने में निपुण सर्वश्रेष्ठ, अविनाशी, निष्कलंक, प्रभु, (भगवान महावीर) को नमस्कार I जरा (वृद्धावस्थादि रोग रहित)-अमर (मृत्यु आदि रोगों से रहित) अद्भुत प्रवचनरूपी निधि की अधिकता से भरे सागर, निर्मल चन्द्रमा को नमस्कार I

सिद्ध बुद्ध तूँ जगजन सज्जन, नयनानन्दन देव नमो I

सकल सुरासुर नरवर नायक, सारे अहो निश सेव नमो II

अर्थ:-- तूँ सिद्ध है, बुद्ध है, जगत के सज्जन जनों के नयनों को आनन्द रूप देव को नमस्कार I समस्त सुर-असुर मनुष्यों के नेतृत्व करता अधिपति सभी के द्वारा दिन-रात सेवित तुम्हें नमस्कार I

तूँ तीर्थंकर सुखकर साहिब, तूँ नि:कारण बन्धु नमो I

शरणागत भविने हितवत्सल, तूँ ही कृपारस सिन्धु नमो II

Page 211 of 523

Page 212 of 523

अर्थ:---तूं तीर्थंकर है, सुख दाता स्वामी, तूं बिना कारण भलाई के लिये मित्र है, तुम्हें नमस्कार! शरण में आये हुये के लिये भला चाहने वाले कृपारस से भरे सागर तुम को ही नमस्कार है I

केवल ज्ञानादर्शे दर्शित, लोकालोक स्वभाव नमो I

नाशित सकल कलंक कलुषगण, दुरित उपद्रव भाव नमो II

अर्थ:--- -लोक–परलोक के स्वभाव, केवल ज्ञान के आदर्श को दर्शाने वाले आप को नमस्कार I समस्त बुराईयों, बुरा चाहने वाले लोग, उपद्रव के भव को दूर करने वाले आप को नमस्कार I

जगचिन्तामणि जगगुरु जगहित, कारक जगजन नाथ नमो I

घोर अपार भावोदधि तारण, तूँ शिवपुरणो साथ नमो II

अर्थ:---जगत की चिंता हरने वाले चिंतामणी, विश्व गुरु, सृष्टि का भला करने वाले, संसार के प्राणियों के स्वामी को नमस्कार! जिसे पार नहीं किया जा सकता, भावनाओं के ऐसे गहरे सागर से तारने वाले तुम पूर्णरूप से शिव

Page 212 of 523

(कल्याणकारी) साथ (साथ निभाने वाले -साथ रहने वाले साथी) को नमस्कार है !

अशरण शरण निराग निरंजन , निरुपाधिक जगदीश
नमो **I**

बोध दीनुं अनुपम दानेसर , ज्ञानविमल सूरीश
नमो **II**

अर्थ **:----** जिनको कोई शरण देने वाला नहीं उनके लिये बिना किसी इच्छा के प्रसन्नता देने वाले समस्त उपाधियों से रहित जगत के स्वामी को नमस्कार I सबसे उत्तम ज्ञान केवल ज्ञान देने वाले पवित्र ज्ञान वाले सूरीश्वर के स्वामी को नमस्कार I (कल्याण ईश्वराङक) I

नम**:** श्री वर्धमानाय निर्धूत कलिलात्मने **I**
सालोकानां त्रिलोकनां यद्विया दर्पणायते **II**

अर्थ **:---** मैं भगवान श्री वर्धमान महावीर को नमन् कर्ता हूँ जो पूर्ण अव्यवस्थित समाज मानव के लिये , प्रकाशमान तीनों लोकों का ज्ञान प्रकाशित करते हैं I

चिदानन्दैकरूपाय जिनाय परमात्मने **I**
परमात्म प्रकाशय नित्यं सिद्धात्माने नम **: I**

अर्थ **:---** चित्त के आनन्द एकरूप इन्द्रियों को जीतनेवाले विजेता परमात्मा को , परम् आत्म के

Page 214 of 523

प्रकाश हेतु नित्य सिद्धात्मा को नमन् करता हूँ I

शिव पंचाक्षरी मंगल पाठ इसप्रकार करते हैं
—

ॐ मंगलं ॐकार मंगलं,
ॐ न---म: ---शि---वा---य मंगलं I
न मंगलं नकार मंगलं, नादबिन्दु कलातीत गुरू मंगलं I
म मंगलं मकार मंगलं, मन्दहास मोदकारी गुरू मंगलं I
शि मंगलं शिकार मंगलं, शिष्टताप शीघ्रहारी गुरू मंगलं I
वा मंगलं वकार मंगलं, वागातीत विश्वनाथ मंगलं I
य मंगलं यकार मंगलं, यज्ञरूप योगमयी गुरू मंगलं I

सिखों द्वारा की जाने वाली स्तुति:---- पंजाबी लिपि :-

Page 214 of 523

Page 215 of 523

१ਓੰ ਸਤਿਨਾਮੁ
ਕਰਤਾ ਪੁਰਖੁ ਨਿਰਭਉ ਨਿਰਵੈਰੁ ਅਕਾਲ ਮੂਰਤਿ ਅਜੂਨੀ ਸੈਭੰ ਗੁਰਪ੍ਰਸਾਦਿ ।
। ਜਪੁ ।
ਆਦਿ ਸਚੁ ਜੁਗਾਦਿ ਸਚੁ ।
ਹੈ ਭੀ ਸਚੁ ਨਾਨਕ ਹੋਸੀ ਭੀ ਸਚੁ ।

देवनागरी लिपि :-
इक ओंकार सति नामु
करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं
गुर प्रसादि॥
॥जपु॥
आदि सचु जुगादि सचु ॥
है भी सचु नानक होसी भी सचु ॥
इसमें कहा गया है की केवल एक ओंकार स्वरुप ईश्वर (जिसका सकल सृष्टि पर प्रभुत्व है, जिसका सकल जीव चराचर जड़ चेतन पर प्रभाव है) जो ਓੰ, अथवा ॐ चिन्ह है, वही सच्चा नाम है, वही कर्ता, कारक, परम पुरुष है जो भावनाओं से परे है, जिसका किसी से कोई वैर नहीं, वह अकाल है अर्थात भूतकाल, वर्तमान काल, और भविष्य काल तीनों कालों से परे है का स्वरूप है, जो किसी योनि में नहीं पड़ता हर योनि से परे है और वह गुरु की कृपा से ही जाना जा सकता है, उसी का जप करना चाहिए वही आदि युगादी काल से सच है,

Page 215 of 523

और यही सच है , आगे भी यही सच होगा। गुरु देव नानक जी कहते हैं की ऐसा ही मेरा मत मेरा विचार है ।
- सतमीत कौर

मूल मंत्र ---
श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी की बाणी की आरंभता मूल मंत्र से होती है। ये मूल मंत्र हमें उस परमात्मा की परिभाषा बताता है जिसकी सब अलग - अलग रूप में पूजा करते हैं।
एक ओंकार
अर्थ : अकाल पुरख (परमात्मा) एक है। उसके जैसा कोई और नहीं है । वो सब में रस व्यापक है। हर जगह मौजूद है ।
सतनाम : अकाल पुरख का नाम सबसे सच्चा है। ये नाम सदा अटल है , हमेशा रहने वाला है।
करता पुरख : वो सब कुछ बनाने वाला है और वो ही सब कुछ करता है । वो सब कुछ बनाके उसमें रस -बस गया है ।
निरभऊ : अकाल पुरख को किससे कोई डर नहीं है।
निरवैर : अकाल पुरख का किसी से कोई बैर (दुश्मनी) नहीं है।

अकाल मूरत : प्रभु की शक्ल काल रहित है। उन पर समय का प्रभाव नहीं पड़ता। बचपन , जवानी ,

[illegible]

[illegible] : [illegible]

[illegible] : [illegible]

[illegible] : [illegible]

[illegible]					
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	8344	[illegible]	2533	[illegible]	1371
[illegible]	491	[illegible]	475	[illegible]	324
[illegible]	228	[illegible]	216	[illegible]	151
[illegible]	139	[illegible]	97	[illegible]	89

[illegible]					
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]					
[illegible]	61	[illegible]	60	[illegible]	59
[illegible]	54	[illegible]	46	[illegible]	30
[illegible]	29	[illegible]	22	[illegible]	13

[illegible]

[illegible]

Page 222 of 523

ਮੁਹੌ ਕਿ ਬੋਲਣੁ ਬੋਲੀਐ ਜਿਤੁ ਸੁਣਿ ਧਰੇ ਪਿਆਰੁ ।
ਅੰਮਰਿਤ ਵੇਲਾ ਸਚੁ ਨਾਉ ਵਡਿਆਈ ਵਿਚਾਰੁ ।
ਨਾਨਕ ਏਵੈ ਜਾਣੀਐ ਸਭੁ ਆਪੇ ਸਚਿਆਰੁ ।। 4 ।।

हिंदी भाष्य- II मारू महला 5 II
अचुत पारब्रहम परमेसुर अंतरजामी I मधुसूदन दामोदर सुआमी I रिखीकेस गोवरधन धारी मुरली मनोहर हरि रंगा II1II
मोहन माधव क्रिस्न मुरारे I जगदीसुर हरि जीउ असुर संघारे I जगजीवन अबिनासी ठाकुर घट घट वासी है संगा II २ II
धरणीधर ईस नरसिंघ नाराइण । दाड़ा अग्रे पृथमि धराइण । बावन रूपु कीआ तुधु करते सभ ही सेती
है चंगा ।।3।।
स्री रामचंद जिसु रूपु न रेखिआ ।बनवाली
चक्रपाणि दरसि अनूपिआ ।सहस नैत्र मूरति है
सहसा ढिकु दाता सभ है मंगा।।4।।
भगति बछलु अनाथह नाथे । गोपी नाथु सगल है
साथे ।
वासुदेव निरंजन दाते बरनि न साकउ गुण अंगा
।। 5 ।।
मुकुंद मनोहर लखमी नाराईण । द्रोपती लजा
निवारि उधारण । कमलाकंत करहि कंतुहल अनद
बिनोदी निहसंगा ।। 6 ।।

Page 222 of 523

Page 223 of 523

अमोघ दरसन आजूनी संभउ । अकाल मूरति जिसु कदे नाही खउ । अबिनासी अबिगत अगोचर सभु किछु तुझ
ही है लगा । । 7 ।।
स्रीरंग बैकुंठ के वासी । मछु कछु कूरमु
आगिआ अउतरासी । केसव चलत करत निराले कीता
लोड़हि सो होइगा ।। 8 ।।
निराहारी निरवैरु समाईआ । धारि खेलु
चतुरभुजु कहाईआ । सावल सुंदर रूप बणावहि
बेणु सुनत सभ मोहैगा ।। 9 ।।
बनमाला बिभूखन कमल नैन । सुंदर कुंडल मुकट
बैन । संख चक्र गदा है धारी महा सारथी
सतसंगा ।। 10 ।।
पीत पीतंबर तृभवण धणी । जगन्नाथुगोपालु
मुखि भणी । सारिंगधर भगवान बीठुला मै गणत न
आवै सरबंगा ।। 11 ।।
निहकंटकु निहकेवलु कहीअ । धन्नजै जलि थलि है
महीअै ।
मिरत लोक पईआल समीपत असथिर थानु जिसु है
अभगा ।। 12।।
पतित पावन दुख भै भंजनु I अहंकार निवारणु है
भव खंडनु I भागती तोखित दीन कृपाला गुणे न
कित ही है भिगा ।। 13 ।।
निरंकारु अछल अडोलो । जोति सरुपी सभु जगु
मउलो । सो मिलै जिसु आपि मिलाए आपहु
कोई न पावैगा ।। 14 ।।

Page 223 of 523

Page 224 of 523

आपै गोपी आपै काना । आपै गऊ चरावै बाना । आपि उपावहि आपि खपावहि । तुधु लेपु नही ईकु
तिलु रंगा।।15।।
एक जीह गुण कवन बखानै । सहस फनी सेख अंतु न
जानै । नवतन नाम जपै दिनु राती । ईकु गुणु
नाही प्रभ कहि संगा ।।16।।
ओट गही जगत पित सरणाईआ । भै भईआनक जमदूत दुतर
है माईआ ।
होहु कृपाल ईछा करि राखहु साध संतन कै संगि
संगा ।।17।।
दृसटिमान है सगल मिथेना । ईकु मागउ दानु
गोबिद संत रेना ।
मसतकि लाई परम पदु पावउ जिसु प्रापति सो
पावैगा ।। 18 ।।
जिन कउ कृपा करी सुखदाते । तिन साधू चरण लै
रिदै पराते ।
सगल नाम निधानु तिन पाईआ अनहद सबद मनि
वाजंगा ।।19 ।।
किरतम नाम कथे तेरे जिहबा । सति नामु तेरा
परा पूरबला ।
कहु नानक भगत पए सरणाई ।देहु दरसु मनि रंगु
लगा ।। 20 ।।
तेरी गति मिति तूहै जाणहि । तू आपे कथहि तै आपि बखाणहि ।

Page 224 of 523

Page 225 of 523

नानक दासु दासन को करीअहु । हरि भावै दासा राखु संगा ।।21।।

(गउड़ी बावन अखरी, पन्ना 261)
हे अचुत हे पारब्रहम अबिनासी अधनास I
हे पूरन हे सरब मै दुख भंजन गुणतास I
हे संगी हे निरंकार हे निरगुण सभ टेक I
हे गोबिंद हे गुण निधान जा कै सदा बिबेक I हे अपरंपार हरि हरे हहि भी होवनहार I
हे संतह कै सदा संगि निधारा आधार I
हे ठाकुर हउ दासरो मै निरगुन गुनु नही कोइ I नानक दीजै नाम दानु राखउ हीए परोइ II 55 II

(गउड़ी माझ महला 5) हारि राम राम राम रामा I जपि पूरन होए कामा II 1 II रहाउ II
राम गोबिंद जपेदिआ होआ मुखु पवित्रु I
हरि जसु सुणीए जिस ते सोई भाई मित्रु II 1 II सभि पदारथ सभि फला सरब गुणा जिसु माहि I जिसु जिसु सिमरत दुख जाहि II 2 II
जिसु लड़ि लगिऐ जीवीऐ भवजलु पईऐ पारि I
मिलि साधू संगि उधारु होइ मुख ऊजल दरबारि II 3 II
Page 225 of 523

[illegible] I
[illegible] II 4 II 3 II171 II

([illegible], [illegible] 268)

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] 8 [illegible] 4 [illegible]

This is the second post on 8th Pauree of Japuji Sahib, a unique and important part of Guru Granth Sahib.

[illegible]

Here this line indicates that not only living beings but even the heavenly bodies, nether regions maintain their stability with the help

of Holy Word (Ram Naam). We may wonder that how these regions are stable by listening to the Holy Word. Thus we have to first know the real meaning of '[illegible]' (Listening).

[illegible]

We have already listened to the glory of Holy Word (Ram-Naam). The first important aspect of Holy Word is that by listening to the Word, much latent spiritual energy get awakened in the devotee and he gets free from all worries and effect of sinful karmas. He attains the state of best perfective seeker. He becomes aware of the mysteries of body and cosmos. He easily attains highest spiritual state (Sahaj-Avastha) by listening to the Holy Word and crosses the mighty ocean of this illusion.

हम पहली पोस्ट में राम -नाम की महिमा सुन चुके हैं । इस महिमा का पहला महत्वपूर्ण - पहलू यह है कि राम -नाम सुनने से अनेक पत्मार्थी गुण प्राप्त होते हैं और जीव सब दुःख और पापों से मुक्त हो जाते हैं । उसको श्रेष्ठ साधक की अवस्था प्राप्त हो जाती है । उसको सृष्टि और शरीर के गुप्त रहस्यों का ज्ञान हो जाता है । राम -नाम सुनने वाले साधक को सहज -समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाती है और वह भवसागर से पार हो जाता है ।

नाइ सुणिऐ मनु रहसीऐ नामे सांति आई ॥

नाइ सुणिऐ मनु त्रिपतीऐ सभ दुख गवाई ॥

नाइ सुणिऐ नाउ ऊपजै नामे वडिआई ॥

नामे ही सभ जाति पति नामे गति पाई ॥

गुरमुखि नामु धिआईऐ नानक लिव लाई ॥६॥ (SGGS 1240)

Hearing the Name, the mind is delighted. The Name brings peace and tranquility. Hearing the Name, the mind is satisfied, and all pains are taken away. Hearing the Name, one becomes famous; the Name brings glorious greatness. The Name brings all honor and status; through the Name, salvation is

obtained. The Gurmukh meditates on the Name; Nanak is lovingly attuned to the Name. ||6||

Hearing the Name, all supernatural spiritual powers are obtained, and wealth follows along. Hearing the Name, the nine treasures are received, and the mind's desires are obtained. Hearing the Name, contentment comes, and Maya meditates at one's feet. Hearing the Name, intuitive peace and poise

wells up. Through the Guru's Teachings, the Name is obtained; O Nanak, sing His Glorious Praises. ||7||

नाम सुनने से सारी ऋद्धियाँ -सिद्धियां उसकी गुलाम बन जाती है । नाम सुनने से नौ निधि प्राप्त हो जाती हैं और मन ठहर जाता है । मन में सन्तोष आता है और चरण -कँवल में प्रीत बढ़ती हैं । नाम सुनने से सहज अवस्था प्राप्त होती है और सहज सुख प्राप्त होता है । राम -नाम की अमूल्य दौलत गुरुमुख की कृपा से प्राप्त होती है ।

नाइ सुणिऐ सुचि संजमो जमु नेड़ि न आवै ॥

नाइ सुणिऐ घटि चानणा आन्हेरु गवावै ॥

नाइ सुणिऐ आपु बुझीऐ लाहा नाउ पावै ॥

नाइ सुणिऐ पाप कटीअहि निरमल सचु पावै ॥

नानक नाइ सुणिऐ मुख उजले नाउ गुरमुखि धिआवै ॥८॥

Hearing the Name, one is blessed with purity and self-control, and the Messenger of Death will not draw near. Hearing the Name, the heart is illumined, and darkness is dispelled. Hearing the Name, one comes to understand

his own self, and the profit of the Name is obtained. Hearing the Name, sins are eradicated, and one meets the Immaculate True Lord. O Nanak, hearing the Name, one's face becomes radiant. As Gurmukh,

meditate on the Name. ||8||

[illegible]

Bhai Veer Singh has written a very good commentary on Guru Granth Sahib, ‘Sandhya Guru Granth Sahib’. He says that first Holy Word is listened first and then it appears inside which finally culminates in attainment of super conscious stage (Sahaj Avastha). One has to meditate as per the instruction of the perfect master. The relation

of Holy Word is not with hearing sound from physical ears but to merge oneself with Holy Word reverberating outside. When one listens to Holy Word inside, then illumination of divine light spurts from the Holy Word.

[illegible]

From this, it is clear that ‘listening to Holy Word’ means hearing the sound and seeing the light inside through meditation and not listening or seeing through physical ears and eyes.

इससे पता चला कि 'सुणिये ' की पौडियों में नाम सुनने और प्रकाश देखने की जो महिमा की गयी है , उसका सम्बन्ध बाहरी कानों और आँखों से नहीं , बल्कि लिव , ध्यान द्व - रा नाम सुनने से अन्दर राम -नाम का प्रकाश प्रकट होता है । गुरु नानक साहिब की वाणी है - :

सतिगुरु भेटै ता सहसा तूटै धावतु वरजि रहाईऐ ॥

निझरु झरै सहज धुनि लागै घर ही परचा पाईऐ ॥

अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ ॥ ३॥

नानक जीवतिआ मरि रहीऐ ऐसा जोगु कमाईऐ ॥ (SGGS 730)

Meeting with the True Guru, doubt is dispelled, and the wandering mind is restrained. Nectar rains down, celestial music resounds, and deep within, wisdom is obtained. Remaining unblemished in the midst of the filth of the world - this is the way to attain Yoga. O Nanak, remain dead while yet alive - practice such a Yoga.

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] (SGGS 540)

The earth, the nether regions of the underworld, and the Akaashic ethers, O my soul, all meditate on the Name of the Lord, Har, Har. Wind, water and fire, O my soul, continually sing the Praises of the Lord, Har, Har, Har. The woods, the meadows and the whole world, O my soul, chant with their mouths the Lord's Name, and meditate on the Lord. O Nanak, one who, as Gurmukh, focuses his consciousness on the Lord's devotional worship - O my soul, he is robed in honor in the Court of the Lord. ||4||4||

[illegible]

अपने मुख से उचार रहे हैं । ओ मेरी आत्मा , जो गुरुमुख अपना ध्यान राम -नाम में लगाता है उसकी हरि के दरगाह में मान होता है। हम हैरान होते हैं कि पवन , अग्नि , पानी , धरती , आकाश, पाताल

आदि कैसे राम -नाम जप रहे हैं ? इसका रहस्य गुरु अर्जुन देव साहिब खोलते हैं :---

नाम के धारे सगले जंत ॥

नाम के धारे खंड ब्रहमंड ॥

नाम के धारे सिम्रिति बेद पुरान ॥

नाम के धारे सुनन गिआन धिआन ॥

नाम के धारे आगास पाताल ॥

नाम के धारे सगल आकार ॥

नाम के धारे पुरीआ सभ भवन ॥

नाम कै संगि उधरे सुनि स्रवन ॥ (SGGS 284)

The Naam is the Support of all creatures. The Naam is the Support of the earth and solar systems. The Naam is the Support of the Simritees, the Vedas and the Puraanas. The Naam is the Support by which we hear of spiritual wisdom and meditation. The Naam

is the Support of the Akaashic ethers and the nether regions. The Naam is the Support of all bodies. The Naam is the Support of all worlds and realms. Associating with the Naam, listening to it with the ears, one is saved.

[illegible]

[illegible]

[illegible] (SGGS 1429)

Upon this Plate, three things have been placed: Truth, Contentment and Contemplation. The Ambrosial Nectar of the

Naam, the Name of our Lord and Master, has been placed upon it as well; it is the Support of all.

इस सृष्टि के थाल में परमेश्वर ने तीन चीज़ें कायम की हैं - सत, संतोष और ध्यान। यह थाल राम -नाम के आधार पर ही खडा है और राम -नाम के दिव्य अमृत भी इस में विद्धमान ह - । 'जिस का सभसु अधारो ॥ ' सजीव जगत और निर्जीव जगत भी नाम द्वारा बना है और राम -नाम द्वारा सृजित सारी सृष्टि नाम के सहारे क़ायम है। इस सम्बन्ध में गुरु नानक साहिब की वाणी का नीचे लिखा प्रसंग विशेष ध्यान योग्य है :

घर महि घरु देखाइ देइ सो सतिगुरु पुरखु सुजाणु ॥

पंच सबद धुनिकार धुनि तह बाजै सबदु नीसाणु ॥

दीप लोअ पाताल तह खंड मंडल हैरानु ॥

तार घोर बाजिंत्र तह साचि तखति सुलतानु ॥

सुखमन कै घरि रागु सुनि सुंनि मंडलि लिव लाइ ॥ (SGGS 1291)

The True Guru is the All-knowing Primal Being; He shows us our true home within the home of the self. The Panch Shabad, the Five

Primal Sounds, resonate and resound within; the insignia of the Shabad is revealed there, vibrating gloriously. Worlds and realms, nether regions, solar systems and galaxies are wondrously revealed. The strings and the harps vibrate and resound; the true throne of the Lord is there. Listen to the music of the home of the heart - Sukhmani, peace of mind. Lovingly tune in to His state of celestial ecstasy. [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

आपे कारणु कीआ अपर्मपरि सभु तेरो कीआ कमाइदा ॥१०॥ (SGGS 1038)

The Saam Veda, the Rig Veda, the Yajur Veda and the Atharva Veda form the mouth of Brahma; they speak of the three gunas, the three qualities of Maya. None of them can describe His worth. We speak as He inspires us to speak. From the Primal Void, He created the seven nether regions. From the Primal Void, He established this world to lovingly dwell upon Him. The Infinite Lord Himself created the creation. Everyone acts as You make them act, Lord.

सामवेद ,- श्रग्वेद , यजुर्वेद और अथर्वेद ब्रह्मा के मुख से सृजित हुए हैं और तीन गुणों का बखान करते हैं और माया की तीन पृक्रति का वर्णन करते है पर उस परमात्मा का बखान करते हुए 'नेति -नेति ' करते हैं। कोई भी उसका बखान करने में असमर्थ हैं। वही उसके गुण गा सकता है जिसके द्वारा वह बुलवाना चाहता है। सुन्न मण्डल से उसने सात पाताल की रचना की। सारे खण्ड -ब्रहाण्ड , सुन्न -मण्ड - से आ रही शब्द की शक्तिशाली धुन के साथ लिव लगाए हुए हैं। सारी सृष्टि उस अनन्त परमात्मा ने सृजित किया हैं और सब उसके हुक्म पर ही कार्य कर रहे हैं। गुरु नानक

[illegible] :---

[illegible]

[illegible] ॥1॥

[illegible]

[illegible] ॥1॥ (SGGS 663)

In the bowl of the sky, the sun and moon are the lamps; the stars in the constellations are the pearls. The fragrance of sandalwood is the incense, the wind is the fan, and all the vegetation are flowers in offering to You, O Luminous Lord. What a beautiful lamp-lit worship service this is! O Destroyer of fear, this is Your Aartee, Your worship service. The sound current of the Shabad is the sounding of the temple drums.

[illegible]

[illegible]

This is the third post on 9th Pauree of Japuji Sahib, a valuable part of Guru Granth Sahib. One may wonder that why we are laying so much stress on Japuji Sahib? Well, Japuji Sahib is compendium of treasure of valuable knowledge rendered by Almighty Lord in human form in this Iron Age of Kaliyuga. Japuji tries to transform a human being into an ideal and most perfect person on earth. It enhances the perspective and helps in developing right attitude of man. Generally, human being tends to think in terms of physical, mental, scientific and creative development. He is lost in the quest for pleasures and happiness obtained out of sensual and mental desires. Japuji tries to guide him to the spiritual development and shows the way of complete knowledge and ultimate eternal pleasure. It does not oppose

the physical, intellectual and scientific development but also creates the desire and whets appetite for eternal knowledge and pleasure on account of spiritual development.

यह जपुजी साहिब की 9 वीं पौड़ी पर तीसरी पोस्ट है जो गुरु ग्रन्थ साहिब का अहम् हिस्सा है । हम में से कुछ सोच सकते हैं कि हम जपुजी साहिब को इतनी अहमियत क्यों दे रहे हैं ? 'जपुजी ' भारतवासियो - ं के लिए परमात्मा का एक नायाब तोहफा है जो मनुष्य को पूर्ण मनुष्य बनाता है । आम तौर पर मनुष्य केवल भौतिक , मानसिक , वैज्ञानिक और कलात्मक विकास के बारे में सोचता है । वह केवल इन्द्रियों - और मानसिक भोगों से प्राप्त होने वाले सुखों की लालसा में खोया रहता है । 'जपुजी ' उसको आत्मिक विकास और उससे प्राप्त होने वाले पूर्ण ज्ञान और परम आनन्द का रास्ता दिखाता है । यह भौतिक , मानसिक या वैज्ञानिक विकास का विरोध किये बिना आत्मिक विकास द्वारा प्राप्त होनेवाले ज्ञान और सुख की आवश्यकता महसूस करवाता है ।

Japuji does not present any fictitious principle. It is complete spiritual document based on personal experience of perfect master which shows the perfect way of living

which can bring eternal happiness in eternal and material world.

Japuji develops the feeling of devotion filled with Love in the heart of a devotee. This feeling of humility and devotion encourages the devotee to transform his life style in such a way that ultimate objective of self-realization and God-realization can be achieved.

'जपुजी ' किसी काल्पनिक सिद्धान्त को पेश नहीं करता है और न ही कोई किस्से -कहानियों को सुनाता है । यह एक पूर्ण पुरुष के निजी अनुभव पर आधारित ऐसा पूर्ण दर्शन और ऐसी पूर्ण जीवन -युक्त - प्रस्तुत करता है , जो व्यक्ति के लोक-परलोक दोनों को सुखी बनने का विश्वास दिलाती है ।

'जपुजी ' पाठक के मन में इसके कर्ता के प्रति प्रेम -भरी श्रद्धा का भाव उत्पन्न करता है और यह श्रद्धा पाठक को अपना जीवन गुरु नानक साहिब द्वारा 'जपुजी ' में दिए गए उपदेश के अनुसार ढालने की प्रेरणा देती है ताकि वह संसार में आने का अपना दिव्य उद्धेश्य की पूर्ति कर सके ।

[illegible]

In Hinduism, lot of emphasis is laid on ancient scriptures written by seers namely four Vedas, six schools of philosophies, twenty seven Smritis (codified law books on dharma), eighteen Purans. Many erudite scholars and priestly classes are engaged in studying, commenting, critically analyzing these scriptures. But if liberation of soul is based on bookish knowledge then where will illiterate will go ? God cannot be unjust. In olden day due to ignorance s, persons from many classes considered backward were restrained from reading scriptures. Guru Arjun says in this respect:

[illegible]

अज्ञानता के कारण कुछ जातियों के लोगों को नीच मानकर , उनको ग्रन्थ -शास्त्र पढने से वंचित रखा जाता था । गुरु अर्जुन साहिब इस विषय में कहते हैं :--

जो प्राणी गोविंदु धिआवै ॥

पड़िआ अणपड़िआ परम गति पावै ॥ 1 ॥

साधू संगि सिमरि गोपाल ॥

बिनु नावै झूठा धनु मालु ॥ 1 ॥ रहाउ ॥

That mortal who meditates on the Lord of the Universe, whether educated or uneducated, obtains the state of supreme dignity. In the Saadh Sangat, the Company of the Holy, meditate on the Lord of the World. Without the Name, wealth and property are false.

गुरु साहिब कहते हैं कि यह चिन्ता न करो कि तुम धर्म --ग्रंथों का पाठ -पठन नहीं कर सकते । राम -नाम के साथ लिव जोड़ने पर तुम्हें संसार के सब धर्म -ग्रंथों का ज्ञान स्वत : ही हो जाएगा । साध -संगत में राम -नाम का सिमरन करो , बिना राम -नाम के दुनिया की सारी दौलत और नियामत झूठ हैं । आप फिर इशारा करते हैं :--

हरि सिमरनु करि भगत प्रगटाए ॥ हरि सिमरनि लगि बेद उपाए ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] (SGGS 263)

Remembering the Lord, His devotees are famous and radiant. Remembering the Lord, the Vedas were composed. Remembering the Lord, we become Siddhas, celibates and givers. Remembering the Lord, the lowly become known in all four directions. For the remembrance of the Lord, the whole world was established. Remember, remember in meditation the Lord, the Creator, the Cause of causes. For the remembrance of the Lord, He created the whole creation. In the remembrance of the Lord, He Himself is Formless. By His Grace, He Himself bestows

understanding. O Nanak, the Gurmukh attains the remembrance of the Lord. ||8||1||

हरि सुमिरन से ही उसके भक्त बनते हैं और दुनिया में मान पाते हैं। हरि सुमिरन के प्रभाव से ही वेद लिखे गए । हरि सुमिरन के प्रभाव से से सिद्ध , जती और दानी बनते हैं । हरि सुमिरन से अधम से अधम इनसान भी चारों दिशायों में प्रसिद्धि के पात्र बन जाते हैं । हरिनाम के सुमिरन से ही पूरी सृष्टि बनी है । हर समय उस हरि का सुमिरन करो जो हर कारणों के पीछे का कारण है । वह खुद आदि निरंकार है और सब आकारों से परे है । वह अपनी असीम दया से अपनी समझ बख्शता है । गुरुमुख हरि सुमिरन से ही हरि को पाता है । वह एक जगह और कहते हैं :----

बेद पुरान सिम्रिति सुधाख्यर ॥ कीने राम नाम इक आख्यर ॥

किनका एक जिसु जीअ बसावै ॥ ता की महिमा गनी न आवै ॥

कांखी एकै दरस तुहारो ॥ नानक उन संगि मोहि उधारो ॥१॥ (SGGS 262)

The Vedas, the Puraanas and the Simritees, the purest of utterances, were created from the One Word of the Name of the Lord. That

one, in whose soul the One Lord dwells - the praises of his glory cannot be recounted. Those who yearn only for the blessing of Your Darshan - Nanak: save me along with them! || 1||

वेद , पुराण , स्मृतियाँ और सन्तों के मुखरित विचार , सब राम -नाम से ही निकले हैं । जिस आत्मा में वह राम -नाम जागृत हो गया है उसकी महिमा बखान नहीं की जा सकती । जो सिर्फ और सिर्फ मालिक के दर्शन के लिए जीते हैं , मुझे भी उनका संग देकर बचा लो। संसार के सब धर्म -ग्रंथों का उदय राम -नाम के सुमिरन से ही हुआ है। राम -नाम के साथ लिव जोड़ने से न सिर्फ तुम्हारे अन्दर सब धर्म -ग्रंथों का ज्ञान हो जाएगा , बल्कि तुम स्वयं ग्रन्थ -शास- त्र लिखने के काबिल हो जाओगे ।

नानक भगता सदा विगासु ॥ सुणिये दुःख पाप का नाश ॥

दुःख का जड़ पाप है । वर्तमान अवस्था में पिछले कई जन्मों के पापों के कारण अनेक किस्म के सांसारिक , मानसिक और आध्यात्मिक -दुखों के शिकार हैं । सब दुखों की जड़ , आत्मा

[illegible]:-----

[illegible]

(SGGS 1239)

The Naam, the Name of the Lord, is immaculate and pure; hearing it, peace is obtained. Listening and hearing, It is enshrined in the mind; how rare is that humble being who realizes it. Sitting down and standing up, I shall never forget Him, the Truest of the true. His devotees have the Support of His Name; in His Name, they find peace. O Nanak, He permeates and pervades mind and body; He is the Lord, the Guru's Word. ||5||

The root cause of sorrow is sin. We are plagued by sorrows of various types – physical, mental and spiritual because of sins committed in previous lives. The root cause of all grief is separation of soul from the Lord because of that separation soul is suffering by taking bodies in 840,000 species. Guru Sahib explains that by hearing the Holy Word, malefic thinking gets purified, dirt of sins on the soul is washed the Lord Himself. By contemplating on Holy Word all impurities caused by effect of sins gat washed away and real bliss, pleasure, happiness and peace is obtained. Guru Amardas ji says:

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] (SGGS 1240)

Hearing the Name, the mind is delighted. The Name brings peace and tranquility. Hearing the Name, the mind is satisfied, and

all pains are taken away. Hearing the Name, one becomes famous; the Name brings glorious greatness. The Name brings all honor and status; through the Name, salvation is obtained. The Gurmukh meditates on the Name; Nanak is lovingly attuned to the Name. ||6||

[illegible]

The root cause of sorrow is karma and root cause of karma is desire. Holy Name erases all desires and erases all impurities generated by karmas and also sorrows generated by them permanently. Guru Arjun Sahib says:

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] (SGGS 262)

Sukhmani: Peace of Mind, the Nectar of the Name of God. The minds of the devotees abide in a joyful peace. Remembering God, one does not have to enter into the womb again. Remembering God, the pain of death is dispelled. Remembering God, death is eliminated. Remembering God, one's enemies are repelled. Remembering God, no obstacles are met. Remembering God, one remains awake and aware, night and day. Remembering God, one is not touched by fear. Remembering God, one does not suffer sorrow. The meditative remembrance of God is in the Company of the Holy. All treasures, O Nanak, are in the Love of the Lord. ||2||

The Holy Name of the Lord is true and infinite storehouse of real pleasure and happiness. The real devotee of Lord themselves become a source of pleasure, peace and happiness by drinking the divine nectar of Holy Name.

परम आनन्द और सुखों का कारण परमात्मा के दिव्य नाम का अमृत या सुखमनी है जो हमेशा भक्त -जनों के दिल मैं हमेशा रहता है। प्रभु के सुमिरन से जन्म -मरण का चक्कर ख़त्म हो जाता और जीव परमात्मा के अविचल धाम में रहने का अधिकारी बन जाता है। प्रभु के सुमिरन से मौत का डर ख़त्म हो जाता है और शत्रु पीछे हट जाते हैं। जीवन के सब विघ्न हट जाते हैं। सुमिरन से मनुष्य हमेशा जाग्रत और पूर्ण होशो -हवास में रहता है। भक्त निर्भय हो जाता है। उसे दुःख कभी नहीं सताता है। संसार के सारे खजाने राम -नाम के सुमिरन में ही हैं।

दुःख की जड़ कर्म है और कर्म की जड़ तृष्णा है। राम -नाम तृष्णा और कर्मों -संस - कारों की सब मलिनताएँ और उनसे पैदा होने वाले सब दुखों को सदा के लिए समाप्त कर देता है। परमात्मा का नामसच्चे आनन्द का अथाह भण्डार है। परमात्मा के सच्चे भक्त अपने अन्तर से

राम -नाम रूपी अमृत पाकर आनन्द -रूप बन जाते हैं ।

पारसियों की प्रार्थना :------

यानीम मनो यानीम वचो यानीम षयओथनेम अपओनो जरयुश्त्रहे I फ्रा अमेषा स्पेन्ता गाथाओ गेयुरवाइन I नेमो वे गाथाओ अषओनीश I

अहया यासा नेमङ्हा उस्तान -----ज़स्तो रफेध्रह्या मइनयेंयुश मज़्दाओ पउरबीम स्पेंतह्या अषा विस्पेंग षयओथना I

वङ्हेउश ख्रतूम मनङ्हो या षनेवीशा गेयूश्चा उर्वानेम I या षयओथनाम हाइतिम यज़्मइदे I

अहुनवइतिम गाथाम अषोनिम अषहे रतुम यज़्मइदे I अहुनवइतियाओ गाथियाओ हन्दाता यज़्मइदे I येंगहे हाताम आअत्येस्ने षइतिवेंगहो मज़्दाओ I अहूरो वइथा अपत हचा याओंगहामचा I

तास चा ताओसचा यज़्मइदे I

नमस्चा यआर्मेतीश जाय चा I

नमस्चा यआर्मेतीश जाय चा I

नमस्चा यआर्मेतीश जाय चा I

Page 256 of 523

अशेम वोहु वहेश्तम् अस्ति, उस्ता अस्ति, उस्ता अह्माइ ह्यदपाइ
बहेश्ताइ अषेम I (कल्याण ईश्वराङक)

अर्थ:--- पुण्यात्मा जरथुश्त्र के कर्म धन्य थे, वचन धन्य थे और विचार धन्य थे I पवित्र (स्वर्गीय) आत्माओं ने धर्म-ग्रन्थों का प्रकाश किया I हे दिव्य धर्म-ग्रन्थ I तुम्हारा हम स्तवन करते हैं I

हे मज़्द I तुम्हारी अर्चना करते हुये हम तुम्हारी कृपा प्राप्ति की अभिलाषा करते हैं और तुम्हारी ओर हाथ बढाये तुम्हारे दानशील आत्मा के प्रसाद के लिये प्रार्थना करते हैं I हम अत्यन्त नम्रतापूर्वक विनती करते हैं कि सबके प्रति हमारे कर्म सत्य भावना से सम्पादित हों और तुम्हारी उदार चित्तता के समझने के लिये हम तुम से करबद्ध प्रार्थना करते हैं जिससे हम गौ की आत्मा के प्रति श्रद्धा दिखला सकें I

हम पवित्र अहुनावद-गाथा को श्रद्धा पूर्वक स्मरण करते हैं जो परम पावन है I अहुनावद-गाथा की प्रार्थना का हम श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं I

Page 256 of 523

यषओथनेम नामक हा की हम उपासना करते हैं I

पवित्रता के अधिष्ठातृ देवता दिव्य अहुनावद -गाथा की हम उपासना करते हैं I अहुनावद -गाथा की प्रार्थना की हम अर्चना करते हैं I हम उन नर -नारियों का स्तवन करते हैं जिन्हें अहुरमज़्द (ईश्वर) ने पवित्रता के द्वारा उपासना में श्रेष्ठ माना है I पवित्रता सर्वोत्तम वस्तु है I आनन्द उसको होता है जो पवित्रता के उद्देश्य से

ही पवित्र रहता है I (कल्याण ईश्वराङ्क)

ईसाइयों की प्रार्थना **:-----**

Almighty God ! unto whom all hearts be open, all desires known, and from whom no secrets are hid; cleanse the thoughts of our hearts by theinspiration of Thy Holy Spirit, that we may perfectly love Thee, and worthily magnify Thy Holy Name. Through Christ our Lord. Amen.

Page 258 of 523

अर्थ:------ सर्वशक्तिमान् प्रभु जो सबके हृदय को देखते हैं, सबकी अभिलाषाओं को जानते हैं और जिनसे कोई भी भेद छिपा नहीं है, अपने दिव्य आत्मा की प्रेरणा से हमारे हृदय विचारों को शुद्ध करें, जिससे हम प्रभु से पूर्णत: प्रेम करें तथा प्रभु के नाम की महिमा यथार्थत: बढ़ावें I अपने प्रभु यीशुमसीह के द्वारा I आमीन I अर्थात ऐसा ही हो I एवमस्तु I

O Lord Christ! we Thy faithful soldiers dedicate this new-born day to Thee, praying that it may shine in Thy service as a pure pearl in the chaplet of our life, O Thou Grat King of Love, to whom be praise and adoration for evermore. Amen.

अर्थ:---- हे प्रभु यीशू(ईश) I हम तुम्हारे भक्त-सैनिक इस नवजात दिवस को तुम्हें समर्पित करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि यह हमारे जीवन रूपी माला में शुद्ध मुक्ता के समान तुम्हारी सेवा में प्रकाशित होवे I हे प्रेम के अधिराजा, तुम्हारा स्तवन और

Page 258 of 523

[illegible]

Teach us, O Lord ! to see Thy life in all men and in all the peoples of Thine earth,and guide our Nation through its leaders to preserve Thy peace, that the menace of war be far from our days. Through Christ our Lord. Amen.

[illegible]

[illegible]

To the most Holy and Adorable Trinity, Father, Son and Holy Spirit, Three Persons in one God; to Christ our Lord, the only Wise Counseller, the Prince of

Peace; to the Seven Mighty Spirits before the Throne; and to the glorious Assembly of just men made perfect, the Watchers, the Saints, the Holy Ones, be praise unceasing from every living creature; and honour, might and glory, henceforth and for evermore. Amen.

अर्थ **:-----** पवित्रतम और पूज्य Trinity का----- पिता , पुत्र और आत्मा का जो एक ही ईश्वर के तीन रूप हैं , शान्ति के राजकुमार , ज्ञानी , उपदेष्टा प्रभु यीशू का , प्रभु के सिंहासन के समीप सात शक्तिमान् आत्माओं का , रक्षकों , संतों , और महात्माओं का सदा -सर्वदा प्रत्येक प्राणी के द्वारा स्तवन हो तथा अद्यावधि और सदा -सर्वदा उसकी शक्ति और ऐश्वर्य की अभ्यर्थना हो (प्रशंसा) I आमीन I अर्थात ऐसा ही हो I एवमस्तु I

- **<u>Trinity, Father, Son and Holy Spirit, Three Persons in one God;</u>**

- ❖ [illegible] (ॐ [illegible]) [illegible] ([illegible], [illegible], [illegible]) [illegible] I

- ❖ **<u>Seven Mighty Spirits before the Throne; and to the glorious Assembly of just men made perfect, the Watchers, the Saints, the Holy Ones,</u>**

- ❖ [illegible] ([illegible]:, [illegible]:, [illegible]:, [illegible]:, [illegible]: [illegible]: [illegible]:) [illegible] ([illegible]. [illegible], [illegible], [illegible]), [illegible]- ([illegible]), [illegible] I

The peace of God, which passeth all understanding, keep your hearts and minds in the knowledge and love of God, and of His Son Christ our Lord; and the blessing of God, Almighty, the Father, the Son, and the Holy Ghost, be almost you, and remain with you always. Amen.

Page 262 of 523

अर्थ:----- ईश्वरीय शान्ति जो अचिन्त्य है, तुम्हारे हृदय और मन को ईश्वर तथा उसके पुत्र हमारे प्रभु यीशू के प्रेम और ज्ञान में रत रक्खे! तथा दिव्य आत्माओं का आशीर्वाद (प्रसाद) तुम पर हो तथा तुम्हारे साथ रहे I आमीन I अर्थात ऐसा ही हो I एवमस्तु I (कल्याण ईश्वराङक)
मुसलमानों की प्रार्थना :----- बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम I अलह्म्दोलिल्लाहे रब्बिल आल्मींन् I अर्रह्मानिर्रहीम I मालिके यौमिद्दीन् I इय्याका ना’ बडो व इय्याका नस्त’ ईन् I इह्देनस् सिरातलमुस्तक़ीम I सिरातल्लज़ीना अन’ अम्त’
अलैहिम गैरिल मग़दूबे अलैहिम वलज्ज़ालीन् I आमीन I
अर्थ:---- दयालु, करुणामय प्रभु के नाम पर अखिल विश्व के प्रभु, भगवान् की अभ्यर्थना हो (प्रशंसा, स्तुति) I वह दयालु, करुणामय, धर्म-दिवस का अधिपति है I वही ज्ञानमय है, वही

Page 262 of 523

Page 263 of 523

शक्तिमान है I उस सत्पथ में हमारा तू मार्ग-प्रदर्शक बन, जो पथ तुझमें रमण करनेवालों का है; उनका नहीं है जो तुझे नहीं मानते तथा अधर्माचरण करते हैं I अर्थात ऐसा ही हो I एवमस्तु! (कल्याण ईश्वराङक) I

अल्लाह के नाम से जो बहुत मेहरबान, रहम करने वाला है I(1)

तमाम तारीफें अल्लाह के लिए हैं जो तमाम जहानों का रब है, (2)

बहुत मेहरबान, रहम करने वाला I(3)

बदले के दिन का मालिक I(4)

हम सिर्फ तेरी ही इबादत करते हैं और सिर्फ तुझ से ही मदद चाहते हैं I (5) हमें सीधे रास्ते की हिदायत दे,(6)

मुसलमान भाई अल्लाहु अकवर बोलते हैं I इसमें ‘वर’ शब्द का अर्थ होता है देने वाला I अकस्मात का अर्थ होता है अचानक I अकस्मात से ‘अक’ लेकर ‘वर’ के साथ मिला दें तो अकवर शब्द अकस्मात (अचानक) देने वाला वाचक शब्द बनता है I इस प्रकार अल्लाहु अकवर का अर्थ निकलता है, “अल्लाह (जो सबसे आला, सबका मालिक, सबसे

Page 263 of 523

Page 264 of 523

ज्यादा ताकतवर है, सबका शासक) ही अचानक देने वाला है”।

हिन्दुओं की प्रार्थना (सनातन धर्म मानने वालों की प्रार्थना):-

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं, यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै I

तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं, मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये II 1 II

अन्वयः------ यो पूर्वं ब्रह्माणं विदधाति, यो वै तस्मै वेदान्श्च प्रहिणोति! अहम् मुमुक्षु तं ह आत्मबुद्धिप्रकाशं देवम् वै शरणं प्रपद्ये I

शब्दार्थः---- यो---जो; पूर्वं-----प्रथम, पहले; ब्रह्माणं ----- ब्रह्मा को; विदधाति----रचते हैं; यो-----जो; वै-----निश्चय ही; तस्मै----उसके लिये; वेदान्-----वेदों को देते हैं अर्थात प्रकाशित करते हैं; अहं----मैं; तं----उस; ह्--- ही; देवता की; आत्म-----अपनी आत्मा; बुद्धि----- ज्ञान; प्रकाशं------प्रकाश को; मुमुक्षु---- मोक्ष का चाहने वाला, कांक्षी, इच्छुक; वै---- निश्चित; शरणं------शरण को; प्रपद्ये-----जाता हूं;

Page 264 of 523

Page 265 of 523

अर्थ:---- जो प्रथम ब्रह्मा की रचना करते हैं, जो निश्चित ही उनके लिये वेदों (ज्ञान) को प्रकाशित करते हैं, मैं मोक्ष का इच्छुक उन्हीं आत्मबुद्धि प्रकाश (आत्मा की बुद्धि के प्रकाश स्वरूप) देवता की

शरण में जाता हूँ I
कल्याण ईश्वराङक में अर्थ------- जो सब
से पूर्व ब्रम्हा को रचते हैं तथा उनके लिये वेदों को प्रकाशित करते हैं, मैं मुमुक्षु हो कर

आत्मबुद्धि से प्रकाशमान उन परम देवता के शरणापन्न होता हूँ!

नमस्ते सते जगत्कारणाय,

नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय I

नमोऽद्वैततत्वाय् मुक्तिप्रदाय,

नमो ब्रम्हणे व्यापिने शाश्वताय II 2 II

अन्वय:-----नमस्ते ते सते जगत् कारणाय, नमस्ते चिते सर्व लोक आश्रयाय I नमो अद्वैत तत्वाय मुक्तिप्रदाय, नमो ब्रम्हणे व्यापिने शाश्वताय I

Page 265 of 523

Page 266 of 523

शब्दार्थः----- नमस्ते-----आप को नमस्कार है; ते---आपको, आपके लिये, तुम्हें; सते---सत्य स्वरुप; जगत्----संसार, सृष्टि; कारणाय------ कारक, कारण के लिये; चिते----चित्त स्वरुप के लिये, चित्त में स्थित, सर्व------समस्त; लोक---- तीनों लोक; आश्रय------आधार, शरणस्थल; नमो--- नमस्कार हो; अद्वैत----अविभाजित, जो दो नहीं हैं; तत्वाय----तत्व के लिये, तत्व को; मुक्ति-----छुटकारा, स्वतन्त्रता, प्रदाय------ देने वाले को; ब्रम्हणे-----ब्रम्ह को, ब्रम्ह के लिये; व्यापिने------व्यापी, व्याप्त, सर्वव्यापी; शाश्वताय-----सदा रहने वाले को; अर्थ:--आप को
नमस्कार है, सत्य स्वरुप, जगत् के कारण स्वरुप आपको नमस्कार है I चित्तमय, चित्तस्वरुप, समस्त लोकों के आश्रय स्थल आप को नमस्कार है I मुक्ति दाता, अद्वैत तत्व आप के लिये नमस्कार है I सदा रहने वाले, सर्व व्यापी ब्रम्ह आपको नमस्कार हैI

कल्याण ईश्वराङक में अर्थ------ हे जगत् के कारण सत् स्वरूप परमात्मा, तुझे नमस्कार हो I हे सर्व लोकों के आश्रय, चित्स्वरूप, तुझे नमस्कार हो I हे मुक्ति प्रदान करने वाले

Page 266 of 523

अद्वैत तत्व , तुझे नमस्कार हो I शास्वत और सर्वव्यापी ब्रम्ह , तुझे नमस्कार हो I

त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं ,

त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम् **I**

त्वमेकं जगत्कर्तृ पातृप्रहर्तृ ,

त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् **II 3 II**

अन्वयः **----** त्वं एकं शरण्यं त्वं एकं वरेण्यं , त्वं एकं जगत् पालकं , स्व प्रकाशम् I त्वं एकं जगत् कर्तृ पातृ प्रहर्तृ , त्वं एकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् I

शब्दार्थः **-----** त्वं ----तुम , आप; एकं —एक; शरण्यं ---शरण; वरेण्यं ----पुजनीय , पूजा के योग्य ; जगत् ----संसार ; पालकं ----पालक; कर्तृ ----कर्ता , रचियता ; पातृ ----रक्षक ; प्रहर्तृ ----संहारक ; निश्चलं ----अचल,अडिग , अपरिवर्त्य ,अपरिवर्तनीय ; निर्विकल्पम् -----निसंदेह , सन्देह रहित ;

अर्थ **:---** एक आप ही शरण हैं (जिसकी शरण में जा सकते हैं) आप ही एक पूजनीय , पूजा के योग्य हैं I एक आपही संसार के पालक , कर्ता , रचियता ;

Page 268 of 523

रक्षक, संहारक, अविचल (निसंदेह), अपरिवर्त्य, अपरिवर्तनीय हैं I

कल्याण ईश्वरांक में अर्थ----- तुम्हीं एक शरण में जाने योग्य अर्थात आश्रयस्थान हो, तुम्हीं एक पूजा करने योग्य हो I तुम्हीं जगत् के पलाक और अपने प्रकाश से प्रकाशित हो I तुम्हीं एक जगत् के कर्ता, पालक और संहारक हो! तुम्हीं एक निश्चल और निर्विकल्प हो I

भयानां भयं भीषणं भीषणानां,

गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम् I

महोच्चै: पदानां नियन्तृ त्वमेकं,

परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम् II 4 II

अन्वयः----त्वं एकं भयानां भयं, भीषणानां भीषणं, प्राणिनां गतिः पावनानां पावनं, नियन्तृ महोच्चैः पदानां, परेषां परं, रक्षणानाम् रक्षणं, I

शब्दार्थः--- त्वं—तुम; एकं---एक ही; भयानां---भयों के, भयं---भय; भीषणानां----- विकरालों में, डरावनों में; भीषणं--- विकराल, डरावना; प्राणिनां---जीव धारियों के लिये; गतिः---स्वर्ग प्राप्ति, प्रवेश, पहुंच;

Page 268 of 523

Page 269 of 523

पावनानां---पवित्रों में; पावनं---पवित्र;, नियन्तृ---नियन्त्रक, नियन्त्रण कर्ता; महोच्चैः----सर्वोच्च; पदानां---पदों के; रक्षणानाम्---रक्षकों के; रक्षणं---रक्षक; परेषां---परे से; परं---परे;

अर्थः----- —तुम एक ही भयों के भय विकरालों में विकराल अर्थात डरावनों में डरावना, जीव धारियों के लिये स्वर्ग प्राप्ति, पवित्रों में पवित्र, सर्वोच्च पदों के नियन्त्रक, नियन्त्रण कर्ता, रक्षकों के रक्षक,

परे से भी परे हो I

कल्याण ईश्वरान्क में अर्थ---- तुम भयों को भय देने वाले हो, भयंकर में भयंकर हो, प्राणियों की गति हो और पावनों को पावन करने वाले हो I अत्यंत उच्च पदों के तुम्हीं नियंत्रण करने वाले हो, तुम परसे पर हो, रक्षण करने वालों का भी रक्षण करने वाले हो I

वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो,

वयं त्वां जगत्साक्षिरूपं नमाम: I

सदैकं निधानं निरालम्बमीशं,

भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजाम: II 5 II

Page 269 of 523

Page 270 of 523

अन्वयः--- वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो, वयं त्वां जगत् साक्षि

रुपं नमाम: I सदैकं निधानं निरालम्बम् ईशं भव अम्भोधि पोतं

शरण्यं व्रजाम: I

शब्दार्थः--वयं-- हम; त्वां---आपको; स्मरामो----स्मरण करते हैं; वयं---हम; त्वां--- आपका; भजामो--- भजन करते हैं; वयं—हम; त्वां--- आपको; जगत्---सृष्टि; साक्षि---साक्षी; रुपं--- रूप को; नमाम:-----नमन् करते हैं; सदैकं--सदा एक ही; निधानं----आश्रय, संभालने वाले; निरालम्बम्--जो किसी अन्य का सहारा नहीं लेते; ईशं---ईश्वर, भव--संसार, भावनाओं से भरा; अम्भोधि--समुद्र, सागर; पोतं--नाव, जहाज; शरण्यं--शरण; व्रजाम:--जाते हैं;

अर्थः-----हम सब आपको स्मरण करते हैं, हम आपका भजन करते हैं, हम सब आपके सृष्टि के साक्षी रूप को नमन् करते हैं; सदा एक ही आश्रय (संभालने वाले); जो किसी अन्य का सहारा नहीं लेते, संसार, (भावनाओं से भरा); सागर के लिये जहाज ईश्वर की शरण में जाते हैं I

Page 270 of 523

Page 271 of 523

कल्याण ईश्वरांक में अर्थ---- हम तुम्हारा स्मरण करते हैं, हम तुमको भजते हैं, हम तुम्हें जगत् के साक्षीरूप में नमस्कार करते हैं I एकमात्र सत्स्वरूप निरालम्ब तथा इस भवसागर की तरणि रूप इश्वर के हम शरण जाते हैं I

त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रभु: I

सिद्धानामपि साध्यानामाश्रयाश्चासि पूर्वज: II

दृश्यसे सर्वभूतेषु गोषु च ब्राह्मणेषु च I

दिक्षु सर्वासु गगने पर्वतेषु नदीषु च II

सहस्रचरण: श्रीमान्शतशीर्ष: सहस्रदृक् I

त्वं धारयसि भूतानि पृथिवीं सर्वपर्वतान् I

(वाल्मीकि रामायण युद्ध काण्ड सर्ग 117 श्लोक 20-22)

अन्वय:-त्वं स्वयं हि प्रभु त्रयाणां लोकानाम् सिद्धानाम् अपि साध्यानाम् च पूर्वज: असि I सर्वेषु भूतेषु, गोषु, ब्राह्मणेषु च, सर्वासु दिक्षु, गगने, पर्वतेषु, च नदीषु दृश्यसे I श्रीमान

Page 271 of 523

Page 272 of 523

शतशीर्ष: सहस्र चरण: सहस्र दृक् त्वं सर्वपर्वतान्, भूतानि, पृथ्वीम् धारयसिII

शब्दार्थ:- त्वं---आप; स्वयं—अपने आप; हि— ही; प्रभु—स्वामी; त्रयाणां---तीनों; लोकानाम्---लोकों के; सिद्धानाम्—सिद्धों के; अपि---भी; साध्यानाम्---साधने, प्राप्त करने, जानने योग्य; च---और; पूर्वज:--जो पहले उत्पन्न हुआ; असि---हो; ! सर्वेषु---सभी में; भूतेषु----प्राणियों में; गोषु---गौओं में; ब्राह्मणेषु---ब्राह्मणों में; च---और; सर्वासु---सभी में; दिक्षु—दिशाओं में; गगने---आकाश में; पर्वतेषु---पर्वतों में; नदीषु—नदियों में; दृश्यसे---दिखाई देते हो; श्रीमान----श्रीमान; शतशीर्ष:---सैंकड़ों सिर वाला; सहस्र चरण:--हजारों पाँव(चरण) वाला; सहस्र दृक्—हजारों नेत्रों वाला; त्वं— आप,तू; सर्व—सभी; पर्वतान्---पर्वतों को; भूतानि—प्राणियों को;

पृथ्वीम्---पृथ्वी को; धारयसि----धारण करते हो;

अर्थ:- आप ही तीनों लोकों के आदिकर्ता और स्वयंप्रभु हैं अर्थात परम स्वतंत्र हैं I आप सिद्धों के भी साध्यों के भी आश्रय एवं

Page 272 of 523

Page 273 of 523

पूर्वज हैंI सभी प्राणियों में, गौओं में तथा ब्राह्मणों में भी, समस्त दिशाओं में, आकाश में, पर्वतों में और नदियों में भी आप ही दिखाई देते हैं I आपके हजारों चरण, सैंकड़ों मस्तक और सहस्रों नेत्र हैं I आप ही

सम्पूर्ण प्राणियों को, पृथ्वी को और पर्वतों को धारण करते हैं I

संत तुलसी दास जी अपनी विनय इस प्रकार करते हैं:-----

जाऊं कहाँ तजि चरन तुम्हारे I

काको नाम पतितपावन जग, केहि अति दीन पियारे II

कौने देव बराइ बिरदहित, हठि हठि अधम उधारे I

खग,मृग,व्याध,पषान, विटप जड़,जवन कवन सुर तारे II

देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब मायाबिबस बिचारे I

तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपनपौ हारे II

Page 273 of 523

Page 274 of 523

ब्रह्म का निराकार रूप बताते और नाम जप की महिमा और सर्वव्यापकता का बखान करते हुए तुलसीदास जी बताते हैं---

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी I बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी II

ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा I अकथ अनामय नाम न रूपा II

जाना चाहहिं गूढ़ गति जेऊ I नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ II

साधक जपहिं नाम लय लाएँ I होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ II

जपहिं नामु जन आरत भारी I मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी II

चहू चतुर कहूँ नाम अधारा I ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा II

चहुँ जग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ I कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ II

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा I अकथ अगाध अनादि अनूपा II

Page 274 of 523

Page 275 of 523

मोरें मत बड़ नाम दुहू तेँ I किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें II

एकु दारुगत देखिअ एकु I पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू II

उभय अगम जुग सुगम नाम तें I कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें II

ब्यापकु एक ब्रह्म अबिनासी I सत चेतन घन आनँद रासी II

अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी I सकल जीव जग दीन दुखारी II

नाम निरूपन नाम जतन तें I सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें II

मन्त्र महामनि विषय ब्याल के I मेटत कठिन कुअंक भाल के II

हरन मोह तम दिनकर कर से I सेवक सालि पाल जलधर से II

अभिमत दानि देवतरु बर से I सेवत सुलभ सुखद हरि हर से II

सकल सुकृत फल भूरि भोग से I जग हित निरुपधि साधु लोग से II

Page 275 of 523

Page 276 of 523

जाके हृदयं भगति जसि प्रीती I प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती II
हरि ब्यापक सर्वत्र समाना I प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना II
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं I कहहु सो कहाँ जहां प्रभु नाहीं II
अग जगमय सब रहित बिरागी I प्रेम तें प्रगटइ जिमि आगी II
(रामचरितमानस बालकाण्ड)
संत सूरदास इस प्रकार विनय करते हैं ---------- प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो I
समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो II
इक नदिया इक नार कहावत मैलोहि नीर भरो I
जब दोनों मिल एक बरन भये सुरसरि नाम परो II इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो I पारस गुण अवगुन नहीं चितवै कंचन करत खरो II यह माया भ्रमजाल कहावै सूरदास सिगरो I
अबकी बार मोहि पार उतारो नहिं प्रन जात टरो II
Page 276 of 523

Page 277 of 523

एक साबर मन्त्र:-----

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे I हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे I

या

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे I हरे राम हरे राम,

राम राम हरे हरे I

हरति य: जनानां दुःख: स: हरि:, रमति य: जनानां हृदये स: राम:, कर्षति य: जनानां भवसागरात् स: कृष्ण: इति I

अर्थ:- जो लोगों के दुखों को दूर करता है, जनों के कष्टों का हरण करता है, वह हरि (हरण करने वाला) है I जो लोगों के हृदय में अर्थात मन मन्दिर में रमता है, रमण करता है, निवास करता है, वह राम है I जो लोगों को भावनाओं के समूह रूपी सागर से खींच कर बाहर निकलता है, इस संसार सागर से बाहर खींचता है, वह कृष्ण है I और ऐसा ही आगे लिखे कवित्त से परिलक्षित होता है I

कविता रूप:----

Page 277 of 523

Page 278 of 523

हरि नाम सोई जानिये, जो सब दुःख हर लेत I
पल में ताप मिटाय के, चित्त शुद्ध कर देत II राम नाम सोई जानिये, जो रमता सकल जहान I
घट घट में जो रम रहा, उसको राम पहचान II कृष्ण नाम सोई जानिये, जो आकर्षण कर लेत I भव सागर से खींच कर, चरण शरण धर लेत II
एक हिंदी सिनेमा का गीत -------एक हूँ मैं पर नए नए रूपों में आता जाता हूँ I मैं हूँ एक रूप अनेक I जो कि ------एकोऽहं बहुस्याम, विप्रा: बहुधा वदन्ति I इस श्लोक की सत्यता सिद्ध करता है I
अग्नि के रूप में हवन आदि के समय इस मन्त्र से आवाहन किया जात है:--
सर्वतः पाणिपादाश्च सर्वतोऽक्षिशिरोमुख: I विश्वरूपो महानग्निः प्रणीत: सर्वकर्मसु II अन्वयः---- सर्वतः पाणि पादाः च सर्वतः अक्षि शिरो मुखः I सर्वकर्मसु विश्वरूपो महान अग्निः प्रणीतः II
शब्दार्थः--- सर्वतः---सब् ओर; पाणि---हाथ; पादाः---पांव; च---और; सर्वतः---सब् ओर; अक्षि---

Page 278 of 523

Page 279 of 523

आंख; शिरो---सिर; मुखः—मुंह, मुख; सर्वकर्मसु---सभी कर्मों के लिये, सभी कामों में; विश्वरूपो---विश्वरुप; महान---महान्, महत्वपूर्ण; अग्निः---अग्नि; प्रणीतः---- आवाहन किया जात है;

अर्थः--- सब ओर जिसके हतः और पांव हैं, सब ओर जिसके आंख, सिर, मुख हैं उस विश्व रूप महान अग्नि का सभी कर्मों में आवाहन किया जात है I

सर्वतः पाणिपादान्ते सर्वतोऽक्षिशिरोमुखे I
सर्वतः श्रवणघ्राणे नारायणि नमोऽस्तु ते II

अन्वय—सर्वत: पाणि पादान्ते, अक्षि शिरो मुखे सर्वत:, श्रवणे घ्राणे सर्वत: नारायणि ते नम: अस्तु ।

अर्थ—सर्वत: --सब ओर, पाणि—हाथ, पादान्ते— पांव के अंत में, पैर के तलवे में, अक्षि— आंख, शिरो—सिर, मुखे—मुख में, श्रवण—कान, घ्राणे—नासिका छिद्र में, नारायणि—भगवती दुर्गा, नम: --नमस्कार, नमन, अस्तु—है, ते— तुझे, तुमको,

अर्थ:--- हे नारायणी! सब ओर हाथ, पांवों के तल में, आँखों में, सर में, मुख में, सब स्थानों

Page 279 of 523

Page 280 of 523

में, कानों, नासिकाओं में सब जगह आपको नमस्कार है I

यच्च किञ्चित् जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा I

अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः II

अन्वयः---- यत् च किञ्चित् अन्तः च बहिः स्थितः सर्वं जगत् दृश्यते

श्रूयते अपि वा तत्सर्वं व्याप्य नारायणः I

शब्दार्थः--- यत्—---यह; च------और; किञ्चित्--- जो कुछ; अन्तः-----अन्दर; च-----और; बहिः------ बाहर; स्थितः-----स्थापित है; सर्वं-----सब कुछ; जगत्-----गतिशील संसार; दृश्यते-------दिखाई देता है; श्रूयते-----सुनाई देता है; अपि----भी; वा------या; तत्—---वह; उस सर्वं-----सब में; व्याप्य-----व्याप्त है, समाहित है; नारायणः-------नारायाण;

अर्थ:----- यह जो कुछ गतिशील संसार अन्दर और बाहर स्थापित दिखाई देता है या सुनने में भी आता है, उस सब में नारायण व्याप्त हैं I

Page 280 of 523

Page 281 of 523

सर्वत: पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् I
सर्वत: श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति II
(श्वेताश्वतर-उपनिषद अध्याय 3 श्लोक 16, श्रीमद्भागवद्गीता अध्याय 13 श्लोक 13)

अन्वय:- तत् (ब्रह्म) सर्वत: पाणिपादम् सर्वत: अक्षि शिरोमुखम् सर्वत: श्रुतिमत् स: एव लोके सर्वम आवृत्य तिष्ठति I

शब्दार्थ:- तत् = वह(ब्रह्म); सर्वत: = सब ओर; पाणिपादम् = हाथ पैर वाला; अक्षि शिरोमुखम् = आंख,सिर, और मुख वाला; श्रुतिमत् = कानों वाला; स: = वह; लोके = संसार में; सर्वम = सबको;
आवृत्य = घेर कर; तिष्ठति = खड़ा है;

अर्थ:- सब ओर उसके हाथ-पैर हैं; सब ओर आंख, सिर, मुख, हैं; सब ओर कान हैं; वह संसार में सबको घेर का खड़ा है I

भावार्थ:- भला जब सब ओर उसके हाथ-पैर, आंख, सिर, मुख और कान हैं और वही इस संसार को घेरे हुए खड़ा है, इस संसार को उसी ने घेर रखा है, वही संसार में है, संसार उसी में व्याप्त है,

Page 281 of 523

Page 282 of 523

उसी में स्थित है—फिर ऐसा कौन है जो उससे छिप जायेगा, उससे बच
कर निकल जायेगा?

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः I

राम एव परं तत्त्वं श्री रामो ब्रह्म तारकम् II

(राम रहस्य उपनिषद्)

अर्थः---- राम ही परम् ब्रह्म हैं, राम ही परम् तपस्वी हैं । राम ही परम् तत्त्व हैं, राम ही परम् उद्धारक अर्थात तारनेवाले, भव से पर करने वाले हैं ।

राम का ब्रह्म स्वरूप दर्शाते हुए तुलसीदास विभीषण के माध्यम से रावण को बताते हैं---

तात राम नहिं नर भूपाला । भुवनेस्वर कालहु कर काला

ब्रह्म अनामय अज भगवंता । ब्यापक अजित अनादि अनंता ।।

गो द्विज धेनु देव हितकारी । कृपासिन्धु मानुष तनु धारी ।।

(रामचरितमानस सुन्दरकाण्ड)

Page 282 of 523

Page 283 of 523

अर्थ:---- हे तात! राम मनुष्यों के ही राजा नहीं हैं अपितु समस्त लोकों के स्वामी और काल के भी काल हैं । वे (सम्पूर्ण ऐश्वर्य, यश, श्री, धर्म, वैराग्य, एवं ज्ञान के भण्डार) भगवान हैं; वे समस्त विकारों से रहित, अजन्मा, व्यापक, अजेय, अनादि और अनन्त ब्रह्म हैं । पृथ्वी, ब्राम्हण, गौ (गाय) देवताओं के हितकारी हैं । कृपा के सागर मनुष्य शरीर धारण किये हुये हैं ।

बिन पग चलही सुनही बिन काना,

कर बिनु कर्म करही बीधी नाना I

हरी इच्छा सर्वत्र समाना भाव ते प्रगट होही भगवाना I

जाकी रही भवना जैसी प्रभू मुरत देखी तह तैसी I

जो नहीं देखा नहीं सूना जो न मनहु मे समाये I

अस विचित्र जब दिखहु बरान कोंन बीधी जाय II

भावार्थ -ईश्वर का ना कोय हाथ पैर है ना कोई रंग रूप फिर भी सभी नामों में सभी कामों में सभी रूप में दृष्टी गोचार बिद्यमान

Page 283 of 523

Page 284 of 523

हैं । जो भाव की भावना से प्रगट होते है ईश्वरीय रूप का कोई व्यक्ति पूरण कल्पना नहीं कर सकता क्यों कि ईश्वर कल्पना से परे है ।

अहं हरे तव पादैकमूल-दासानुदासो भवितास्मि भूयः ।

मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः II

(श्रीमद्भागवत षष्ठ स्कन्ध अध्याय 11 श्लोक 24)

अर्थः---- प्रभो आप मुझ पर ऐसी कृपा कीजिए कि अनन्य भाव से आपके चरणकमलों के आश्रित सेवकों की सेवा करने का अवसर मुझे अगले जन्म में भी प्राप्त हो I मेरा मन आपके गुणों का स्मरण करता रहे, मेरी वाणी उन्हीं का गान करे, शरीर अपना कर्म करता

रहे अर्थात शरीर आपकी सेवा में संलग्न रहे I

नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठयं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् I

न योगसिद्धीर्पुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे II

Page 284 of 523

Page 285 of 523

(श्रीमद्भागवत षष्ठ स्कन्ध अध्याय 11 श्लोक 25)

अर्थ:------ मैं आपको छोड़कर स्वर्ग, ब्रम्ह्लोक, भूमण्डल का साम्राज्य, रसातल का एकछत्र राज्य, योग की सिद्धियाँ-----यहाँ तक कि मोक्ष भी नहीं चाहता II

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथावत्सतराः क्षुधार्ताः I

प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् II (श्रीमद्भागवत षष्ठ स्कन्ध अध्याय 11 श्लोक 26)

अर्थ:------ जैसे पक्षियों के पंख हीन बच्चे अपनी माँ की बाट जोहते रहते हैं I जैसे भूखे बछड़े अपनी माँ का दूध पीने के लिये आतुर रहते हैं और जैसे वियोगिनी पत्नी अपने प्रवासी प्रियतम से मिलने के लिये उत्कंठित रहती है--–वैसे ही कमलनयन I मेरा मन आपके दर्शन के लिये छटपटा रहा है I

एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः I

Page 285 of 523

Page 286 of 523

नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः II

(श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध अध्याय 14 श्लोक 23)

अन्वयः---- एकः त्वम् सत्यः, आत्मा, पुराणः, पुरुषः, स्वयं आद्य अनन्त ज्योतिः, नित्य अक्षरः, अजस्र सुखः, निरञ्जनः, पूर्ण अद्वयः, उपाधितः, मुक्त अमृतः I

अर्थः--- एकः----एक मात्र; त्वम्---आप; सत्यः--- सत्य; आत्मा----आत्मा; पुराणः---पुराण; पुरुषः---पुरुष; स्वयं---स्वयं; आद्य----आदि; अनन्त----अन्त रहित; ज्योतिः---प्रकाश; नित्य---नित्य; अक्षरः----अविनाशी; अजस्र---- निरन्तर, अखण्डित; सुखः----सुख, आनन्द; निरञ्जनः----निष्कलंक, निर्दोष, मिथ्यावाद से रहित; पूर्ण---पूर्ण; अद्वयः---एक, जिसके समान कोई अन्य नहीं; उपाधितः---उपाधिसे; मुक्त--- मुक्त; अमृतः-----अमृत;

अर्थः----- आप एकमात्र सत्य, आत्मा, पुराण-पुरुष, आदि, अन्त रहित, समस्त सीमाओं से परे स्वयं प्रकाश, नित्य, अविनाशी हैं I आपका आनन्द अखण्डित है I आप निर्दोष, मिथ्यावाद से

Page 286 of 523

Page 287 of 523

रहित हैं I आप एक, समस्त उपधियों से मुक्त और अमृत स्वरुप हैं I

निष्कलाय विमोहाय शुद्धायाशुद्धवैरिणे I

अद्वितीयाय महते श्रीकृष्णाय नमो नमः II

अन्वयः--- शुद्धाय अशुद्ध वैरिणे, निष्कलाय, विमोहाय, महते अद्वितीयाय श्रीकृष्णाय नमो नमः!!

शब्दार्थः---- शुद्धाय--- शुद्धात्मा जीवों की रक्षा करने वाले; अशुद्ध----- अशुभ कर्म करने वाले; वैरिणे------वैरी, शत्रु; निष्कलाय------सभी कलाओं, क्रिया-कलापों से परे; विमोहाय------ सभी मोह, माया, आदि को दूर करने वाले; महते-----महान्; अद्वितीयाय------ जिनके समान दूसरा अन्य कोई नहीं है सर्व श्रेष्ठ; श्रीकृष्णाय------ श्रीकृष्ण के लिये, श्री कृष्ण को; नमो---नमन करना चाहिये, नमन करो; नमः------नमस्कार है;

अर्थः---- सभी कलाओं, क्रिया-कलापों से परे, सभी मोह, माया, आदि को दूर करने वाले, शुद्ध (शुद्धात्मा जीवों की रक्षा करने वाले) हैं, अशुद्ध (अशुभ कर्म करने वाले) के वैरी हैं, जिनके समान दूसरा अन्य कोई नहीं है सर्व

Page 287 of 523

Page 288 of 523

श्रेष्ठ महान श्रीकृष्ण के लिये नमस्कार है I

उन्हें ही नमन् करना चाहिये I

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्विभ्रते

दैत्यान् दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते I

पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते

म्लेच्छान् मूर्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः II

अन्वयः----वेदान् उद्धरते, जगत् निवहते, भूगोलम उद् विभ्रते, दैत्यान् दारयते, बलिं छलयते, क्षत्र क्षयं कुर्वते I पौलस्त्यं जयते, हलं कलयते, कारुण्यम् आतन्वते, म्लेच्छान् मूर्छयते, दशाकृति कृते, कृष्णाय, तुभ्यं नमः II

शब्दार्थः----- वेदान्----वेदों का; उद्धरते-----उद्धार करते हैं; जगत्-----जगत् (सृष्टि) निवहते----पालन करते हैं; भूगोलम्------भूमण्डल को; उद्----ऊपर; विभ्रते-----धारण करते हैं; दैत्यान्----(दिति

Page 288 of 523

Page 289 of 523

के पुत्र) दैत्यों को; दारयते---दलते हैं (कष्ट देते हैं); बलिं------राजा बलि को; छलयते-----छलते हैं; क्षत्र------छत्र धारण करने वाले, क्षत्रिय; क्षयं------विनाश; कुर्वते----- करते हैं; पौलस्त्यं-----ऋषि पुलस्त्य के वंश में उत्पन्न (रावण); जयते-----जीतते हैं; हलं------हल; कलयते-------धारण करते हैं; कारुण्यम्------दयभाव; आतन्वते-----प्रसारित करते हैं, फ़ैलाते हैं; म्लेच्छान्----- दुष्टात्मा, मूर्छयते-------मूर्च्छित करते हैं, दण्डित करते हैं; दशाकृति------दस आकार अर्थात दस अवतार; कृते-----करते हैं,लेते हैं,धारण करते हैं; कृष्णाय------कृष्ण के लिये अर्थात कृष्ण को, तुभ्यं------आपको; नमः-------नमस्कार है;

अर्थ:---- (यहां विष्णु के कृष्णावतार सहित दस अवतारों के स्वरुपों की स्तुति की गई है) वेदों का उद्धार करते हैं, जगत् का पालन करते हैं, भूमण्डल को अपने उपर धारण करते हैं, दैत्यों का दलन करते हैं (कष्ट देते हैं), बलि को छलते हैं, क्षत्रियों का नाश करते हैं, पौलस्त्य (रावण) पर विजय प्राप्त करते हैं, हल धारण करते हैं, दयभाव का प्रसार करते

Page 289 of 523

Page 290 of 523

हैं, दुष्टों को दण्डित करते हैं, दस अवतार लेते हैं, ऐसे कृष्ण आपको नमस्कार है I

यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुवन्ति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः

साङगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः I

ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो

यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः II

अन्वयः----- यं ब्रह्मा, वरुणः, इन्द्रः, रुद्र:, मरुतः स्तुवन्ति दिव्यैः, स्तवै: वेदै: I यं सामगाः साङगपदक्रमोपनिषदै: गायन्ति I यं ध्यानावस्थित तद्गतेन योगिनो मनसा पश्यन्ति I यस्य अन्तं न विदुः सुर असुर गणा देवाय तस्मै नमः I

शब्दार्थः------- यं-----जिसकी; ब्रह्मा------ ब्रह्मा; वरुणः------वरुण; इन्द्रः-----इन्द्र; रुद्र:-----रुद्र; मरुतः-----वायु; दिव्यैः---- देवताओंके द्वारा; स्तुवन्ति----स्तुति की जाति है; स्तवै:---स्तुति योग्य, प्रशन्सा के योग्य; वेदै:----वेदों के द्वारा; यं-----जिसकी; सामगाः-----प्रसन्नता पूर्वक; साङग-----समस्त

Page 290 of 523

Page 291 of 523

अंगों के द्वारा; पदक्रम-----सुन्दर पंक्तियों के द्वारा; उपनिषदै:----- उपनिषदों के द्वारा; गायन्ति------गाते हैं; यं----जिसको; ध्यानावस्थित------ध्यान में स्थित; तद्गतेन-------वहां पहुंचे हुये; योगिनो------ योगीजन; मनसा-----मन के द्वारा; पश्यन्ति--- देखते हैं; यस्य---जिनका; अन्तं----अन्त, न---- नहीं; विदुः----जानते; सुर----देवता; असुर---- राक्षस; गणा-----प्राणी; देवाय------देवता को; तस्मै----उस; नमः---नमस्कार है;

अर्थः------ जिसकी ब्रह्मा; वरुण; इन्द्र; रुद्र; वायु; देवताओंके

द्वारा, प्रशंसा के योग्य वेदों के द्वारा स्तुति की जाति है; जिसकी प्रसन्नता पूर्वक छन्द, अलंकार आदि समस्त अंगों के सहित सुन्दर पंक्तियों में उपनिषदों के द्वारा गाते हैं; जिसको ध्यान में स्थित होकर वहां पहुंचे हुये योगीजन मन के द्वारा देखते हैं; जिनका अन्त देवता और राक्षस गणा नहीं जानते उस देवता को नमस्कार है I

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् I

Page 291 of 523

त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं
पुरुषो मतो मे **II**

(श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 11 श्लोक 18)

अन्वय —त्वम् शाश्वत धर्म गोप्ता सनातन : पुरुषो , त्वम् अव्यय :, त्वम अस्य विश्वस्य परम् निधानम् , त्वम परमम् वेदितव्यम् अक्षरम् मे मतो ।

शब्दार्थ — मे —मेरा ; मतो —मत, विचार ; त्वम् —तू , आप; शाश्वत —सदा से ही ; धर्म गोप्ता —धर्म के गोपनीय रहस्य को जानने वाले ; धर्म की रक्षा करने वाले , सनातन : --सदा रहनेवाले , हमेशा रहनेवाले ; पुरुषो —परमपुरुष , परमात्मा ; त्वम् —आप; अव्यय :--अपरिवर्तन -शील, त्वम -आप; अस्य —इसके ; विश्वस्य ---विश्व के ; परम् —सब से बड़े ; निधानम् —आधार; त्वम —आप; परमम् —सबसे बड़े ; वेदितव्यम् –जानने योग्य ; अक्षरम् —परम अक्षर स्वरूप , अविनाशी ;

अर्थ ----- आप शाश्वत धर्म के गोपनीय रहस्य को जानने वाले -अर्थात् धर्म की रक्षा करने वाले सनातन परमपुरुष हैं , आप अपरिवर्तनशील , अपरिवर्तनीय हैं , आप इस विश्व के सब से बड़े आधार, आश्रय हैं I आप परम् —सबसे बड़े जानने

Page 293 of 523

योग्य; परम अक्षर स्वरूप, अविनाशी हैं I ऐसा मेरा मत (विचार) है ।

डॉ॰ सर्वेपल्लि राधाकृष्णन् के मतानुसार अर्थ इस प्रकार किया गया है:--

तू अनश्वर भगवान है, जिसका ज्ञान प्राप्त किया चाहिए I तू संसार का परम विश्राम स्थान है; तू शाश्वत (सनातन) धर्म का अम्र रक्षक है I मुझे तो लगता है तू ही सनातन पुरुष है I

अक्षरम: अनश्वर I अर्जुन कहता है कि भगवान ब्रह्म और ईश्वर, दोनों ही है I परब्रह्म और परमात्मा दोनों I

शाश्वतधर्मगोप्ता: सदा बने रहनेवाले धर्म का अमर रक्षक I अभिनवगुप्त ने इसके स्थान पर ‘सात्त्वतधर्मगोप्ता’ पाठ माना है, जिसका अर्थ है सात्त्वत धर्म का रक्षक I

जगद्गुरु श्री आद्यशंकराचार्य कृत श्रीमद्भगवद्गीताभाष्य के

अनुसार:---

भाष्य:- त्वम् अक्षरं न क्षरति इति परमं ब्रह्म वेदितव्यं ज्ञातव्यं मुमुक्षुभि:, त्वम् अस्य विश्वस्य समस्तस्य जगत: परं

Page 293 of 523

Page 294 of 523

प्रकृष्टं निधानम्, निधीयते अस्मिन् इति निधानं पर आश्रय इत्यर्थ: I

किं च त्वम् अव्ययो न तव व्ययो विद्यते इति अव्यय: शाश्वतधर्मगोप्ता शश्वद् भव: शाश्वतो नित्यो धर्म: तस्य गोप्ता शाश्वतधर्मगोप्ता सनातन: चिरन्तन: त्वं पुरुष: परो मत: अभिप्रेतो मे मम I

अर्थ—आप मुमुक्षु पुरुषों द्वारा जानने योग्य परम-अक्षर अर्थात जिसका कभी नाश न हो ऐसे परमब्रह्म परमात्मा हैं I आप ही इस समस्त जगत् के परम उत्तम निधन हैं—जिसमें कोई वसतु रखी जाये उसे निधान कहते हैं, सो आप इसके संसार के परम आश्रय हैं I

इसके सिवा आप अविनाशी हैं अर्थात्
आपका कभी नाश नहीं होता, इसलिए आप नाशरहित हैं और सनातनधर्म के रक्षक हैं अर्थात् जो सदा से है, ऐसे नित्यधर्म के आप रक्षक हैं और आप ही सनातन परमपुरुष हैं—यह मेरा मत है I

स्वामी रामसुखदास ने साधक-संजीवनी में इस प्रकार लिखा है:-

अर्थ--आप ही जाननेयोग्य परम अक्षर (अक्षरब्रह्म) हैं, आप ही इस समूर्ण विश्व के

Page 294 of 523

परम आश्रय हैं , आप ही सनातनधर्म के रक्षक हैं , और आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं —ऐसा मैं मानता हूँ I

व्याख्या **---**‘त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं ’—वेदों , शास्त्रों , पुराणों ,स्मृतियों , संतों की वाणियों और तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त महापुरुषों द्वारा जाननेयोग्य जो परमानन्दस्वरूप अक्षरब्रह्म है ,

जिसको निर्गुण -निराकार कहते हैं , वे आप ही हैं I

‘त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ’—देखने , सुनने , और समझने में जो कुछ संसार आता है , उस संसार के परम आश्रय , आधार आप ही हैं I जब महाप्रलय होता है , तब सम्पूर्ण संसार कारण सहित आप में ही लीन होता है और फिर महासर्ग के आदि में आपसे ही प्रकट होता है I इस तरह आप इस संसार के परम निधान हैं इ [इन पदों से अर्जुन सगुण -निराकार का वर्णन करते हुए स्तुति करते हैं I]

‘त्वं शाश्वतधर्मगोप्ता ’**---** जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है , तब आप ही अवतार लेकर अधर्म का नाश करके सनातन धर्म की रक्षा

Page 296 of 523

करते हैं I[इन पदों से अर्जुन सगुण-साकार के वर्णन करते हुए स्तुति करते हैं I]

‘अव्यय: सनातनस्तवं पुरुषो मतो मे’--- अव्यय अर्थात् अविनाशी, सनातन, आदिरहित, सदा रहनेवाले उत्तम पुरुष आप ही हैं, ऐसा मैं मानता हूँ I

ज्ञानेश्वरी गीता में ये अर्थ इस प्रकार बताया गया है—

हे देव! श्रुति जिसे तलाशती है, वह अक्षर और ओंकार कि साढ़े तीन मात्राओं के परे आप ही हैं I जो समस्त आकारों का मूल है और जिसमें सारा संसार समाविष्ट है; वह अव्यय गूढ़ और अविनाशी तत्त्व आप ही हैं I आप ही धर्म के जीवन हैं, आप ही अनादि-सिद्ध हैं, नित्य नूतन हैं I आप ही सैंतीसवें तत्त्व हैं और समझता हूँ कि हे विश्वेश! आप ही पुराणपुरुष भी हैं I

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक द्वारा लिखित गीतारहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र में इसप्रकार बताया है---
तुम्हीं अंतिम ज्ञेय अक्षर (ब्रह्म), तुम्हीं इस विश्व के अंतिम आधार, तुम्हीं शाश्वत धर्म के रक्षक हो, और मुझे सनातन पुरुष तुम्हीं जान पड़ते हो I

Page 296 of 523

Page 297 of 523

त्वमादिदेव: पुरुष: पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् I

वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम, त्वया ततं विश्वमनंतरूप II

(श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 11 श्लोक 38)

अन्वय:- त्वं आदिदेव पुराण पुरुष: अस्य विश्वस्य परं निधानम् I त्वं वेद्यं च वेत्ता असि परं च धाम, त्वया ततं अनन्त रूपम् विश्वं II

शब्दार्थ:- त्वं---आप; आदिदेव:----प्रथम देवता, सबसे पुरातन देवता; पुराण पुरुष----सनातन पुरुष; अस्य---इसके; विश्वस्य----संसार के; परं----सबसे ऊपर, सबसे बड़े; निधानं----आश्रय, आधार; वेद्यं----जानने योग्य; वेत्ता----जानने वाला; धाम---घर, गति, त्वया---आपके द्वारा, ततं---उसी; अनन्त---अंत रहित; रूपं----प्रकार के; विश्वं---संसार;

अर्थ:- आप प्रथम देव, सनातन पुरुष हैं, इस संसार के सबसे बड़े

Page 297 of 523

Page 298 of 523

आधार, और जानने योग्य तथा जानने वाले और सबसे बड़ा घर

आश्रय हैं I उस अनन्त विश्व का रूप आपके द्वारा ही है I

डॉ॰ सर्वेपल्लि राधाकृष्णन् के मतानुसार अर्थ इस प्रकार किया गया है:--

तू देवताओं में सर्वप्रथम है; तू आद्यपुरुष है; तू इस संसार का परम्विश्राम-स्थान है! तू ही ज्ञाता है और तू ही ज्ञेय है और तू ही सर्वोच्च लक्ष्य है! और हे अनंत रूपों वाले, तूने ही इस संसार को व्याप्त किया हुआ है!

जगद्गुरु श्री आद्यशंकराचार्य कृत श्रीमद्भगवद्गीताभाष्य के

अनुसार:---

भाष्य:---त्वम् आदिदेवो जगत:स्रष्ट्त्वात् पुरुष: पुरि शयनात्, पुराण: चिरन्तन: त्वम् एव अस्य विश्वस्य परं प्रकृष्टं निधानं निधीयते अस्मिन् जगत् सर्वं महाप्रलयादौ इति I

किं च वेत्ता असि वेदिता असि सर्वस्य एव वेद्यजातस्य I यत् च वेद्यं

Page 298 of 523

Page 299 of 523

वेदानार्हं तत् च असि! परं च धाम परमं पदं वैष्णवम् I त्वया ततं व्याप्तं विश्वं समस्तम् अनन्तरूप अन्तो न विद्यते तव रूपाणाम् II

अर्थ:- आप जगत् के रचयिता होने के कारण आदिदेव हैं और

शरीररूप पुर में रहने के कारण सनातन पुरुष हैं तथा आप ही इस

विश्व के परम उत्तम स्थान हैं अर्थात् महाप्रलयादि में समस्त जगत्

जिसमें स्थित होता है वह (जगत् का आश्रय) आप ही हैं I

तथा समस्त जानने योग्य वस्तुओं के आप जानने वाले हैं और जो जानने योग्य हैं वह भी आप ही हैं I आप ही परम धाम—परम वैष्णवपद हैं I हे अनन्तरूप I समस्त विश्व आपसे परिपूर्ण है--- व्याप्त है I आपके रूपों का अन्त नहीं है II

स्वामी रामसुखदास ने साधक-संजीवनी में इस प्रकार लिखा है:-

आप ही आदिदेव और पुराणपुरुष हैं तथा आप ही इस संसार के परम आश्रय हैं I आप ही सबको

Page 299 of 523

Page 300 of 523

जाननेवाले, जानने योग्य और परम धाम हैं I हे अनन्तरूप I आपसे ही सम्पूर्ण संसार व्याप्त है I

व्याख्या:- ‘त्वमादिदेव: पुरुष: पुराण:’—आप सम्पूर्ण देवताओं के आदिदेव हैं; क्योंकि सबसे पहले आप ही प्रकट होते हैं I आप पुराणपुरुष हैं; क्योंकि आप सदासे हैं और सदा ही रहनेवाले हैं I

‘त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्’--- देखने, सुनने, समझने और जानने में जो कुछ संसार आता है; और संसार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि जो कुछ होता है, उस सबके परम आधार आप हैं I

‘वेत्तासि’--- आप सम्पूर्ण संसार को जानने वाले हैं अर्थात

भूत,भविष्य और वर्तमान काल तथा देश, वस्तु, व्यक्ति आदि जो

कुछ है, उन सबको जाननेवाले (सर्वज्ञ) आप ही हैं I

‘वेद्यम’—वेदों, शास्त्रों, संत-महात्माओं आदि के द्वारा जानने योग्य केवल आप ही हैं I

Page 300 of 523

Page 301 of 523

‘परं धाम’— जिसको मुक्ति, परमपद आदि नामों से कहते हैं, जिसमें जाकर फिर लौटकर नहीं आना पड़ता और जिसको प्राप्त करने पर करना, जानना और पाना कुछ भी बाक़ी नहीं रहता, ऐसे परमधाम आप ही हैं I

‘अनन्तरूप’--- विराट् रूप से प्रकट हुए आपके रूपों का कोई पारावार नहीं है I सब तरफ से ही आपके अनंत रूप हैं I

‘त्वया ततं विश्वम’--- आपसे यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है अर्थात संसार के कण-कण में आप ही व्याप्त हो रहे हैं I

ज्ञानेश्वरी गीता में ये अर्थ इस प्रकार बताया गया है—

आप प्रकृति और पुरुष के आदि कारण हैं; आप ही महत्तत्व की

सीमा हैं । स्वत: अनादि-सिद्ध पुरातन हैं । आप सम्पूर्ण विश्व के जीवन और मूल कारण हैं । भूत और भविष्य का ज्ञान केवल आपके ही हाथ में है । हे अभिन्न प्रभो! श्रुति के आंखों को आपके ही स्वरूप के दर्शनों से सुख होता है । आप ही तीनों भुवनों के आधार हैं । इसीलिये आपको परम महाधाम कहा जाता है । कल्पांत के

Page 301 of 523

समय महद्ब्रह्म आप में ही प्रवेश करता है ।
किंबहुना , हे देव ! इस समस्त संसार को आपने ही उत्पन्न करके इसका विस्तारकिया है । फिर भला हे अनन्तरूप भगवन् ! आपका वर्णनकौन कर सकता है ?

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक द्वारा लिखित गीतारहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र में इसप्रकार बताया है **---**
तुम आदिदेव **, (**तुम **)** पुरातन पुरुष **,** तुम्हीं इस जगत् के परम आधार हो **;** तुम ज्ञाता और ज्ञेय **,** तथा तुम श्रेष्ठस्थान हो **;** और हे अनंतरूप **!** तुम्हीने **(**इस**)** विश्व को विस्तृत अथवा व्याप्त किया है **I**

वायुर्यमोऽग्निर्वरुण **:** शशाङ्क**:**
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च **I**

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्व **:** पुनश्च
भूयोऽपि नमो नमस्ते **II**
(श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 11 श्लोक 39)

अन्वय **:-** त्वं वायु : यम: अग्नि : वरुण ; शशांक , प्रजापति च पितामह I

नमो नमस्ते अस्तु सहस्रकृत्व : पुनश्च
भूयोऽपि नमो नमस्ते II

Page 303 of 523

शब्दार्थ:--- त्वं---आप; वायु:---वायु; यम:--यम; अग्नि:--अग्नि; वरुण:---वरुण; शशांक—चंद्रमा; प्रजापति---प्रजा के स्वामी, ब्रह्मा; च—और पितामह----दादा, ब्रह्मा के पिता; नमो— नमस्कार हो; नमस्ते---आपके लिए नमस्कार; अस्तु-- है; सहस्रकृत्व:---हजारों

बार करले; पुनश्च—और दोबारा; भूयोऽपि---बार बार भी, अनेक

बार; नमो नमस्ते----नमस्कार हो, आपको नमस्कार हो;

अर्थ:- आप वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजा के स्वामी

ब्रह्मा, और उस ब्रह्मा के भी पिता हैं! आपके लिए हजारों बार

नमस्कार I नमस्कार हो II आपके लिये फिर भी बार बार नमस्कार I नमस्कार I

डॉ॰ सर्वेपल्लि राधाकृष्णन् के मतानुसार अर्थ इस प्रकार किया गया है:-- तू वायु है; तू यम (विनाश करने वाला) है; तू अग्नि है; तू वरुण (समुद्र का देवता) है; और तू शशांक (चंद्रमा) है और प्रजापति, सबका पितामह है!

Page 303 of 523

Page 304 of 523

तुझे हजार बार नमस्कार है; तुझे बारम्बार नमस्कार है I

जगद्गुरु श्री आद्यशंकराचार्य कृत श्रीमद्भगवद्गीताभाष्य के अनुसार:---

भाष्य:-वायु: त्वं यम: च अग्नि: वरुण: अपां पति: शशाङक: चंद्रमा: प्रजापति: त्वं कश्यपादि: प्रपितामह: च पितामह्स्य अपि पिता प्रपितामहो ब्राह्मण: अपि पिता इत्यर्थ: I नमो नाम: ते तुभ्यम् अस्तु सहस्रकृत्व: पुन; वः भूय: अपि नमो नम: ते I बहुशो नमस्कारा- क्रियाभ्यासावृत्तिगणनं कृत्वसुचा उच्यते I पुन: च भूय: अपि इति

श्रद्धाभक्त्यतिशयाद् अपरितोषम् आत्मनो दर्शयति I

अर्थ:- आप ही वायु, यम, अग्नि, जल के राजा वरुण, चन्द्रमा और कश्यपादि प्रजापति हैं और आप ही पितामह के भी पिता प्रपितामह हैं अर्थात ब्रह्मा के भी पिता हैं I आपको हजारों बार नमस्कार हो, नमस्कार हो; फिर भी बारम्बार आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो I सहस्र शब्द से ‘कृत्वसुच’ प्रत्यय कर देने से अनेकों बार नमस्कार क्रिया के अभ्यास और आवृत्ति की

Page 304 of 523

Page 305 of 523

गणना का प्रतिपादन हो जाता है; परन्तु फिर भी ‘पुनश्च’ ‘भूयोऽपि’ इन शब्दों से अर्जुन अतिशय श्रद्धा और भक्ति के कारण ‘नमस्कार’ करता-करता ‘मैं तृप्त नहीं हुआ हूं’ ऐसा अपना भाव दिखलाता है II

स्वामी रामसुखदास ने साधक-संजीवनी में इस प्रकार लिखा है:-

आप ही वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, दक्ष, आदि प्रजापति और प्रपितामह (ब्रह्मा जी के भी पिता अर्थात परदादा) हैं I आपको हजारों बार नमस्कार हो I नमस्कार हो II और फिर भी आपको बार-बार नमस्कार हो I नमस्कार हो II

व्याख्या :- ‘वायु:’-- जिससे सबको प्राण मिल रहे हैं, मात्र प्राणी जी रहे हैं, सबको सामर्थ्य मिल रही है, वह वायु आप ही हैं I

‘यम:’- जो संयमनीपुरी के अधिपति हैं और सम्पूर्ण संसार पर

जिनका शासन चलता है, वे यम आप ही हैं I

‘अग्नि:’- जो सबमें व्याप्त रहा कर शक्ति देता है प्रकट हो कर प्रकाश देता है और जठराग्नि के रूप में अन्न का पाचन करता है, वह अग्नि आप ही हैं I

Page 305 of 523

Page 306 of 523

‘वरुण:’- जिसके द्वारा सबको जीवन मिल रहा है, उस जल के अधिपति वरुण आप ही हैं I

‘शशाङक:’- जिससे सम्पूर्ण ओषधियों का, वनस्पतियों का पोषण होता है, वह चन्द्रमा आप ही हैं I

‘प्रजापति:’- प्रजा को उत्पन्न करने वाले दक्ष आदि प्रजापति आप ही हैं I

‘प्रपितामह:’- पितामह ब्रह्माजी को भी प्रकट करनेवाले होने से आप प्रपितामह हैं I

‘नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्व: पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते’—इंद्र आदि जितने भी देवता हैं वे सब के सब आप ही हैं I आप अनन्तस्वरूप हैं I आपकी मैं क्या स्तुति करूँ? क्या महिमा गाऊँ? मैं तो आपको हजारों बार नमस्कार ही कर सकता हूं और कर ही क्या सकता हूं? कुछ भी करने की जिम्मेवारी मनुष्य पर तभी तक रहती है जबतक अपने में करने का बल अर्थात अभिमान रहता है I जब अपने में कुछ भी कने की सामर्थ्य नहीं रहती, तब करने की जिम्मेवारी बिल्कुल नहीं रहती I अब वह केवल नमस्कार ही करता है अर्थात अपने आप को सर्वथा भगवान के समर्पित कर देता है I फिर

Page 306 of 523

Page 307 of 523

करने कराने का सब काम शरण्य-(भगवान्-) का ही रहता है, शरणागत का नहीं I

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक द्वारा लिखित गीतारहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र में इसप्रकार बताया है---वायु, यम, अग्नि, वरुण, चंद्र, प्रजापति अर्थात् ब्रह्मा, और परदादा भी तुम्हीं हो I तुम्हें हजार बार नमस्कार है I और फिर भी तुम्हीं को नमस्कार है I

[ब्रह्मा से मरीचि आदि सात मानसपुत्र उत्पन्न हुए और मरीचि कश्यप, तथा कश्यप से सब प्रजा उत्पन्न हुई है (महाभारत आदिपर्व) इसलिए इन मरीचि आदि को ही प्रजापति कहते हैं (शांतिपर्व) I इसीसे कोई कोई प्रजापति शब्द का अर्थ कश्यप आदि प्रजापति करते हैं परन्तु यहाँ प्रजापति शब्द एकवचनांत है, इस कारण प्रजापति का अर्थ ब्रह्मदेव ही अधिक ग्राह्य दीख पड़ता है I इसके अतिरिक्त ब्रह्मा, मरीचि आदि के पिता अर्थात् सबके पितामह (दादा) हैं, अत: आगे उसकी सार्थकता व्यक्त हो जाती है I]

नम: पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व I

Page 307 of 523

अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं
समाप्नोषि ततोऽसि सर्व : II

(श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 11 श्लोक 40)

अन्वय **:-** अथ पुरस्तात् पृष्ठत : ते नम :,सर्वत
एव सर्व नमो अस्तु ते I त्वं अनन्तवीर्या
अमितविक्रम अस्तु , ततो सर्व : असि सर्वं
समाप्नोषि I

शब्दार्थ **:-** अथ—इसलिए ; पुरस्तात् —आगे से ;
पृष्ठत :--पीछे से ; ते —आपको; नम:---नमस्कार है ;,
सर्वत ---सब ओर, सभी जगह , समस्त प्राणियों में
स्थित ; एव—ही ; सर्व —सब; नमो अस्तु ते ----आपको
नमस्कार है ; ! त्वं —-आप; अनन्तवीर्या ----
अंतहीन सामर्थ्यवान ; अमितविक्रम ---अत्यंत
पराक्रमी ; अस्तु ---सत्य रूप से , वास्तव मे ;
ततो —फैला हुआ ; सर्व :--सब; असि---है ; सर्वं —
सब; समाप्नोषि ---व्याप्त है ;

अर्थ **:-** आप अंतहीन सामर्थ्यवान अत्यंत
पराक्रमी हैं आपके लिए आगे से और पीछे से भी
नमस्कार है I हे सर्वात्मन ! आपके लिए सभी ओर
से नमस्कार हो I वास्तव में आप सभी में आपका
ही विस्तार है , आप ही समस्त संसार को व्याप्त
किये हुए हैं इससे आप ही सर्व रूप हैं I

Page 309 of 523

डॉ॰ सर्वेपल्लि राधाकृष्णन् के मतानुसार अर्थ इस प्रकार किया गया है:--

तुझे सामने से नमस्कार है; तुझे पीछे की ओर से नमस्कार है; हे सब कुछ तुझे सब ओर से नमस्कार है I तेरी शक्ति असीम है और तेरा बल अमाप है; तू सब में रमा हुआ है, इसलिए तू सब-कुछ है I

जगद्गुरु श्री आद्यशंकराचार्य कृत श्रीमद्भगवद्गीताभाष्य के अनुसार:---

भाष्य:- नम: पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि तुभ्यम् अथ पृष्ठत: ते पृष्ठत: अपि च ते I नम: अस्तु ते सर्वत एव सर्वासु दिक्षु सर्वत्र स्थिताय हे सर्व अनन्तवीर्यामितविक्रम: अनन्तं वीर्यम् अस्य अमितो विक्रम: अस्य I

वीर्यं सामर्थ्यं विक्रम: पराक्रम: I वीर्यवान अपि कश्चित् शस्त्रादिविषये न पराक्रमते मन्दपराक्रमो वा I त्वं तु अनन्तवीर्य: अमितविक्रम: च इति अनन्तवीर्यामितविक्रम: I

सर्व समस्तं जगत् समाप्नोषि सम्यग् एकेन आत्मना व्याप्नोषि

Page 309 of 523

Page 310 of 523

यत: तस्माद् असि भवसि सर्व:, त्वया विना भूतं न किन्चिद्

अस्ति इत्यर्थ: II

अर्थ:- आपको आगे से अर्थात पूर्व दिशा में और पीछे से भी नमस्कार है I हे सर्वरूप! आपको सब ओर से नमस्कार है अर्थात सर्वत्र स्थित हुए आपको सब दिशाओं में नमस्कार है I आप अनन्तवीर्य और अपार पराक्रम्वाले हैं I

वीर्य सामर्थ्य को कहते हैं और विक्रम पराक्रम को I कोई व्यक्ति सामर्थ्यवान् होकर भी शस्त्रादि चलाने में पराक्रम नहीं दिखा सकता, अथवा मन्दपराक्रमी होता है I परन्तु आप तो अनन्तवीर्य और अमित पराक्रम से युक्त हैं I इसलिये आप अनन्तवीर्य और अमितपराक्रमी हैं I

आप अपने एक स्वरूप से सारे जगत् को व्याप्त किये हुए स्थित हैं, इसलिए आप सर्वरूप हैं, अर्थात आपसे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है I

स्वामी रामसुखदास ने साधक-संजीवनी में इस प्रकार लिखा है:-

हे सर्व I आपको आगे से नमस्कार हो I पीछे से नमस्कार हो I सब ओर से ही नमस्कार हो I हे

Page 310 of 523

Page 311 of 523

अनन्तवीर्य I अमित विक्रम वाले आपने सबको समावृत कर रख है; अत: सबकुछ आप ही हैं I

व्याख्या— ‘नाम: पुरस्तादच पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व’--- अर्जुन भयभीत है I मैं क्या बोलूं---यह उनकी समझ में नहीं आ रहा है I इसलिए वे आगे से, पीछे से, सब ओर से अर्थात दसों

दिशाओं से केवल नमस्कार- ही नमस्कार कर रहे हैं I

‘अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वम्’-- ‘अनन्तवीर्य’ कहने का तात्पर्य है की आप तेज, बल आदि से भी अनन्त हैं; और ‘अमितविक्रम’ कहने का तात्पर्य है की आप के पराक्रमयुक्त संरक्षण आदि कार्य भी असीम हैं I इस तरह आपकी शक्ति भी अनन्त है और पराक्रम भी अनन्त हैI

‘सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्व:’--- आपने सबको समावृत कर रखा

है अर्थात सम्पूर्ण संसार आपके अन्तर्गत है I संसार का कोई भी अंश ऐसा नहीं है, जो की आपके अन्तर्गत न हो I

यहां अर्जुन एक बड़ी अलौकिक, विलक्षण बात देख रहे हैं की भगवान् अनन्त सृष्टियों में

Page 311 of 523

Page 312 of 523

परिपूर्ण, व्याप्त हो रहे हैं, और अनन्त सृष्टियाँ भगवान् के किसी अंश में हैं I

ज्ञानेश्वरी गीता में अध्याय के 39-40 श्लोक का अर्थइस प्रकार बताया गया है----

हे देव! ऐसी कौन-सी वस्तु है जिसमेंआप नहीं हैं, ऐसी कौन सी जगह है जहाँ आप नहीं हैं । पर अब इन बातों को छोड़िये I आप चाहे जैसे हों, मैं आपको नमन करता हूँ । हे अनन्त! आप वायु हैं,

सबका नियमन करने वाले यम हैं और प्राणिमात्र में रहने वाले अग्नि भी हैं I आप वरुण और सोम हैं I आप ही सृष्टि कर्ता ब्रह्मा और उस विश्वपितामह ब्रह्मा के आदि जनक हैं I इसके अतिरिक्त और जो-जो रूप हों अथवा अरूप हों; वह सब आप ही हैं I ऐसे जगन्नाथ भगवान् को मैं नमन करता हूँ I पाण्डुपुत्र अर्जुन ने इस प्रकार अनुरागयुक्तचित्त से भगवान् को नमन करके फिर कहना आरम्भ किया । “हे प्रभो! मैं आपको नमस्कार करता हूँ”। तदनन्तर, उसने (अर्जुन ने) भगवान् की श्रीमूर्ति को आपादमस्तक ठीक तरह देख कर बारम्बार नमस्ते, नमस्ते कहा । उस मूर्ति के पृथक्-पृथक् अवयवों को देख कर उसे अत्यन्त समाधान हुआ और उसने फिर कहा कि हे

Page 312 of 523

Page 313 of 523

प्रभो! नमस्ते, नमस्ते । इस चराचर जगत् के प्राणिमात्र में उन्हीं को देख कर उसने फिर कहा कि हे प्रभो, नमस्ते, नमस्ते । उसे इस प्रकार प्रभु के अत्यन्त आश्चर्यजनक अनन्त स्वरूपों का जैसे-जैसे स्मरण होने लगा वैसे- वैसे वह नमस्ते-नमस्ते कहने लगा । उसकी समझ में ही नहीं आता था कि इसके अलावा भगवान् की और कौन-सी स्तुति की जाय तथा उससे मौन भी नहीं रहा जाता था उसे इस बात का भी ज्ञान नहीं रहा कि प्रेमावेश में मैं क्या बका जा रहा हूँ । किंबहुना, उसने हजारों बार नमस्कार किया और फिर उसने कहा—“हे श्रीहरि! मैं आपके सम्मुख नमस्कार करता हूँ । मुझे इस बात से कुछ भी सरोकार नहीं है कि प्रभु के पीठ अथवा पेट हैं अथवा नहीं, पर फिर भी हे स्वामी! मैं आपके पृष्ठ-प्रान्त को भी नमस्कार करता हूँ । आप मेरे पृष्ठ भाग में मेरे पर्क्ष में खड़े हैं, इसीलिए मैं आपके पृष्ठ-प्रान्त का नाम लेता हूँ; परन्तु वास्तव में आप न तो संसार के सम्मुख ही हैं और न उसकी पीठ के पीछे ही हैं। मैं आपके अलग-अलग अवयवों का वर्णन नहीं कर सकता; इसलिए हे सर्वात्मक देव! मैं आपके सर्वरूप को ही नमस्कार करता हूँ । हे महाराज! जिसकी शक्ति-

Page 313 of 523

Page 314 of 523

सामर्थ्य अनन्त है, जो अमित पराक्रमी है, जो सभी कालों में समान रूप से रहने वाला है, जो सर्वरूप है, उसे मेरा नमस्कार है । जैसे आकाश ही समस्त आकाश को आच्छादित करके अवकाश रूप से रहता है, वैसे ही आप भी अपने सर्वत्व से सब में व्याप्त रहते हैं । किंबहुना, आप ही अखिल विश्व हैं; परन्तु जैसे क्षीरसिन्धु में क्षीर की ही लहरें उठती हैं, ठीक वैसे ही यह सम्बन्ध है । इसीलिए, हे देव! अब यह बात मेरे अंत:करण में ठीक-ठीक बैठ गयी है कि आप इस सारे संसार से भिन्न नहीं हैं और यह सबकुछ आप ही हैं ।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक द्वारा लिखित गीतारहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र में इसप्रकार बताया है---

हे सर्वात्मक! तुम्हें सामने से नमस्कार है, पीछे से नमस्कार है और सभी ओर से तुम को नमस्कार है I तुम्हारा वीर्य अनंत है और तुम्हारा प्रक्रम अतुल है I सबका समापन करनेवाले हो, इसलिए तुम्हीं ‘सर्व’ हो I [सामने से नमस्कार, पीछेसे नमस्कार, ये शब्द परमेश्वर कि सर्वव्यापकता दिखलाते हैं उपनिषदों में ब्रह्म का ऐसा वर्णन है, कि “ब्रह्मैवेदं विश्वमिद् वरिष्ठम्” (मुण्डक

Page 314 of 523

Page 315 of 523

2 खंड 2 श्लोक 2 व 11 छान्दोग्योपनिषद प्रपाठक 7 खंड 25), उसी के अनुसार भक्ति- मार्ग की यह नमनात्मक स्तुति है I]

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् I

न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिक: कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव II (श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 11 श्लोक 43)

अन्वय:- त्वम् अस्य लोकस्य चराचरस्य पिता असि पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् त्वत्समो अत्यभ्यधिक: न अस्ति, कुतो अन्यो लोकत्रये अपि अप्रतिम प्रभाव II

शब्दार्थः- त्वम्---आप; अस्य—इस; लोकस्य--- लोक के; चराचरस्य-

--जड़-चेतन; पिता---पिता; असि---है; पूज्य— पूजनीय; च---और; गुरुर्गरीयान्-----प्रभाव वाले; त्वत्समो---आप जैसा, आप के सामान; अत्यभ्यधिक:---आप से भी अधिक; न अस्ति---नहीं है; कुतो—कहीं; अन्यो—दूसरा; लोकत्रये--- तीनों लोकों में; अपि—भी; अप्रतिम---जिसका प्रतिद्वंदी न हो, अनुपम; प्रभाव---प्रभाव;

Page 315 of 523

Page 316 of 523

अर्थ:- आप इस लोक के जड़-चेतन, के पिता हैं, अति पूजनीय गुरु और अत्यधिक प्रभावशाली हैं I तीनों लोकों में आपसे अधिक तो कहाँ, आपका कोई प्रतिद्वंदी भी नहीं है II

डॉ॰ सर्वेपल्लि राधाकृष्णन् के मतानुसार अर्थ इस प्रकार किया गया है:--

तू इस सारे चराचर जगत् का पिता है! तू इस संसार का पूजनीय है और आदरणीय गुरु है! हे अनुपम महिमा वाले, तीनों लोकों मे कोई तेरे सामान ही नहींफिर, तो फिर तुझसे अधिक तो हो ही किस प्रकार सकता है I

जगद्गुरु श्री आद्यशंकराचार्य कृत श्रीमद्भगवद्गीताभाष्य के अनुसार:---

भाष्य:-- पिता असि जनयिता असि लोकस्य प्राणिजातस्य चराचरस्य स्थावरजङगमस्य, न केवलं त्वम् अस्य जगत: पिता पूज्य: च पूजार्हो यतो गुरु: गरीयान् गुरुतर: I कस्मात् गुरुतर: त्वम् इति आह---

न च त्वत्सम: त्वत्तुल्य: अन्य: अस्ति I न हि ईश्वरद्वयं सम्भवति अनेकेश्वरत्वे व्यवहारानुपपत्ते: I त्वत्सम एव तावद् अन्यो

Page 316 of 523

Page 317 of 523

न सम्भवति कुत एव अन्य: अभ्यधिक: स्यात् I लोकत्रये अपि सर्वास्मिन् अप्रतिमप्रभाव!

प्रतिमीयते यया सा प्रतिमा, न विद्यते प्रतिमा यस्य तव प्रभावस्य स त्वम् अप्रतिमप्रभाव:, हे अप्रतिमप्रभाव निरतिशयप्रभाव इत्यर्थ:II
अर्थ:-- इस स्थावर-जंगमरूप समस्त जगत् के यानी प्राणिमात्र के उत्पन्न करने वाले पिता हैं I केवल पिता ही नहीं, आप पूजनीय भी हैं, क्योंकि आप बड़े-से बड़े गुरु हैं I

हे अप्रतिमप्रभाव! सारी त्रिलोकी में आपके सामान दूसरा कोई नहीं है; क्योंकि अनेक ईश्वर मान लेने पर व्यवहार सिद्ध नहीं हो सकता I इसलिए ईश्वर दो नहीं हो सकते I जबकि सारे त्रिभुवन में आपके सामान ही दूसरा कोई नहीं है, फिर अधिक तो कोई हो ही कैसे सकता है ?

जिससे किसी वास्तु की समानता की जाय उसका नाम ‘प्रतिमा’ है, जिन आपके प्रभाव की कोई प्रतिमा नहीं है, वह आप अप्रतिमप्रभाव हैं I इस प्रकार हे अप्रतिमप्रभाव! अर्थात हे निरतिशयप्रभाव!

Page 317 of 523

Page 318 of 523

स्वामी रामसुखदास ने साधक-संजीवनी में इस प्रकार लिखा है:-

आप ही इस चराचर संसार के पिता हैं, आप ही पूजनीय हैं और आप ही गुरुओं के महान गुरु हैं I हे अनन्त प्रभावशाली भगवन् I इस त्रिलोकी में आपके सामान भी दूसरा कोई नहीं है, फिर अधिक तो हो ही कैसे सकता है I

व्याख्या— ‘पितासि लोकस्य चराचरस्य’--- अनेक ब्रम्हाण्डों में

मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि जितने जङगम प्राणी हैं, और वृक्ष, लता आदि जितने स्थावर प्राणी हैं, उन सबको उत्पन्न करने वाले और उनका पालन करने वाले पिता भी आप हैं, उनके पूजनीय भी आप हैं तथा उनको शिक्षा देनेवाले महान् गुरु भी आप ही हैं-- ‘त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्’ !---------------

‘गुरुर्गरीयान’ का तात्पर्य है की मनुष्य मात्र को व्यवहार और परमार्थ में जहां-कहीं भी गुरुजनों से शिक्षा मिलाती है, उन शिक्षा देने वाले गुरुओं के भी महान् गुरु आप ही हैं अर्थात् मात्र शिक्षा का, मात्र ज्ञान का उद्गम-स्थान आप ही हैं I

Page 318 of 523

Page 319 of 523

‘न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिक: कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव’---- इस त्रिलोकी में जब आपके सामान भी कोई नहीं है, कोई होगा नहीं और कोई हो सकता ही नहीं, तब आपसे अधिक विलक्षण कोई हो ही कैसे सकता है? इसलिए आपका प्रभाव अतुलनीय है, उसकी तुलना किसी से भी नहीं की जा सकती I

ज्ञानेश्वरी गीता में इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार बताया गया है----

हे देव! अब आपकी वास्तविक महिमा मेरी समझ में पूरी तरह से आ गयी है । आप ही इस चराचर जगत् के जन्मस्थान हैं; आप जी हरि और हर इत्यादि समस्त देवताओं के परम देवता हैं । वेदों को भी आप से ही ज्ञान प्राप्त हुआ है और आप ही आदि गुरु हैं । हे श्रीराम! आप भूतमात्र के साथ समानभाव से व्यवहार करते हैं । आप समस्त गुणों में अप्रतिम और अद्वितीय हैं । यह कहने की आवश्यकता ही क्या है कि आपके समान दूसरा कोई नहीं है । आप आकाश हैं और आप में ही यह सारा संसार समाविष्ट है । ऐसी स्थिति में यह कहना सिर्फ लज्जा का विषय है कि आपकी ही भांति और कोई सर्वव्यापी है । अब इस सम्बन्ध में और अधिक क्या कहा जाय! अतएव

Page 319 of 523

Page 320 of 523

त्रिभुवन में एकमात्र आप ही अद्वितीय हैं । आपकी समकक्षता का अथवा आप से बढ़ कर दूसरा कोई नहीं है । आपकी महीमा अलौकिक और अवर्णनीय है ।”

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक द्वारा लिखित गीतारहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र में इसप्रकार बताया है---इस चराचर जगतके पिता तुम्हीं हो,तुम पूज्य हो, और गुरु के भी गुरु हो I त्रैलोक्यभर में तुम्हारी बराबरी का कोई नहीं है I फिर हे अतुलप्रभाव! अधिक खान से होगा?

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् I

पितेव पुत्रस्य सखेव सख्यु: प्रिय: प्रियायार्हसि देव सोढुम् II

(श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 11 श्लोक 44)

अन्वय:-- तस्मात् अहम् ईश मीड्यम प्रणम्य कायं प्रणिधाय तवाम् प्रसादये I देव पितेव पुत्रस्य सखेव सख्यु: प्रिय: प्रियाया सोढुम् अर्हसि I

शब्दार्थः—तस्मात्---इसीलिए, इसी कारण से; अहम्---मैं; ईश—परमात्मा; मीड्यम---बोधक;

Page 320 of 523

Page 321 of 523

प्रणम्य---प्रणाम करके; कायं—शरीर को; प्रणिधाय---पूजा के लिए,निवेदित करना, अर्पित करना; तवाम्---आपको; प्रसादये---प्रसन्न करने के लिये; देव—प्रभु; पितेव—पिता ही; पुत्रस्य—पुत्र का; सखेव—सखा ही; सख्यु:--- सखा के लिये; प्रिय:---पति; प्रियाया---पत्नी का; सोढुम्---सहनशील; अर्हसि---योग्य होता है;

अर्थ:- इसीलिए मैं परमात्मा का बोध करवाने वाले इस शरीर को आप ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए, आपको प्रणाम करके अर्पित करता हूं I हे प्रभु! पिता जैसे पुत्र के लिए, सखा जैसे सखा के लिय और पति जैसे पत्नी के लिए अपराध करने पर सहनशीलता दिखाते हैं वैसे ही आप भी मेरे अपराध सहन करने योग्य हैं I

डॉ॰ सर्वेपल्लि राधाकृष्णन् के मतानुसार अर्थ इस प्रकार किया गया

है:--

इसलिए प्रणाम करके और अपने शारीर को तेरे सम्मुख साष्टांग

झुकाकर मैं तुझ आराधनीय प्रभु को प्रसान करना चाहता हूं I हे देव, तु मेरे व्यवहार को उसी प्रकार क्षमा कर, जैसे पिता पुत्र के, या

Page 321 of 523

Page 322 of 523

मित्र मित्र के या प्रेमी अपने प्रिय के व्यवहार को सहन करता हैI

जगद्गुरु श्री आद्यशंकराचार्य कृत श्रीमद्भगवद्गीताभाष्य के अनुसार:---

भाष्य:- तस्मात् प्रणम्य नमस्कृत्य प्रणिधाय प्रकर्षेण नीचै: धृत्वा कायं शरीरं प्रसादये प्रसादं कारये त्वाम् अहम् ईषम् ईशितारम् ईड्यं स्तुत्यम्! त्वं पुन: पुत्रस्य अपराधं पिता यथा क्षमते सर्वं सखा इव च सख्यु: अपराधं यथा वा प्रियाया अपराधं प्रिय:क्षमते एवम् अर्हसि हे देव सोढुं प्रसाहितुं क्षन्तुम् इत्यर्थ: II

अर्थ:- इसीलिये मैं अपने शरीर को भली प्रकार नीचा करके अर्थात आपके चरणों में रख कर प्रणाम करके स्तुति करने योग्य शासन-करता आप ईश्वर को प्रसन्ना करता हूं I अर्थात आपसे अनुग्रह करता हूं I जैसे पुत्र का समस्त अपराध पिता क्षमा करता है तथा जैसे मित्र का अपराध मित्र अथवा प्रिया (पत्नी) का अपराध प्रिय (पति) क्षमा करता है---सहन करता है,

Page 322 of 523

Page 323 of 523

वैसे ही हे देव I आपको भी (मेरे समस्त अपराधों को सर्वथा) सहन करना अर्थात क्षमा करना उचित

है I

स्वामी रामसुखदास ने साधक-संजीवनी में इस प्रकार लिखा है:-

इसलिये शरीर से लम्बा पड़कर स्तुति करने योग्य आप ईश्वर को मैं प्रणाम करके प्रसन्न करना चाहता हूं I जैसे पिता पुत्र के, मित्र मित्र के और पति पानी के अपमान को श लेता है, ऐसे ही हे देव I आप मेरे द्वारा किया गया अपमान सहने में समर्थ हैं I

व्याख्या---‘तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमी-

ड्यम्’

----- आप अनन्त ब्रम्हाण्डों के ईश्वर
हैं I इसलिए सबके द्वारा स्तुति करने योग्य आप ही हैं! आपके गुण, प्रभाव, महत्त्व आदि अनन्त हैं, अत: ऋषि, महर्षि, देवता,महापुरुष आपकी नित्य-निरन्तर स्तुति करते रहें, तो भी पार नहीं प् सकते I ऐसे स्तुति करने योग्य आपकी मैं क्या स्तुति कर सकता हूं? मेरेमें आपकी स्तुति करने का बल नहीं है, सामर्त्य

Page 323 of 523

Page 324 of 523

नहीं है! इसलिए मैं तो केवल आपके चरणों में लंबा पड़कर दण्डवत् प्रणाम ही कर सकता हूं और इसी से आपको प्रसन्न करना चाहता हूं I

‘पितेव पुत्रस्य सखेव सख्यु: प्रिय: प्रियायार्हसि देव सोढुम्’—किसीका अपमान होता है तो उसमें मुख्य तीन कारण होते हैं-----(1) प्रमाद— (असावधानी-) से (2) हँसी— दिल्लगी, विनोद में ख्याल न रहने से और (3) अपनेपन की घनिष्ठता होने पर अपने

साथ रहने वाले का महत्त्व न जानने से I

जैसे, गोदी में बैठा हुआ छोटा बच्चा अज्ञानवश पिता की दाढ़ी-मूँछ खींचता है, मुंह पर थप्पड़ लगाता है, कभी कहीं लात मार देता है तो बच्चे की चेष्टा देख कर पिता राजी ही होते हैं, प्रसन्न ही होते हैं I वे अपने में यह भाव लाते ही नहीं पुत्र मेरा अपमान कर रहा है I

मित्र मित्र के साथ चलते--फिरते, उठाते- बैठते आदि, समय चाहे जैसा व्यवहार करता है, चाहे जैसा बोल देता है जैसे---‘तुम बड़े सत्य बोलते हो जी I तुम तो बड़े सत्यप्रतिज्ञ हो I अब तो तुम बड़े आदमी हो गए हो I तुम तो खूब

Page 324 of 523

Page 325 of 523

अभिमान करने लग गये हो I आज मानो तुम राजा ही बन गए हो I आदि, पर उसका मित्र उसकी इन बातों का ख्याल नहीं करता I वह तो यही समझता है की हम बराबरी के मित्र हैं, ऐसी हँसी-दिल्लगी तो होती ही रहती है I पत्नी के द्वारा आपस के प्रेम के कारण उठने-बैठने, बातचीत करने आदि में पति की जो कुछ अवहेलना होती है, उसे पति सह लेता है I जैसे, पति नीचे बैठा है तो वह ऊंचे आसन पर बैठ जाती है, कभी किसी बात को लेकर अवहेलना भी कर देती है, पर पति उसे स्वाभाविक ही सह लेता है I अर्जुन कहते हैं कि जैसे पिता पुत्र के, मित्र मित्र के और पति पत्नी के अपमान को सह लेता है अर्थात् क्षमा कर देता है, ऐसे ही भगवन् I आप मेरे अपमान को सहने में

समर्थ हैं अर्थात् इसके लिए मैं आपसे क्षमा मांगता हूं I

ज्ञानेश्वरी गीता में इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार बताया गया है----अर्जुन ने ये सब बातें कह कर भगवान् को दण्डवत् किया और तत्क्षण ही उसके शरीर में सात्त्विक भावों की बाढ़—सी आ गयी । फिर वह गद्गद स्वर से कहने लगा “हे प्रभु! आप प्रसन्न हों ।इस

Page 325 of 523

Page 326 of 523

अपराधसिन्धु से मुझे निकालें । आप समस्त जगत् के सुहृद है; पर मैंने भाईचारेके नाते से कभी आपका विशेष सम्मान नहींकिया । हे विश्वेश्वर! आपके साथ मैंने ऐसा आश्चर्यजनक और लज्जास्पद आचरण किया है । यदि सचमुच देखा जाय तो प्रशंसा के पात्र स्वयं आप ही थे; पर आपने भरी सभा में मेरी प्रशंसा की और मैं अहंकार पूर्वक बैठा हुआ डींगहाँकता रहा । हे मुकुन्द! मेरे ऐसे अपराधों का कहीं अन्त नहीं है । इसलिये आप इन अपराधों से मुझे उबारें । मुझ में तो इस प्रकार की क्षमा- याचना करने की योग्यता नहीं है । परन्तु जिस प्रकार बालक अपने पिता के समक्ष बड़े प्रेम से बोलता है और यदि उसका अपराध भी होता है, तो भी जिस प्रकार पिता अपने चित्त में परायेपन का भाव न रख कर प्रेम से उसके समस्त अपराध क्षमा कर देता है, उसी प्रकार आप भी मेरे सारे अपराध क्षमा करेंगे, मित्र का अपराध मित्र ही सहन करते हैं । बस इसी प्रकार आप भी मेरा अपराध सहन करें । जैसे कोई प्रेमी व्यक्ति अपने किसी प्रेमी व्यक्ति से सम्मान की कामना नहीं करता, वैसे ही हे देव! आपने जो मेरे घर में जूठन उठायी और मैंने आपको उठाने दी, उसके लिये भी आप मुझे क्षमा

Page 326 of 523

Page 327 of 523

करें अथवा जिस समय किसी घनिष्ठ और प्रियजन से भेंट होती है, उस समय संसार में अनुभव किये हुए समस्त संकटोंका वर्णन करने में कोई संकोच नहीं होता अथवा जब अपना तन, मन, और आत्मा-इन तीनों को पूर्ण रूप से अपने पति को समर्पित कर चुकी कोई पतिपरायणा स्त्री मिलती है, तब उसके साथ बिना खुले दिल से बातें किये रहा ही नहीं जाता । इसी प्रकार, हे गोस्वामी! मैंने भी आपसे विनती की है। इसके अतिरिक्तयेबातें कहने का और भी एक कारण है ।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक द्वारा लिखित गीतारहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र में इसप्रकार बताया है---
तुम स्तुत्य और समर्थ हो, इसलिए शरीर झुकाकर नमस्कार करके तुमसे प्रार्थना करता हूँ, कि ‘प्रसन्न हो जाओ’ I जिसप्रकार पिता अपने पुत्र के, अथवा सखा अपने सखाके, अपराध क्षमा करता है, उसी प्रकार हे देव! प्रेमी आपको प्रिय के अर्थात् अपने प्रेमपात्र के (अर्थात् मेरे सब) अपराध क्षमा करने चाहिए I

Page 327 of 523

[कुछ लोग "प्रियः प्रियायार्हसि" इन शब्दोंका "प्रिय पुरुष जिस प्रकार अपनी प्रिय स्त्रीके' ऐसा अर्थ करते हैं। परतु हमारे मतमें यह ठीक नहीं है। क्योंकि व्याकरणकी रीतिसे 'प्रियायाऽर्हसि'के प्रियायाः + अर्हसि अथवा प्रियायै + अर्हसि ऐसे पद नहीं किये जा सकते. और उपमाद्योतक 'इव' शब्दभी इस श्लोकमें दो बारही आया है। "अतः प्रियः प्रियायार्हसि" को तीसरी उपमा न समझकर उपमेय माननाही अधिक प्रशस्त है। 'पुत्रके' (पुत्रस्य), 'सखाके' (सख्युः), इन दोनों उपमानात्मक षठचन्त शब्दोंके समान आदि उपमेयमेंभी 'प्रियस्य' (प्रियके) यह षष्ठचन्त पद होता, तो बहुत अच्छा होता। परंतु अब 'स्थितस्य गतिश्चिन्तनीया' इस न्यायके अनुसार यहाँ व्यवहार करना चाहिये। हमारी समझमें यह बात बिलकुल युक्तिसंगत नहीं दीख पड़ती, कि 'प्रियस्य' इस षष्ठचन्त पुलिंग, पदके अभावमें, व्याकरणके विरुद्ध 'प्रियायाः' यह षष्ठचन्त स्त्रीलिंगका पद किया जावे, और जब वह अर्जुनके लिये लागू न हो सके तब, 'इव' शब्दको अध्याहार मानकर प्रियः प्रियायाः" – प्रेमी अपनी प्यारी स्त्रीके – ऐसी तीसरी उपमा मानी जावे, और वहभी शृंगारिक अतएव अप्रासंगिक हो। इसके सिवा एक और बात है, कि पुत्रस्य सख्युः, प्रियायाः, इन तीनों पदोंके उपमानमें चले जानेसे उपमेयमें षष्ठचन्त पद बिलकुलही नहीं रह जाता, और 'मे' अथवा 'मम' पदका फिरभी अध्याहार करना पड़ता है; एवं इतनी माथा-पच्ची करनेपर उपमान और उपमेयमें जैसे तैसे विभक्तिकी समता हो गई, तोभी दोनोंमें लिंगकी विषमताका नया दोष बनाही रहता है। दूसरे पक्षमें – अर्थात् प्रियाय + अर्हसि ऐसे व्याकरणकी रीतिसे शुद्ध और सरल पद किये जावें, तो उपमेयमें – जहाँ षष्ठी होनी चाहिये, वहाँ 'प्रियाय' यह चतुर्थी आती है, – बस; इतनाही दोष रहता है और यह दोषभी विशेष महत्त्वका नहीं है। क्योंकि षष्ठीका अर्थ यहाँ चतुर्थीका-सा है और अन्यत्रभी कई बार ऐसा होता है। परमार्थप्रपा टीकामें इस श्लोकका अर्थ वैसाही है, जैसा कि हमने किया है।]

"नारायणाथर्वशीर्षोपनिषत् " के अनुसार स्तुति -

(ऊँ सहनाववतु ......)

ऊँ अथ पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत प्रजाः
सृजायेति । नारायणात् प्राणो जायते। मनः
सर्वेन्द्रियाणि च ।

Page 329 of 523

खं ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ।
नारायणाद् ब्रह्मा जायते। नारायणाद् रुद्रो जायते । नारायणादिन्द्रो जायते ।

नारायणाद् प्रजापतयः प्रजायन्ते ।
नारायणाद् द्वादशादित्या रुद्रा वसवः सर्वाणि च छन्दांसि । नारायणादेव समुत्पद्यन्ते। नारायणे प्रवर्तन्ते ।
नारायणे प्रलीयन्ते ॥१॥

ऊँ। अथ नित्यो नारायणः । ब्रह्मानारायणः ।
शिवश्च नारायणः । शक्रश्च नारायणः ।
द्यावापृथिव्यौ च नारायणः । कालश्च नारायणः ।
दिशश्च नारायणः । ऊर्ध्वश्च नारायणः ।
अधश्च नारायणः । अन्तर्बहिश्च नारायणः । नारायण एवेदं सर्वम् । यद्भूतं यच्च भव्यम् । निष्कलो निरञ्जनो निर्विकल्पो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणः । न द्वितीयोऽस्ति कश्चित् । य एवं वेद । स विष्णुरेव भवति स विष्णुरेव भवति॥२॥

ओमित्यग्रे व्याहरेत् । नम इति पश्चात्। नारायणायेत्युपरिष्टात् ।

ओमित्येकाक्षरम् । नम इति द्वे अक्षरे ।
नारायणायेति पञ्चाक्षराणि। एतद्वै नारायणस्याष्टाक्षरं पदम् ।यो ह वै नारायणस्याष्टाक्षरं पदमध्येति ।

Page 329 of 523

Page 330 of 523

अनपब्रुवः सर्वमायुरेति । विन्दते प्राजापत्यं रायस्पोषं गौपत्यम् । ततोऽमृतत्वमश्नुते ततोऽमृतत्वमश्नुत इति ।
य एवं वेद ॥३॥

प्रत्यगानन्दं ब्रह्म पुरुषं प्रणवस्वरूपम् । अकार उकार मकार
इति। तानेकधा समभवत्तदेतदोमिति । यमुक्त्वा मुच्यते योगी जन्मसंसार-बन्धनात् । ऊँ नमो नारायणायेति मन्त्रोपासकः । वैकुण्ठभुवनलोकं गमिष्यति । तदिदं परं पुण्डरीकं विज्ञानघनम् । तस्मात् तडिदाभमात्रम् । ब्रह्मण्यो देवकीपुत्रो ब्रह्मण्यो मधुसूदनोम् ।

सर्वभूतस्थमेकं नारायणम् । कारणरूपमकार परब्रह्मोम् । एतदथर्वशिरो योऽधीते प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति । सायमधीयानो

दिवसकृतं पापं नाशयति । माध्यन्दिनमादित्याभिमुखोऽधीयानः पञ्चपातकोपपातकात् प्रमुच्यते ।
सर्ववेदपारायणपुण्यं लभते ।
नारायणसायुज्यमवाप्नोति नारायणसायुज्यमवाप्नोति । य एवं वेद ।
इत्युपनिषत् ॥४॥

“विष्णु सहस्र नाम” :------

Page 330 of 523

विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः ।
भूतकृद्भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः ॥ १॥

पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमा गतिः ।
❖ अव्ययः पुरुषस्साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च ॥२॥

योगो योगविदां नेता प्रधानपुरुषेश्वरः ।
नारसिंहवपुः श्रीमान् केशवः पुरुषोत्तमः ॥३॥

सर्वश्शर्वशिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः ।
❖ संभवो भावनो भर्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः ॥४॥

स्वयम्भूश्शम्भुरादित्यः पुष्कराक्षो महास्वनः ।
❖ अनादिनिधनो धाता विधाता धातुरुत्तमः ॥५॥

अप्रमेयो हृषीकेशः पद्मनाभोऽमरप्रभुः ।
विश्वकर्मा मनुस्त्वष्टा स्थविष्ठस्थविरो ध्रुवः ॥६॥

“□□□□□ □□□□□□ □□ 1000 □□□-“

□ □□□ □□□□□ □□□□□□□□□ □□:

□ □□□□□□ □□□□□□: □□□□□□□□ □□□-□□□□-□□□-□□□□□□ □
□□□-□□□ □□□-□□□ □□□□ □□□□□□□□ □□□□□□□□ □□ 1 □□

□□□□□□□□ □□□□□□□□ □ □□□□□□□□□ □□□□ □□□□□ □□□□□□ □□□□□ □□□□□□ □□□□□□□□□□□ □□□□□ □□ □ □□ 2 □□

Page 332 of 523

योगो योग-विदां नेता प्रधान-पुरुषेश्वरः ।
नारसिंह-वपुः श्रीमान केशवः पुरुषोत्तमः ।।
3 ।।

सर्वः शर्वः शिवः स्थाणु: भूतादि: निधि:
अव्ययः ।
संभवो भावनो भर्ता प्रभवः प्रभु: ईश्वरः ।।
4 ।।

स्वयंभूः शम्भु: आदित्यः पुष्कराक्षो
महास्वनः ।
अनादि-निधनो धाता विधाता धातुरुत्तमः ।। 5
।।

अप्रमेयो हृषीकेशः पद्मनाभो-अमरप्रभुः ।
विश्वकर्मा मनुस्त्वष्टा स्थविष्ठः
स्थविरो ध्रुवः ।। 6 ।।

अग्राह्यः शाश्वतः कृष्णो लोहिताक्षः
प्रतर्दनः ।
प्रभूतः त्रिककुब-धाम पवित्रं मंगलं परं ।।
7।।

ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः ।
हिरण्य-गर्भो भू-गर्भो माधवो मधुसूदनः ।। 8

Page 332 of 523

Page 333 of 523

।।

ईश्वरो विक्रमी धन्वी मेधावी विक्रमः क्रमः
।
अनुत्तमो दुराधर्षः कृतज्ञः कृति: आत्मवान
।। 9 ।।

सुरेशः शरणं शर्म विश्व-रेताः प्रजा-भवः ।
अहः संवत्सरो व्यालः प्रत्ययः सर्वदर्शनः
।। 10 ।।

अजः सर्वेश्वरः सिद्धः सिद्धिः सर्वादि:
अच्युतः ।
वृषाकपि: अमेयात्मा सर्व-योग-विनिःसृतः ।।
11 ।।

वसु:वसुमनाः सत्यः समात्मा संमितः समः ।
अमोघः पुण्डरीकाक्षो वृषकर्मा वृषाकृतिः
।। 12 ।।

रुद्रो बहु-शिरा बभ्रु: विश्वयोनिः शुचि- श्रवाः ।
अमृतः शाश्वतः स्थाणु: वरारोहो महातपाः ।।
13 ।।

सर्वगः सर्वविद्-भानु:विष्वक-सेनो जनार्दनः ।

Page 333 of 523

Page 334 of 523

वेदो वेदविद-अव्यंगो वेदांगो वेदवित् कविः ।। 14 ।।

लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षः
कृता-कृतः ।
चतुरात्मा चतुर्व्यूह:-चतुर्दंष्ट्र:- चतुर्भुजः ।। 15 ।।

भ्राजिष्णु भोजनं भोक्ता सहिष्णु: जगदादिजः
।
अनघो विजयो जेता विश्वयोनिः पुनर्वसुः ।।
16 ।।

उपेंद्रो वामनः प्रांशु: अमोघः शुचि:
ऊर्जितः ।
अतींद्रः संग्रहः सर्गो धृतात्मा नियमो यमः
।। 17 ।।
वेद्यो वैद्यः सदायोगी वीरहा माधवो मधुः।
अति-इंद्रियो महामायो महोत्साहो महाबलः ।।
18 ।।

महाबुद्धि: महा-वीर्यो महा-शक्ति: महा- द्युतिः।
अनिर्देश्य-वपुः श्रीमान अमेयात्मा
महाद्रि-धृक ।। 19 ।।

महेष्वासो महीभर्ता श्रीनिवासः सतां गतिः ।

Page 334 of 523

Page 335 of 523

अनिरुद्धः सुरानंदो गोविंदो गोविदां-पतिः
।। 20 ।।

मरीचि:दमनो हंसः सुपर्णो भुजगोत्तमः ।
हिरण्यनाभः सुतपाः पद्मनाभः प्रजापतिः ।।
21 ।।

अमृत्युः सर्व-दृक् सिंहः सन-धाता संधिमान
स्थिरः ।
अजो दुर्मर्षणः शास्ता विश्रुतात्मा
सुरारिहा ।। 22 ।।
गुरुःगुरुतमो धामः सत्यः सत्य-पराक्रमः ।
निमिषो-अ-निमिषः स्रग्वी वाचस्पति: उदार-धीः
।। 23 ।।

अग्रणी: ग्रामणीः श्रीमान न्यायो नेता
समीरणः ।
सहस्र-मूर्धा विश्वात्मा सहस्राक्षः
सहस्रपात ।। 24 ।।

आवर्तनो निवृत्तात्मा संवृतः सं-प्रमर्दनः
।
अहः संवर्तको वह्निः अनिलो धरणीधरः ।। 25 ।।

सुप्रसादः प्रसन्नात्मा विश्वधृक्-

Page 335 of 523

Page 336 of 523

विश्वभुक्-विभुः ।
सत्कर्ता सकृतः साधु: जह्नु:-नारायणो नरः ।।
26 ।।

असंख्येयो-अप्रमेयात्मा विशिष्टः शिष्ट-कृत्-शुचिः ।
सिद्धार्थः सिद्धसंकल्पः सिद्धिदः
सिद्धिसाधनः ।। 27।।
वृषाही वृषभो विष्णु: वृषपर्वा वृषोदरः ।
वर्धनो वर्धमानश्च विविक्तः श्रुति-सागरः
।। 28 ।।

सुभुजो दुर्धरो वाग्मी महेंद्रो वसुदो वसुः
।
नैक-रूपो बृहद-रूपः शिपिविष्टः प्रकाशनः ।।
29 ।।

ओज: तेजो-द्युतिधरः प्रकाश-आत्मा प्रतापनः ।
ऋद्धः स्पष्टाक्षरो मंत्र:चंद्रांशु:
भास्कर-द्युतिः ।। 30 ।।

अमृतांशूद्भवो भानुः शशबिंदुः सुरेश्वरः ।
औषधं जगतः सेतुः सत्य-धर्म-पराक्रमः ।। 31
।।

Page 336 of 523

Page 337 of 523

भूत-भव्य-भवत्-नाथः पवनः पावनो-अनलः ।
कामहा कामकृत-कांतः कामः कामप्रदः प्रभुः
।। 32 ।।
युगादि-कृत युगावर्तो नैकमायो महाशनः ।
अदृश्यो व्यक्तरूपश्च सहस्रजित्-अनंतजित
।। 33 ।।

इष्टो विशिष्टः शिष्टेष्टः शिखंडी नहुषो
वृषः ।
क्रोधहा क्रोधकृत कर्ता विश्वबाहु: महीधरः
।। 34 ।।

अच्युतः प्रथितः प्राणः प्राणदो वासवानुजः
।
अपाम निधिरधिष्टानम् अप्रमत्तः
प्रतिष्ठितः ।। 35 ।।
स्कन्दः स्कन्द-धरो धुर्यो वरदो वायुवाहनः
।
वासुदेवो बृहद भानु: आदिदेवः पुरंदरः ।। 36
।।

अशोक: तारण: तारः शूरः शौरि: जनेश्वर: ।
अनुकूलः शतावर्तः पद्मी पद्मनिभेक्षणः ।।
37 ।।

Page 337 of 523

Page 338 of 523

पद्मनाभो-अरविंदाक्षः पद्मगर्भः शरीरभृत ।
महर्धि-ऋद्धो वृद्धात्मा महाक्षो
गरुड़ध्वजः ।। 38 ।।

अतुलः शरभो भीमः समयज्ञो हविर्हरिः ।
सर्वलक्षण लक्षण्यो लक्ष्मीवान समितिंजयः
।। 39 ।।

विक्षरो रोहितो मार्गो हेतु: दामोदरः सहः ।
महीधरो महाभागो वेगवान-अमिताशनः ।। 40 ।।
उद्भवः क्षोभणो देवः श्रीगर्भः परमेश्वरः ।
करणं कारणं कर्ता विकर्ता गहनो गुहः ।। 41
।।

व्यवसायो व्यवस्थानः संस्थानः स्थानदो- ध्रुवः ।
परर्रद्वि परमस्पष्टः तुष्टः पुष्टः
शुभेक्षणः ।। 42 ।।

रामो विरामो विरजो मार्गो नेयो नयो-अनयः ।
वीरः शक्तिमतां श्रेष्ठ: धर्मो
धर्मविदुत्तमः ।। 43 ।।
वैकुंठः पुरुषः प्राणः प्राणदः प्रणवः पृथुः ।

Page 338 of 523

Page 339 of 523

हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नो व्याप्तो
वायुरधोक्षजः ।। 44।।
ऋतुः सुदर्शनः कालः परमेष्ठी परिग्रहः ।
उग्रः संवत्सरो दक्षो विश्रामो विश्व-दक्षिणः ।। 45 ।।

“शिवसहस्रनाम” —
ॐ श्रीगणेशाय नमः ।
पूर्वपीठिका
ॐकारनिलयं देवं गजवक्त्रं चतुर्भुजम् ।
पिचण्डिलमहं वन्दे सर्वविघ्नोपशान्तये ॥

श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करुणालयम् ।
नमामि भगवत्पादशङ्करं लोकशङ्करम् ॥

शङ्करं शङ्कराचार्यं केशवं बादरायणम् ।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनःपुनः ॥

वन्दे शम्भुमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं

Page 339 of 523

Page 340 of 523

वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनाम्पतिम् ।
वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं
शङ्करम् ॥

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर ।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः ॥

ऋषय ऊचुः-
सूत वेदार्थतत्त्वज्ञ शिवध्यानपरायण ।
मुक्त्युपायं वदास्मभ्यं कृपालो मुनिसत्तम
॥ १॥

कः सेव्यः सर्वदेवेषु को वा जप्यो मनुः सदा
।
स्थातव्यं कुत्र वा नित्यं किं वा
सर्वार्थसाधकम् ॥ २॥

श्रीसूत उवाच-
धन्यान्मन्यामहे नूनमनन्यशरणान्मुनीन् ।
वन्याशिनो वनेवासान्
न्यस्तमानुष्यकल्मषान् ॥ ३॥

Page 340 of 523

Page 341 of 523

भवद्भिः सर्ववेदार्थतत्त्वं ज्ञातमतन्द्रितैः ।
भवद्भिः सर्ववेदार्थो ज्ञात एवास्ति
यद्यपि ॥ ४॥

तथापि किञ्चिद्वक्ष्यामि यथा ज्ञातं मया
तथा ।
पुरा कैलासशिखरे सुखासीनं जगत्प्रभुम् ॥ ५॥

वेदान्तवेद्यमीशानं शङ्करं लोकशङ्करम् ।
विलोक्यातीव सन्तुष्टः षण्मुखः
साम्बमीश्वरम् ॥ ६॥

मत्वा कृतार्थमात्मानं प्रणिपत्य सदाशिवम्
।
पप्रच्छ सर्वलोकानां मुक्त्युपायं
कृताञ्जलिः ॥ ७॥

श्रीस्कन्द उवाच-
विश्वेश्वर महादेव विष्णुब्रह्मादिवन्दित
।
देवानां मानवानां च किं मोक्षस्यास्ति
साधनम् ॥ ८॥

तव नामान्यनन्तानि सन्ति यद्यपि शङ्कर ।

Page 341 of 523

Page 342 of 523

तथापि तानि दिव्यानि न ज्ञायन्ते मयाधुना ॥
९॥

प्रियाणि शिवनामानि सर्वाणि शिव यद्यपि ।
तथापि कानि रम्याणि तेषु प्रियतमानि ते ॥

तानि सर्वार्थदान्यद्य कृपया वक्तुमर्हसि
॥ १०॥

श्रीसूत उवाच-
कुमारोदीरितां वाचं सर्वलोकहितावहाम् ।
श्रुत्वा प्रसन्नवदनस्तमुवाच सदाशिवः ॥
११॥

श्रीसदाशिव उवाच-
साधु साधु महाप्राज्ञ सम्यक्पृष्ठं
त्वयाधुना ।
यदिदानीं त्वया पृष्टं तद्वक्ष्ये शृणु
सादरम् ॥ १२॥

एवमेव पुरा गौर्या पृष्टः काश्यामहं तदा ।
समाख्यातं मया सम्यक्सर्वेषां मोक्षसाधनम्
॥ १३॥

Page 342 of 523

Page 343 of 523

दिव्यान्यनन्तनामानि सन्ति तन्मध्यगं परम्
।
अष्टोत्तरसहस्रं तु नाम्नां प्रियतरं मम ॥
१४॥

एकैकमेव तन्मध्ये नाम सर्वार्थसाधकम् ।
मयापि नाम्नां सर्वेषां फलं वक्तुं न
शक्यते ॥ १५॥

तिलाक्षतैर्बिल्वपत्रैः कमलैः
कोमलैर्नवैः ।
पूजयिष्यति मां भक्त्या
यस्त्वेतन्नामसङ्ख्यया ॥ १६॥

स पापेभ्यः संसृतेश्च मुच्यते नात्र संशयः
।
ततो ममान्तिकं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥
१७॥

एकैकेनैव नाम्ना मां अर्चयित्वा दृढव्रताः ।
स्वेष्टं फलं प्राप्नुवन्ति सत्यमेवोच्यते
मया ॥ १८॥

एतन्नामावलीं यस्तु पठन्मां प्रणमेत्सदा ।

Page 343 of 523

Page 344 of 523

स याति मम सायुज्यं स्वेष्टं बन्धुसमन्वितः ॥ १९॥

स्पृष्ट्वा मल्लिङ्गममलं एतन्नामानि यः
पठेत् ।
स पातकेभ्यः सर्वेभ्यः सत्यमेव प्रमुच्यते
॥ २०॥

यस्त्वेतन्नामभिः सम्यक् त्रिकालं
वत्सरावधि ।
मामर्चयति निर्दम्भः स देवेन्द्रो
भविष्यति ॥ २१॥

एतन्नामानुसन्धाननिरतः सर्वदाऽमुना ।
मम प्रियकरस्तस्मान्निवसाम्यत्र सादरम् ॥
२२॥

तत्पूजया पूजितोऽहं स एवाहं मतो मम ।
तस्मात्प्रियतरं स्थानमन्यन्नैव हि
दृश्यते ॥ २३॥

हिरण्यबाहुरित्यादिनाम्नां शम्भुरहं ऋषिः
।
देवताप्यहमेवात्र शक्तिर्गौरी मम प्रिया ॥
२४॥

Page 344 of 523

Page 345 of 523

महेश एव संसेव्यः सर्वैरिति हि कीलकम् ।
धर्माद्यर्थाः फलं ज्ञेयं फलदायी सदाशिवः ॥
२५॥

ॐसौरमण्डलमध्यस्थं साम्बं संसारभेषजम् ।
नीलग्रीवं विरूपाक्षं नमामि शिवमव्ययम् ॥

॥ न्यासः ॥

ॐ अस्य
श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रमहामन्त्रस्य शम्भुरृषिः ।
अनुष्टुप् छन्दः । परमात्मा श्रीसदाशिवो देवता ।
महेश्वर इति बीजम् । गौरी शक्तिः ।
महेश एव संसेव्यः सर्वैरिति कीलकम् ।
श्रीसाम्बसदाशिव प्रीत्यर्थे मुख्यसहस्रनामजपे विनियोगः ।
॥ ध्यानम् ॥

शान्तं पद्मासनस्थं शशिधरमकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं
शूलं वज्रं च खड्गं परशुमभयदं दक्षभागे वहन्तम् ।

Page 345 of 523

Page 346 of 523

नागं पाशं च घण्टां वरडमरुयुतं चाङ्कुशं वामभागे
नानालङ्कारयुक्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि ॥

ॐ नमो भगवते रुद्राय ।
ॐ हिरण्यबाहुः सेनानीर्दिक्पतिस्तरुराट्
हरः ।
हरिकेशः पशुपतिर्महान् सस्पिञ्जरो मृडः ॥
१॥

विव्याधी बभ्लुशः श्रेष्ठः परमात्मा
सनातनः ।
सर्वान्नराट् जगत्कर्ता पुष्टेशो
नन्दिकेश्वरः ॥ २॥

आततावी महारुद्रः संसारास्त्रः सुरेश्वरः
।
उपवीतिरहन्त्यात्मा क्षेत्रेशो वननायकः ॥
३॥

रोहितः स्थपतिः सूतो वाणिजो
मन्त्रिरुन्नतः ।
वृक्षेशो हुतभुग्देवो
भुवन्तिर्वारिवस्कृतः ॥ ४॥

Page 346 of 523

उच्चैर्घोषो घोररूपः पत्तीशः पाशमोचकः ।
ओषधीशः पञ्चवक्त्रः कृत्स्नवीतो भयानकः ॥
५॥

सहमानः स्वर्णरेताः निर्व्याधिर्निरुपप्लवः
।
आव्याधिनीशः ककुभो निषङ्गी स्तेनरक्षकः ॥
६॥

मन्त्रात्मा तस्कराध्यक्षो वञ्चकः
परिवञ्चकः ।
अरण्येशः परिचरो निचेरुः स्तायुरक्षकः ॥ ७॥

प्रकृन्तेशो गिरिचरः कुलुञ्चेशो गुहेष्टदः
।
भवः शर्वो नीलकण्ठः कपर्दी त्रिपुरान्तकः ॥
८॥

व्युप्तकेशो गिरिशयः सहस्राक्षः सहस्रपात्
।
शिपिविष्टश्चन्द्रमौलिर्ह्रस्वो
मीढुष्टमोऽनघः ॥ ९॥

वामनो व्यापकः शूली वर्षीयानजडोऽणुः ।

Page 348 of 523

ऊर्व्यः सूर्म्योऽग्रियः शीभ्यः प्रथमः
पावकाकृतिः ॥ १०॥

आचारस्तारकस्तारोऽवस्वन्योऽनन्तविग्रहः ।
द्वीप्यः स्रोतस्य ईशानो धुर्यो गव्ययनो
यमः ॥ ११॥

पूर्वजोऽपरजो ज्येष्ठः कनिष्ठो विश्वलोचनः
।
अपगल्भो मध्यमोर्म्यो जघन्यो बुध्नियः
प्रभुः ॥ १२॥

प्रतिसर्योऽनन्तरूपः सोभ्यो याम्यो
सुराश्रयः ।
खल्योर्वर्योऽभयः क्षेम्यः श्लोक्यः पथ्यो
नभोऽग्रणीः ॥ १३॥

वन्योऽवसान्यः पूतात्मा श्रवः कक्ष्यः
प्रतिश्रवः ।
आशुषेणो महासेनो महावीरो महारथः ॥ १४॥

शूरोऽतिघातको वर्मी वरूथी बिल्मिरुद्यतः ।
श्रुतसेनः श्रुतः साक्षी कवची वशकृद्वशी ॥
१५॥

Page 348 of 523

Page 349 of 523

आहनन्योऽनन्यनाथो दुन्दुभ्योऽरिष्टनाशकः ।
धृष्णुः प्रमृश इत्यात्मा वदान्यो वेदसम्मतः ॥ १६॥

तीक्ष्णेषुपाणिः प्रहितः स्वायुधः
शस्त्रवित्तमः ।
सुधन्वा सुप्रसन्नात्मा विश्ववक्त्रः
सदागतिः ॥ १७॥

स्रुत्यः पथ्यो विश्वबाहुः काट्यो नीप्यो
शुचिस्मितः ।
सूद्यः सरस्यो वैशन्तो नाद्यः कूप्यो
ऋषिर्मनुः ॥ १८॥

सर्वो वर्ष्यो वर्षरूपः कुमारः कुशलोऽमलः ।
मेघ्योऽवर्ष्योऽमोघशक्तिः
विद्युत्योऽमोघविक्रमः ॥ १९॥

दुरासदो दुराराध्यो निर्द्वन्द्वो
दुःसहर्षभः ।
ईध्रियः क्रोधशमनो जातुकर्णः पुरुष्टुतः ॥
२०॥

आतप्यो वायुरजरो वात्यः कात्यायनीप्रियः ।

Page 349 of 523

Page 350 of 523

वास्तव्यो वास्तुपो रेष्म्यो विश्वमूर्धा
वसुप्रदः ॥ २१॥

सोमस्ताम्रोऽरुणः शङ्गः रुद्रः सुखकरः
सुकृत् ।
उग्रोऽनुग्रो भीमकर्मा भीमो भीमपराक्रमः ॥
२२॥

अग्रेवधो हनीयात्मा हन्ता दूरेवधो वधः ।
शम्भुर्मयोभवो नित्यः शङ्करः कीर्तिसागरः
॥ २३॥

मयस्करः शिवतरः खण्डपर्शुरजः शुचिः ।
तीर्थ्यः कूल्योऽमृताधीशः
पार्योऽवार्योऽमृताकरः ॥ २४॥

शुद्धः प्रतरणो मुख्यः शुद्धपाणिरलोलुपः ।
उच्च
उत्तरणस्तार्यस्तार्यज्ञस्तार्यहृद्गतिः ॥ २५॥

आतार्यः सारभूतात्मा सारग्राही दुरत्ययः ।
आलाद्यो मोक्षदः पथ्योऽनर्थहा सत्यसङ्गरः
॥ २६॥

Page 350 of 523

Page 351 of 523

शष्प्यः फेन्यः प्रवाह्योढा सिकत्यः सैकताश्रयः ।
इरिण्यो ग्रामणीः पुण्यः शरण्यः
शुद्धशासनः ॥ २७॥

वरेण्यो यज्ञपुरुषो यज्ञेशो यज्ञनायकः ।
यज्ञकर्ता यज्ञभोक्ता यज्ञविघ्नविनाशकः ॥
२८॥

यज्ञकर्मफलाध्यक्षो यज्ञमूर्तिरनातुरः ।
प्रपथ्यः किंशिलो गेह्यो गृह्यस्तल्प्यो
धनाकरः ॥ २९॥

पुलस्त्यः क्षयणो गोष्ठ्यो गोविन्दो
गीतसत्क्रियः ।
हृदय्यो हृद्यकृत् हृद्यो गह्वरेष्ठः
प्रभाकरः ॥ ३०॥

निवेष्प्यो नियतोऽयन्ता पांसव्यः
सम्प्रतापनः ।
शुष्क्यो हरित्योऽपूतात्मा रजस्यः
सात्विकप्रियः ॥ ३१॥

लोप्योलप्यः पर्णशद्यः पर्ण्यः पूर्णः पुरातनः ।

Page 351 of 523

Page 352 of 523

भूतो भूतपतिर्भूपो भूधरो भूधरायुधः ॥ ३२॥

भूतसङ्घो भूतमूर्तिर्भूतहा भूतिभूषणः ।
मदनो मादको माद्यो मदहा मधुरप्रियः ॥ ३३॥

मधुर्मधुकरः क्रूरो मधुरो मदनान्तकः ।
निरञ्जनो निराधारो निर्लुप्तो निरुपाधिकः
॥ ३४॥

निष्प्रपञ्चो निराकारो निरीहो निरुपद्रवः
।
सत्त्वः सत्त्वगुणोपेतः सत्त्ववित्
सत्त्ववित्प्रियः ॥ ३५॥

सत्त्वनिष्ठः सत्त्वमूर्तिः सत्त्वेशः
सत्त्ववित्तमः ।
समस्तजगदाधारः समस्तगुणसागरः ॥ ३६॥

समस्तदुःखविध्वंसी समस्तानन्दकारणः ।
रुद्राक्षमालाभरणो रुद्राक्षप्रियवत्सलः
॥ ३७॥

रुद्राक्षवक्षा रुद्राक्षरूपो रुद्राक्षपक्षकः ।

Page 352 of 523

Page 353 of 523

विश्वेश्वरो वीरभद्रः सम्राट्
दक्षमखान्तकः ॥ ३८॥

विघ्नेश्वरो विघ्नकर्ता
गुरुर्देवशिखामणिः ।
भुजगेन्द्रलसत्कण्ठो भुजङ्गाभरणप्रियः ॥
३९॥

भुजङ्गविलसत्कर्णो भुजङ्गवलयावृतः ।
मुनिवन्द्यो मुनिश्रेष्ठो
मुनिवृन्दनिषेवितः ॥ ४०॥

मुनिहृत्पुण्डरीकस्थो मुनिसङ्घैकजीवनः ।
मुनिमृग्यो वेदमृग्यो मृगहस्तो मुनीश्वरः
॥ ४१॥

मृगेन्द्रचर्मवसनो नरसिंहनिपातनः ।
मृत्युञ्जयो मृत्युमृत्युरपमृत्युविनाशकः
॥ ४२॥

दुष्टमृत्युरदुष्टेष्टः मृत्युहा
मृत्युपूजितः ।
ऊर्ध्वो हिरण्यः परमो निधनेशो धनाधिपः ॥
४३॥

Page 353 of 523

Page 354 of 523

यजुर्मूर्तिः साममूर्तिः ऋङ्मूर्तिर्मूर्तिवर्जितः ।
व्यक्तो व्यक्ततमोऽव्यक्तो व्यक्ताव्यक्तस्तमो जवी ॥ ४४॥

लिङ्गमूर्तिरलिङ्गात्मा
लिङ्गालिङ्गात्मविग्रहः ।
ग्रहग्रहो ग्रहाधारो ग्रहाकारो ग्रहेश्वरः
॥ ४५॥

ग्रहकृद् ग्रहभिद् ग्राही ग्रहो
ग्रहविलक्षणः ।
कल्पाकारः कल्पकर्ता कल्पलक्षणतत्परः ॥
४६॥

कल्पो कल्पाकृतिः कल्पनाशकः कल्पकल्पकः ।
परमात्मा प्रधानात्मा प्रधानपुरुषः शिवः ॥
४७॥

वेद्यो वैद्यो वेदवेद्यो
वेदवेदान्तसंस्तुतः ।
वेदवक्त्रो वेदजिह्वो विजिह्वो जिह्मनाशकः
॥ ४८॥

कल्याणरूपः कल्याणः कल्याणगुणसंश्रयः ।

Page 354 of 523

Page 355 of 523

भक्तकल्याणदो भक्तकामधेनुः सुराधिपः ॥ ४९॥

पावनः पावको वामो महाकालो मदापहः ।
घोरपातकदावाग्निर्दवभस्मकणप्रियः ॥ ५०॥

अनन्तसोमसूर्याग्निमण्डलप्रतिमप्रभः ।
जगदेकप्रभुःस्वामी जगद्वन्द्यो जगन्मयः ॥
५१॥

जगदानन्ददो जन्मजरामरणवर्जितः ।
खट्वाङ्गी नीतिमान् सत्यो
देवतात्माऽऽत्मसम्भवः ॥ ५२॥

कपालमालाभरणः कपाली विष्णुवल्लभः ।
कमलासनकालाग्निः कमलासनपूजितः ॥ ५३॥

कालाधीशस्त्रिकालज्ञो दुष्टविग्रहवारकः ।
नाट्यकर्ता नटपरो महानाट्यविशारदः ॥ ५४॥

विराड्रूपधरो धीरो वीरो वृषभवाहनः ।
वृषाङ्को वृषभाधीशो वृषात्मा वृषभध्वजः ॥
५५॥

महोन्नतो महाकायो महावक्षा महाभुजः ।

Page 355 of 523

महास्कन्धो महाग्रीवो महावक्त्रो महाशिराः
॥ ५६॥

महाहनुर्महादंष्ट्रो महदोष्ठो महोदरः ।
सुन्दरभ्रूः सुनयनः सुललाटः सुकन्दरः ॥ ५७॥

सत्यवाक्यो धर्मवेत्ता सत्यज्ञः
सत्यवित्तमः ।
धर्मवान् धर्मनिपुणो धर्मो धर्मप्रवर्तकः
॥ ५८॥

कृतज्ञः कृतकृत्यात्मा कृतकृत्यः कृतागमः
।
कृत्यवित् कृत्यविच्छ्रेष्ठः
कृतज्ञप्रियकृत्तमः ॥ ५९॥

व्रतकृद् व्रतविच्छ्रेष्ठो व्रतविद्वान्
महाव्रती ।
व्रतप्रियो व्रताधारो व्रताकारो
व्रतेश्वरः ॥ ६०॥

अतिरागी वीतरागी रागहेतुर्विरागवित् ।
रागघ्नो रागशमनो रागदो रागिरागवित् ॥ ६१॥

विद्वान् विद्वत्तमो
विद्वज्जनमानससंश्रयः ।
विद्वज्जनाश्रयो विद्वज्जनस्तव्यपराक्रमः
॥ ६२॥

नीतिकृन्नीतिविन्नीतिप्रदाता
नीतिवित्प्रियः ।
विनीतवत्सलो नीतिस्वरूपो नीतिसंश्रयः ॥
६३॥

क्रोधवित् क्रोधकृत् क्रोधिजनकृत्
क्रोधरूपधृक् ।
सक्रोधः क्रोधहा क्रोधिजनहा क्रोधकारणः ॥
६४॥

गुणवान् गुणविच्छ्रेष्ठो निर्गुणो
गुणवित्प्रियः ।
गुणाधारो गुणाकारो गुणकृद् गुणनाशकः ॥ ६५॥

वीर्यवान् वीर्यविच्छ्रेष्ठो
वीर्यविद्वीर्यसंश्रयः ।
वीर्याकारो वीर्यकरो वीर्यहा वीर्यवर्धकः
॥ ६६॥

कालवित्कालकृत्कालो बलकृद् बलविद्बली ।

मनोन्मनो मनोरूपो बलप्रमथनो बलः ॥ ६७॥

विश्वप्रदाता विश्वेशो
विश्वमात्रैकसंश्रयः ।
विश्वकारो महाविश्वो विश्वविश्वो विशारदः
॥ ६८॥

Variation--
विद्याप्रदाता विद्येशो
विद्यामात्रैकसंश्रयः ।
विद्याकारो महाविद्यो विद्याविद्यो
विशारदः ॥६८॥

वसन्तकृद्वसन्तात्मा वसन्तेशो वसन्तदः ।
ग्रीष्मात्मा ग्रीष्मकृद् ग्रीष्मवर्धको
ग्रीष्मनाशकः ॥ ६९॥

प्रावृट्कृत् प्रावृडाकारः
प्रावृट्कालप्रवर्तकः ।
प्रावृट्प्रवर्धकः प्रावृण्णाथः
प्रावृड्विनाशकः ॥ ७०॥

शरदात्मा शरद्धेतुः शरत्कालप्रवर्तकः ।
शरन्नाथः शरत्कालनाशकः शरदाश्रयः ॥ ७१॥

Page 359 of 523

हिमस्वरूपो हिमदो हिमहा हिमनायकः ।
शैशिरात्मा शैशिरेशः शैशिरर्तुप्रवर्तकः ॥
७२॥

प्राच्यात्मा दक्षिणाकारः
प्रतीच्यात्मोत्तराकृतिः ।
आग्नेयात्मा निरृतीशो वायव्यात्मेशनायकः ॥
७३॥

ऊर्ध्वाधःसुदिगाकारो नानादेशैकनायकः ।
सर्वपक्षिमृगाकारः सर्वपक्षिमृगाधिपः ॥
७४॥

सर्वपक्षिमृगाधारो मृगाद्युत्पत्तिकारणः
।
जीवाध्यक्षो जीववन्द्यो जीवविज्जीवरक्षकः
॥ ७५॥

जीवकृज्जीवहा जीवजीवनो जीवसंश्रयः ।
ज्योतिःस्वरूपो विश्वात्मा विश्वनाथो
वियत्पतिः ॥ ७६॥

वज्रात्मा वज्रहस्तात्मा वज्रेशो
वज्रभूषितः ।
कुमारगुरुरीशानो गणाध्यक्षो गणाधिपः ॥ ७७॥

Page 359 of 523

Page 360 of 523

पिनाकपाणिः सूर्यात्मा
सोमसूर्याग्निलोचनः ।
अपायरहितः शान्तो दान्तो दमयिता दमः ॥ ७८॥

ऋषिः पुराणपुरुषः पुरुषेशः पुरन्दरः ।
कालाग्निरुद्रः सर्वेशः शमरूपः शमेश्वरः ॥
७९॥

प्रलयानलकृद् दिव्यः प्रलयानलनाशकः ।
त्रियम्बकोऽरिषड्वर्गनाशको धनदप्रियः ॥
८०॥

अक्षोभ्यः क्षोभरहितः क्षोभदः क्षोभनाशकः
।
सदम्भो दम्भरहितो दम्भदो दम्भनाशकः ॥ ८१॥

कुन्देन्दुशङ्खधवलो भस्मोद्धूलितविग्रहः
।
भस्मधारणहृष्टात्मा तुष्टिः
पुष्ट्यरिसूदनः ॥ ८२॥

स्थाणुर्दिगम्बरो भर्गो भगनेत्रभिदुद्यमः ।

Page 360 of 523

Page 361 of 523

त्रिकाग्निः कालकालाग्निरद्वितीयो
महायशाः ॥ ८३॥

सामप्रियः सामवेत्ता सामगः सामगप्रियः ।
धीरोदात्तो महाधीरो धैर्यदो धैर्यवर्धकः ॥
८४॥

लावण्यराशिः सर्वज्ञः
सुबुद्धिर्बुद्धिमान्वरः ।
तुम्बवीणः कम्बुकण्ठः शम्बरारिनिकृन्तनः ॥
८५॥

शार्दूलचर्मवसनः पूर्णानन्दो जगत्प्रियः ।
जयप्रदो जयाध्यक्षो जयात्मा जयकारणः ॥ ८६॥

जङ्गमाजङ्गमाकारो जगदुत्पत्तिकारणः ।
जगद्रक्षाकरो वश्यो जगत्प्रलयकारणः ॥ ८७॥

पूषदन्तभिदुत्कृष्टः पञ्चयज्ञः प्रभञ्जकः
।
अष्टमूर्तिर्विश्वमूर्तिरतिमूर्तिरमूर्ति
मान् ॥ ८८॥

कैलासशिखरावासः कैलासशिखरप्रियः ।

Page 361 of 523

Page 362 of 523

भक्तकैलासदः सूक्ष्मो मर्मज्ञः
सर्वशिक्षकः ॥ ८९॥

सोमः सोमकलाकारो महातेजा महातपाः ।
हिरण्यश्मश्रुरानन्दः स्वर्णकेशः
सुवर्णदृक् ॥ ९०॥

ब्रह्मा विश्वसृगुर्वीशो मोचको
बन्धवर्जितः ।
स्वतन्त्रः सर्वमन्त्रात्मा
द्युतिमानमितप्रभः ॥ ९१॥

पुष्कराक्षः पुण्यकीर्तिः
पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
पुण्यमूर्तिः पुण्यदाता
पुण्यापुण्यफलप्रदः ॥ ९२॥

सारभूतः स्वरमयो रसभूतो रसाश्रयः ।
ॐकारः प्रणवो नादो प्रणतार्तिप्रभञ्जनः ॥
९३॥

निकटस्थोऽतिदूरस्थो वशी ब्रह्माण्डनायकः ।
मन्दारमूलनिलयो मन्दारकुसुमावृतः ॥ ९४॥

वृन्दारकप्रियतमो वृन्दारकवरार्चितः ।

Page 362 of 523

Page 363 of 523

श्रीमाननन्तकल्याणपरिपूर्णो महोदयः ॥ ९५॥

महोत्साहो विश्वभोक्ता विश्वाशापरिपूरकः ।
सुलभोऽसुलभो लभ्योऽलभ्यो लाभप्रवर्धकः ॥
९६॥

लाभात्मा लाभदो वक्ता द्युतिमाननसूयकः ।
ब्रह्मचारी दृढाचारी देवसिंहो धनप्रियः ॥
९७॥

वेदपो देवदेवेशो देवदेवोत्तमोत्तमः ।
बीजराजो बीजहेतुर्बीजदो बीजवृद्धिदः ॥ ९८॥

बीजाधारो बीजरूपो निर्बीजो बीजनाशकः ।
परापरेशो वरदः पिङ्गलोऽयुग्मलोचनः ॥ ९९॥

पिङ्गलाक्षः सुरगुरुः गुरुः सुरगुरुप्रियः
।
युगावहो युगाधीशो युगकृद्युगनाशकः ॥ १००॥

कर्पूरगौरो गौरीशो गौरीगुरुगुहाश्रयः ।
धूर्जटिः पिङ्गलजटो जटामण्डलमण्डितः ॥
१०१॥

मनोजवो जीवहेतुरन्धकासुरसूदनः ।

Page 363 of 523

Page 364 of 523

लोकबन्धुः कलाधारः पाण्डुरः प्रमथाधिपः ॥
१०२॥

अव्यक्तलक्षणो योगी योगीशो योगपुङ्गवः ।
श्रितावासो जनावासः सुरवासः सुमण्डलः ॥
१०३॥

भववैद्यो योगिवैद्यो योगिसिंहहृदासनः ।
उत्तमोऽनुत्तमोऽशक्तः कालकण्ठो विषादनः ॥
१०४॥

आशास्यः कमनीयात्मा शुभः सुन्दरविग्रहः ।
भक्तकल्पतरुः स्तोता स्तव्यः
स्तोत्रवरप्रियः ॥ १०५॥

अप्रमेयगुणाधारो वेदकृद्वेदविग्रहः ।
कीर्त्याधारः कीर्तिकरः
कीर्तिहेतुरहेतुकः ॥ १०६॥

अप्रधृष्यः शान्तभद्रः कीर्तिस्तम्भो
मनोमयः ।
भूशयोऽन्नमयोऽभोक्ता महेष्वासो महीतनुः ॥
१०७॥

विज्ञानमय आनन्दमयः प्राणमयोऽन्नदः ।

Page 364 of 523

Page 365 of 523

सर्वलोकमयो यष्टा धर्माधर्मप्रवर्तकः ॥
१०८॥

अनिर्विण्णो गुणग्राही सर्वधर्मफलप्रदः ।
दयासुधार्द्रनयनो निराशीरपरिग्रहः ॥ १०९॥

परार्थवृत्तिर्मधुरो मधुरप्रियदर्शनः ।
मुक्तादामपरीताङ्गो निःसङ्गो मङ्गलाकरः ॥
११०॥

सुखप्रदः सुखाकारः सुखदुःखविवर्जितः ।
विशृङ्खलो जगत्कर्ता जितसर्वः पितामहः ॥
१११॥

अनपायोऽक्षयो मुण्डी सुरूपो रूपवर्जितः ।
अतीन्द्रियो महामायो मायावी विगतज्वरः ॥
११२॥

अमृतः शाश्वतः शान्तो मृत्युहा मूकनाशनः ।
महाप्रेतासनासीनः पिशाचानुचरावृतः ॥ ११३॥

गौरीविलाससदनो नानागानविशारदः ।
विचित्रमाल्यवसनो दिव्यचन्दनचर्चितः ॥
११४॥

Page 365 of 523

Page 366 of 523

विष्णुब्रह्मादिवन्द्याङ्घ्रिः
सुरासुरनमस्कृतः ।
किरीटलेढिफालेन्दुर्मणिकङ्कणभूषितः ॥
११५॥

रत्नाङ्गदाङ्गो रत्नेशो रत्नरञ्जितपादुकः
।
नवरत्नगणोपेतकिरीटी रत्नकञ्चुकः ॥ ११६॥

नानाविधानेकरत्नलसत्कुण्डलमण्डितः ।
दिव्यरत्नगणाकीर्णकण्ठाभरणभूषितः ॥ ११७॥

गलव्यालमणिर्नासापुटभ्राजितमौक्तिकः ।
रत्नाङ्गुलीयविलसत्करशाखानखप्रभः ॥ ११८॥

रत्नभ्राजद्धेमसूत्रलसत्कटितटः पटुः ।
वामाङ्कभागविलसत्पार्वतीवीक्षणप्रियः ॥
११९॥

लीलावलम्बितवपुर्भक्तमानसमन्दिरः ।
मन्दमन्दारपुष्पौघलसद्वायुनिषेवितः ॥
१२०॥

कस्तूरीविलसत्फालो दिव्यवेषविराजितः ।
दिव्यदेहप्रभाकूटसन्दीपितदिगन्तरः ॥ १२१॥

Page 366 of 523

Page 367 of 523

देवासुरगुरुस्तव्यो देवासुरनमस्कृतः ।
हस्तराजत्पुण्डरीकः पुण्डरीकनिभेक्षणः ॥
१२२॥

सर्वाशास्यगुणोऽमेयः सर्वलोकेष्टभूषणः ।
सर्वेष्टदाता सर्वेष्टः
स्फुरन्मङ्गलविग्रहः ॥ १२३॥

अविद्यालेशरहितो नानाविद्यैकसंश्रयः ।
मूर्तिभवः कृपापूरो भक्तेष्टफलपूरकः ॥
१२४॥

सम्पूर्णकामः सौभाग्यनिधिः सौभाग्यदायकः ।
हितैषी हितकृत्सौम्यः परार्थैकप्रयोजनः ॥
१२५॥

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणः ।
जिष्णुर्नेता वषट्कारो भ्राजिष्णुर्भोजनं
हविः ॥ १२६॥

भोक्ता भोजयिता जेता जितारिर्जितमानसः ।
अक्षरः कारणं क्रुद्धसमरः शारदप्लवः ॥ १२७॥

Page 367 of 523

Page 368 of 523

आज्ञापकेच्छो गम्भीरः कविर्दुःस्वप्ननाशकः ।
पञ्चब्रह्मसमुत्पत्तिः क्षेत्रज्ञः
क्षेत्रपालकः ॥ १२८॥

व्योमकेशो भीमवेषो गौरीपतिरनामयः ।
भवाब्धितरणोपायो भगवान् भक्तवत्सलः ॥ १२९॥

वरो वरिष्ठो नेदिष्ठः प्रियः प्रियदवः
सुधीः ।
यन्ता यविष्ठः क्षोदिष्ठो स्थविष्ठो
यमशासकः ॥ १३०॥

हिरण्यगर्भो हेमाङ्गो हेमरूपो हिरण्यदः ।
ब्रह्मज्योतिरनावेक्ष्यश्चामुण्डाजनको
रविः ॥ १३१॥

मोक्षार्थिजनसंसेव्यो मोक्षदो मोक्षनायकः
।
महाश्मशाननिलयो वेदाश्वो भूरथः स्थिरः ॥
१३२॥

मृगव्याधो चर्मधामा प्रच्छन्नः स्फटिकप्रभः ।

Page 368 of 523

Page 369 of 523

सर्वज्ञः परमार्थात्मा ब्रह्मानन्दाश्रयो
विभुः ॥ १३३॥

महेश्वरो महादेवः परब्रह्म सदाशिवः ॥ १३४॥

श्रीपरब्रह्म सदाशिव ॐ नम इति ।
उत्तर पीठिका
एवमेतानि नामानि मुख्यानि मम षण्मुख ।
शुभदानि विचित्राणि गौर्यै प्रोक्तानि
सादरम् ॥ १॥

विभूतिभूषितवपुः शुद्धो रुद्राक्षभूषणः ।
शिवलिङ्गसमीपस्थो निस्सङ्गो निर्जितासनः ॥
२॥

एकाग्रचित्तो नियतो वशी भूतहिते रतः ।
शिवलिङ्गार्चको नित्यं शिवैकशरणः सदा ॥ ३॥

मम नामानि दिव्यानि यो जपेद्भक्तिपूर्वकम्
।
एवमुक्तगुणोपेतः स देवैः पूजितो भवेत् ॥ ४॥

संसारपाशसंबद्धजनमोक्षैकसाधनम् ।
मन्नामस्मरणं नूनं तदेव सकलार्थदम् ॥ ५॥

Page 369 of 523

Page 370 of 523

मन्नामैव परं जप्यमहमेवाक्षयार्थदः ।
अहमेव सदा सेव्यो ध्येयो
मुक्त्यर्थमादरात् ॥ ६॥

विभूतिवज्रकवचैः मन्नामशरपाणिभिः ।
विजयः सर्वतो लभ्यो न तेषां दृश्यते भयम् ॥
७॥

न तेषां दृश्यते भयम् ॐ नम इति ।
श्रीसूत उवाच-
इत्युदीरितमाकर्ण्य महादेवेन तद्वचः ।
सन्तुष्टः षण्मुखः शम्भुं तुष्टाव
गिरिजासुतः ॥ ८॥

श्रीस्कन्द उवाच-
नमस्ते नमस्ते महादेव शम्भो
नमस्ते नमस्ते प्रपन्नैकबन्धो ।
नमस्ते नमस्ते दयासारसिन्धो
नमस्ते नमस्ते नमस्ते महेश ॥ ९॥

नमस्ते नमस्ते महामृत्युहारिन्
नमस्ते नमस्ते महादुःखहारिन् ।
नमस्ते नमस्ते महापापहारिन्
नमस्ते नमस्ते नमस्ते महेश ॥ १०॥

Page 370 of 523

Page 371 of 523

नमस्ते नमस्ते सदा चन्द्रमौले नमस्ते नमस्ते सदा शूलपाणे । नमस्ते नमस्ते सदोमैकजाने नमस्ते नमस्ते नमस्ते महेश ॥ ११॥

वेदान्तवेद्याय महादयाय
कैलासवासाय शिवाधवाय ।
शिवस्वरूपाय सदाशिवाय
शिवासमेताय नमःशिवाय ॥ १२॥

ॐ नमःशिवाय इति
श्रीसूत उवाच-
इति स्तुत्वा महादेवं सर्वव्यापिनमीश्वरम्
।
पुनःप्रणम्याथ ततः स्कन्दस्तस्थौ
कृताञ्जलिः ॥ १३॥

भवन्तोऽपि मुनिश्रेष्ठाः
साम्बध्यानपरायणाः ।
शिवनामजपं कृत्वा तिष्ठन्तु सुखिनः सदा ॥
१४॥

शिव एव सदा ध्येयः सर्वदेवोत्तमः प्रभुः ।
शिव एव सदा पूज्यो मुक्तिकामैर्न संशयः ॥
१५॥

Page 371 of 523

Page 372 of 523

महेशान्नाधिको देवः स एव सुरसत्तमः ।
स एव सर्ववेदान्तवेद्यो नात्रास्ति संशयः ॥
१६॥

जन्मान्तरसहस्रेषु यदि तप्तं तपस्तदा ।
तस्य श्रद्धा महादेवे भक्तिश्च भवति
ध्रुवम् ॥ १७॥

सुभगा जननी तस्य तस्यैव कुलमुन्नतम् ।
तस्यैव जन्म सफलं यस्य भक्तिः सदाशिवे ॥ १८॥

ये शम्भुं सुरसत्तमं सुरगणैराराध्यमीशं शिवं
शैलाधीशसुतासमेतममलं सम्पूजयन्त्यादरात् ।
ते धन्याः शिवपादपूजनपराः ह्यन्यो न धन्यो जनः
सत्यं सत्यमिहोच्यते मुनिवराः सत्यं पुनः
सर्वथा ॥ १९॥

सत्यं पुनः सर्वथा ॐ नम इति ।
नमः शिवाय साम्बाय सगणाय ससूनवे ।
प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यन्तहेतवे ॥
२०॥

Page 372 of 523

Page 373 of 523

नमस्ते गिरिजानाथ भक्तानामिष्टदायक ।
देहि भक्तिं त्वयीशान सर्वाभीष्टं च देहि
मे ॥ २१॥

साम्ब शम्भो महादेव दयासागर शङ्कर ।
मच्चित्तभ्रमरो नित्यं तवास्तु पदपङ्कजे ॥
२२॥

सर्वार्थ शर्व सर्वेश सर्वोत्तम महेश्वर ।
तव नामामृतं दिव्यं जिह्वाग्रे मम तिष्ठतु ॥ २३॥

यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद्
भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ॥
२४॥

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम् ।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व
जयजय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो ॥ २५॥

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्याऽऽत्मना वा प्रकृतेः स्वभावात् ।

Page 373 of 523

Page 374 of 523

करोमि यद्यत् सकलं परस्मै
सदाशिवायेति समर्पयामि ॥ २६॥

॥ ॐ तत्सत् इति
श्रीमुख्यशिवसहस्रनामस्तोत्रं सम्पूर्णम्
॥

॥ श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम् ॥
महाभारतान्तर्गतम्
(अथ सहस्रनामस्तोत्रम् ।)

स्थिरः स्थाणुः प्रभुर्भीमः प्रवरो वरदो
वरः । var प्रभुर्भानुः
सर्वात्मा सर्वविख्यातः सर्वः सर्वकरो भवः
॥ ३१॥

जटी चर्मी शिखी खड्गी सर्वाङ्गः सर्वभावनः
। var शिखण्डी च
हरश्च हरिणाक्षश्च सर्वभूतहरः प्रभुः ॥ ३२॥

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च नियतः शाश्वतो
ध्रुवः ।
श्मशानवासी भगवान्खचरो गोचरोऽर्दनः ॥ ३३॥

अभिवाद्यो महाकर्मा तपस्वी भूतभावनः ।

Page 374 of 523

Page 375 of 523

उन्मत्तवेषप्रच्छन्नः सर्वलोकप्रजापतिः ॥
३४॥

महारूपो महाकायो वृषरूपो महायशाः ।
महात्मा सर्वभूतात्मा विश्वरूपो महाहनुः ॥
३५॥

लोकपालोऽन्तर्हितात्मा प्रसादो हयगर्दभिः
।
पवित्रं च महांश्चैव नियमो नियमाश्रितः ॥
३६॥

सर्वकर्मा स्वयम्भूत आदिरादिकरो निधिः ।
सहस्राक्षो विशालाक्षः सोमो नक्षत्रसाधकः
॥ ३७॥

चन्द्रः सूर्यः शनिः केतुर्ग्रहो
ग्रहपतिर्वरः ।
अत्रिरत्र्यानमस्कर्ता मृगबाणार्पणोऽनघः
॥ ३८॥

महातपा घोरतपा अदीनो दीनसाधकः ।
संवत्सरकरो मन्त्रः प्रमाणं परमं तपः ॥ ३९॥

Page 375 of 523

Page 376 of 523

योगी योज्यो महाबीजो महारेता महाबलः ।
सुवर्णरेताः सर्वज्ञः सुबीजो बीजवाहनः ॥
४०॥

दशबाहुस्त्वनिमिषो नीलकण्ठ उमापतिः ।
विश्वरूपः स्वयंश्रेष्ठो बलवीरो बलो गणः ॥
४१॥
var बलवीरोऽबलो

गणकर्ता गणपतिर्दिग्वासाः काम एव च ।
मन्त्रवित्परमो मन्त्रः सर्वभावकरो हरः ॥
४२॥

कमण्डलुधरो धन्वी बाणहस्तः कपालवान् ।
अशनी शतघ्नी खड्गी पट्टिशी चायुधी महान् ॥
४३॥

स्रुवहस्तः सुरूपश्च तेजस्तेजस्करो निधिः
।
उष्णीषी च सुवक्त्रश्च उदग्रो विनतस्तथा ॥
४४॥

दीर्घश्च हरिकेशश्च सुतीर्थः कृष्ण एव च ।
शृगालरूपः सिद्धार्थो मुण्डः सर्वशुभङ्करः
॥ ४५॥

Page 376 of 523

Page 377 of 523

अजश्च बहुरूपश्च गन्धधारी कपर्द्यपि ।
ऊर्ध्वरेता ऊर्ध्वलिङ्ग ऊर्ध्वशायी
नभःस्थलः ॥ ४६॥

त्रिजटी चीरवासाश्च रुद्रः सेनापतिर्विभुः
।
अहश्चरो नक्तञ्चरस्तिग्ममन्युः सुवर्चसः ॥
४७॥

गजहा दैत्यहा कालो लोकधाता गुणाकरः ।
सिंहशार्दूलरूपश्च आर्द्रचर्माम्बरावृतः
॥ ४८॥

कालयोगी महानादः सर्वकामश्चतुष्पथः ।
निशाचरः प्रेतचारी भूतचारी महेश्वरः ॥ ४९॥

बहुभूतो बहुधरः स्वर्भानुरमितो गतिः ।
नृत्यप्रियो नित्यनर्तो नर्तकः सर्वलालसः
॥ ५०॥
घोरो महातपाः पाशो नित्यो गिरिरुहो नभः ।
सहस्रहस्तो विजयो व्यवसायो ह्यतन्द्रितः ॥
५१॥

अधर्षणो धर्षणात्मा यज्ञहा कामनाशकः ।

Page 377 of 523

Page 378 of 523

दक्षयागापहारी च सुसहो मध्यमस्तथा ॥ ५२॥

तेजोपहारी बलहा मुदितोऽर्थोऽजितोऽवरः ।
var ऽजितो वरः
गम्भीरघोषा गम्भीरो गम्भीरबलवाहनः ॥ ५३॥

न्यग्रोधरूपो न्यग्रोधो
वृक्षपर्णस्थितिर्विभुः । var वृक्षकर्ण
सुतीक्ष्णदशनश्चैव महाकायो महाननः ॥ ५४॥

विष्वक्सेनो हरिर्यज्ञः संयुगापीडवाहनः ।
तीक्ष्णतापश्च हर्यश्वः सहायः कर्मकालवित्
॥ ५५॥

विष्णुप्रसादितो यज्ञः समुद्रो वडवामुखः ।
हुताशनसहायश्च प्रशान्तात्मा हुताशनः ॥
५६॥

उग्रतेजा महातेजा जन्यो विजयकालवित् ।
ज्योतिषामयनं सिद्धिः सर्वविग्रह एव च ॥
५७॥

शिखी मुण्डी जटी ज्वाली मूर्तिजो मूर्धगो
बली ।
वेणवी पणवी ताली खली कालकटङ्कटः ॥ ५८॥

Page 378 of 523

Page 379 of 523

नक्षत्रविग्रहमतिर्गुणबुद्धिर्लयो गमः । var लयोऽगमः
प्रजापतिर्विश्वबाहुर्विभागः सर्वगोमुखः ॥ ५९॥ var सर्वगोऽमुखः

विमोचनः सुसरणो हिरण्यकवचोद्भवः ॥ var
सुशरणो
मेढ्रजो बलचारी च महीचारी स्रुतस्तथा ॥ ६०॥

सर्वतूर्यनिनादी च सर्वातोद्यपरिग्रहः ।
व्यालरूपो गुहावासी गुहो माली तरङ्गवित् ॥
६१॥

त्रिदशस्त्रिकालधृक्कर्मसर्वबन्धविमोचनः
।
बन्धनस्त्वसुरेन्द्राणां युधि
शत्रुविनाशनः ॥ ६२॥

साङ्ख्यप्रसादो दुर्वासाः
सर्वसाधुनिषेवितः ।
प्रस्कन्दनो विभागज्ञो अतुल्यो
यज्ञभागवित् ॥ ६३॥

सर्ववासः सर्वचारी दुर्वासा वासवोऽमरः ।

Page 379 of 523

Page 380 of 523

हैमो हेमकरो यज्ञः सर्वधारी धरोत्तमः ॥ ६४॥

लोहिताक्षो महाक्षश्च विजयाक्षो विशारदः ।
सङ्ग्रहो निग्रहः कर्ता सर्पचीरनिवासनः ॥
६५॥

मुख्योऽमुख्यश्च देहश्च काहलिः सर्वकामदः
। var मुख्यो मुख्यश्च
सर्वकासप्रसादश्च सुबलो बलरूपधृत् ॥ ६६॥

सर्वकामवरश्चैव सर्वदः सर्वतोमुखः ।
आकाशनिर्विरूपश्च निपाती ह्यवशः खगः ॥ ६७॥

रौद्ररूपोंऽशुरादित्यो बहुरश्मिः
सुवर्चसी ।
वसुवेगो महावेगो मनोवेगो निशाचरः ॥ ६८॥

सर्ववासी श्रियावासी उपदेशकरोऽकरः ।
मुनिरात्मनिरालोकः सम्भग्नश्च सहस्रदः ॥
६९॥

पक्षी च पक्षरूपश्च अतिदीप्तो विशाम्पतिः ।
उन्मादो मदनः कामो ह्यश्वत्थोऽर्थकरो यशः ॥
७०॥

Page 380 of 523

Page 381 of 523

वामदेवश्च वामश्च प्राग्दक्षिणश्च वामनः ।
सिद्धयोगी महर्षिश्च सिद्धार्थः
सिद्धसाधकः ॥ ७१॥

भिक्षुश्च भिक्षुरूपश्च विपणो मृदुरव्ययः
।
महासेनो विशाखश्च षष्टिभागो गवाम्पतिः ॥
७२॥

वज्रहस्तश्च विष्कम्भी चमूस्तम्भन एव च ।
वृत्तावृत्तकरस्तालो मधुर्मधुकलोचनः ॥ ७३॥

वाचस्पत्यो वाजसनो नित्यमाश्रमपूजितः ।
ब्रह्मचारी लोकचारी सर्वचारी विचारवित् ॥
७४॥

ईशान ईश्वरः कालो निशाचारी पिनाकवान् ।
निमित्तस्थो निमित्तं च नन्दिर्नन्दिकरो
हरिः ॥ ७५॥

नन्दीश्वरश्च नन्दी च नन्दनो नन्दिवर्धनः ।
भगहारी निहन्ता च कालो ब्रह्मा पितामहः ॥
७६॥

चतुर्मुखो महालिङ्गश्चारुलिङ्गस्तथैव च ।

Page 381 of 523

Page 382 of 523

लिङ्गाध्यक्षः सुराध्यक्षो योगाध्यक्षो
युगावहः ॥ ७७॥

बीजाध्यक्षो बीजकर्ता अव्यात्माऽनुगतो बलः
।
इतिहासः सकल्पश्च गौतमोऽथ निशाकरः ॥ ७८॥

दम्भो ह्यदम्भो वैदम्भो वश्यो वशकरः कलिः ।
लोककर्ता पशुपतिर्महाकर्ता ह्यनौषधः ॥ ७९॥

अक्षरं परमं ब्रह्म बलवच्छक्र एव च ।
नीतिर्ह्यनीतिः शुद्धात्मा शुद्धो मान्यो
गतागतः ॥ ८०॥

बहुप्रसादः सुस्वप्नो दर्पणोऽथ
त्वमित्रजित् ।
वेदकारो मन्त्रकारो विद्वान्समरमर्दनः ॥
८१॥

महामेघनिवासी च महाघोरो वशीकरः ।
अग्निर्ज्वालो महाज्वालो अतिधूम्रो हुतो
हविः ॥ ८२॥

वृषणः शङ्करो नित्यं वर्चस्वी धूमकेतनः ।
var नित्यवर्चस्वी

Page 382 of 523

Page 383 of 523

नीलस्तथाङ्गलुब्धश्च शोभनो निरवग्रहः ॥
८३॥

स्वस्तिदः स्वस्तिभावश्च भागी भागकरो लघुः
।
उत्सङ्गश्च महाङ्गश्च महागर्भपरायणः ॥ ८४॥

कृष्णवर्णः सुवर्णश्च इन्द्रियं
सर्वदेहिनाम् ।
महापादो महाहस्तो महाकायो महायशाः ॥ ८५॥

महामूर्धा महामात्रो महानेत्रो निशालयः ।
महान्तको महाकर्णो महोष्ठश्च महाहनुः ॥ ८६॥

महानासो महाकम्बुर्महाग्रीवः श्मशानभाक् ।
महावक्षा महोरस्को ह्यन्तरात्मा मृगालयः ॥
८७॥

लम्बनो लम्बितोष्ठश्च महामायः पयोनिधिः ।
महादन्तो महादंष्ट्रो महाजिह्वो महामुखः ॥
८८॥

महानखो महारोमा महाकेशो महाजटः ।
प्रसन्नश्च प्रसादश्च प्रत्ययो गिरिसाधनः
॥ ८९॥

Page 383 of 523

Page 384 of 523

स्नेहनोऽस्नेहनश्चैव अजितश्च महामुनिः ।
वृक्षाकारो वृक्षकेतुरनलो वायुवाहनः ॥ ९०॥

गण्डली मेरुधामा च देवाधिपतिरेव च ।
अथर्वशीर्षः सामास्य ऋक्सहस्रामितेक्षणः ॥
९१॥

यजुःपादभुजो गुह्यः प्रकाशो जङ्गमस्तथा ।
अमोघार्थः प्रसादश्च अभिगम्यः सुदर्शनः ॥
९२॥

उपकारः प्रियः सर्वः कनकः काञ्चनच्छविः ।
नाभिर्नन्दिकरो भावः पुष्करस्थपतिः स्थिरः
॥ ९३॥

द्वादशस्त्रासनश्चाद्यो यज्ञो
यज्ञसमाहितः ।
नक्तं कलिश्च कालश्च मकरः कालपूजितः ॥ ९४॥

सगणो गणकारश्च भूतवाहनसारथिः ।
भस्मशयो भस्मगोप्ता भस्मभूतस्तरुर्गणः ॥
९५॥

Page 384 of 523

Page 385 of 523

लोकपालस्तथा लोको महात्मा सर्वपूजितः । var लोकपालस्तथाऽलोको
शुक्लस्त्रिशुक्लः सम्पन्नः शुचिर्भूतनिषेवितः ॥ ९६॥

आश्रमस्थः क्रियावस्थो विश्वकर्ममतिर्वरः
।
विशालशाखस्ताम्रोष्ठो ह्यम्बुजालः
सुनिश्चलः ॥ ९७॥

कपिलः कपिशः शुक्ल आयुश्चैवि परोऽपरः ।
गन्धर्वो ह्यदितिस्तार्क्ष्यः सुविज्ञेयः
सुशारदः ॥ ९८॥

परश्वधायुधो देव अनुकारी सुबान्धवः ।
तुम्बवीणो महाक्रोध ऊर्ध्वरेता जलेशयः ॥
९९॥

उग्रो वंशकरो वंशो वंशनादो ह्यनिन्दितः ।
सर्वाङ्गरूपो मायावी सुहृदो ह्यनिलोऽनलः ॥
१००॥

बन्धनो बन्धकर्ता च सुबन्धनविमोचनः ।
स यज्ञारिः स कामारिर्महादंष्ट्रो महायुधः
॥ १०१॥

Page 385 of 523

Page 386 of 523

बहुधानिन्दितः शर्वः शङ्करः शङ्करोऽधनः ।
var शङ्करोऽनघः
अमरेशो महादेवो विश्वदेवः सुरारिहा ॥ १०२॥

अहिर्बुध्न्योऽनिलाभश्च चेकितानो
हविस्तथा ।
अजैकपाच्च कापाली त्रिशङ्कुरजितः शिवः ॥
१०३॥

धन्वन्तरिर्धूमकेतुः स्कन्दो
वैश्रवणस्तथा ।
धाता शक्रश्च विष्णुश्च मित्रस्त्वष्टा ध्रुवो धरः ॥ १०४॥

प्रभावः सर्वगो वायुरर्यमा सविता रविः ।
var सर्वगोवायुरर्यमा
उषङ्गुश्च विधाता च मान्धाता भूतभावनः ॥
१०५॥

विभुर्वर्णविभावी च सर्वकामगुणावहः ।
पद्मनाभो
महागर्भश्चन्द्रवक्त्रोऽनिलोऽनलः ॥ १०६॥

बलवांश्चोपशान्तश्च पुराणः पुण्यचञ्चुरी ।

Page 386 of 523

Page 387 of 523

कुरुकर्ता कुरुवासी कुरुभूतो गुणौषधः ॥
१०७॥

सर्वाशयो दर्भचारी सर्वेषां प्राणिनां
पतिः ।
देवदेवः सुखासक्तः सदसत्सर्वरत्नवित् ॥
१०८॥

कैलासगिरिवासी च हिमवद्गिरिसंश्रयः ।
कूलहारी कूलकर्ता बहुविद्यो बहुप्रदः ॥
१०९॥

वणिजो वर्धकी वृक्षो बकुलश्चन्दनश्छदः ।
सारग्रीवो महाजत्रुरलोलश्च महौषधः ॥ ११०॥

सिद्धार्थकारी
सिद्धार्थश्छन्दोव्याकरणोत्तरः ।
सिंहनादः सिंहदंष्ट्रः सिंहगः सिंहवाहनः ॥
१११॥

प्रभावात्मा जगत्कालस्थालो लोकहितस्तरुः ।
सारङ्गो नवचक्राङ्गः केतुमाली सभावनः ॥
११२॥

भूतालयो भूतपतिरहोरात्रमनिन्दितः ॥ ११३॥

Page 387 of 523

Page 388 of 523

वाहिता सर्वभूतानां निलयश्च विभुर्भवः ।
अमोघः संयतो ह्यश्वो भोजनः प्राणधारणः ॥
११४॥ var प्राणधारकः धृतिमान्मतिमान्दक्षः सत्कृतश्च युगाधिपः
।
गोपालिर्गोपतिर्ग्रामो गोचर्मवसनो हरिः।
११५॥

हिरण्यबाहुश्च तथा गुहापालः प्रवेशिनाम् ।
प्रकृष्टारिर्महाहर्षो जितकामो
जितेन्द्रियः ॥ ११६॥

गान्धारश्च सुवासश्च तपःसक्तो रतिर्नरः ।
महागीतो महानृत्यो ह्यप्सरोगणसेवितः ॥
११७॥

महाकेतुर्महाधातुर्नैकसानुचरश्चलः ।
आवेदनीय आदेशः सर्वगन्धसुखावहः ॥ ११८॥

तोरणस्तारणो वातः परिधी पतिखेचरः ।
संयोगो वर्धनो वृद्धो अतिवृद्धो गुणाधिकः ॥
११९॥

नित्य आत्मसहायश्च देवासुरपतिः पतिः ।

Page 388 of 523

Page 389 of 523

युक्तश्च युक्तबाहुश्च देवो दिवि सुपर्वणः
॥ १२०॥

आषाढश्च सुषाण्ढश्च ध्रुवोऽथ हरिणो हरः ।
वपुरावर्तमानेभ्यो वसुश्रेष्ठो महापथः ॥
१२१॥

शिरोहारी विमर्शश्च सर्वलक्षणलक्षितः ।
अक्षश्च रथयोगी च सर्वयोगी महाबलः ॥ १२२॥

समाम्नायोऽसमाम्नायस्तीर्थदेवो महारथः ।
निर्जीवो जीवनो मन्त्रः शुभाक्षो
बहुकर्कशः ॥ १२३॥

रत्नप्रभूतो रत्नाङ्गो महार्णवनिपानवित् ।
मूलं विशालो ह्यमृतो
व्यक्ताव्यक्तस्तपोनिधिः ॥ १२४॥

आरोहणोऽधिरोहश्च शीलधारी महायशाः ।
सेनाकल्पो महाकल्पो योगो युगकरो हरिः ॥
१२५॥

युगरूपो महारूपो महानागहनो वधः ।
न्यायनिर्वपणः पादः पण्डितो ह्यचलोपमः ॥
१२६॥

Page 389 of 523

बहुमालो महामालः शशी हरसुलोचनः ।
विस्तारो लवणः कूपस्त्रियुगः सफलोदयः ॥
१२७॥

त्रिलोचनो विषण्णाङ्गो मणिविद्धो जटाधरः ।
बिन्दुर्विसर्गः सुमुखः शरः सर्वायुधः सहः
॥ १२८॥

निवेदनः सुखाजातः सुगन्धारो महाधनुः ।
गन्धपाली च भगवानुत्थानः सर्वकर्मणाम् ॥
१२९॥

मन्थानो बहुलो वायुः सकलः सर्वलोचनः ।
तलस्तालः करस्थाली ऊर्ध्वसंहननो महान् ॥
१३०॥

छत्रं सुच्छत्रो विख्यातो लोकः सर्वाश्रयः
क्रमः ।
मुण्डो विरूपो विकृतो दण्डी कुण्डी
विकुर्वणः। १३१॥

हर्यक्षः ककुभो वज्री शतजिह्वः सहस्रपात् ।
सहस्रमूर्धा देवेन्द्रः सर्वदेवमयो गुरुः
॥ १३२॥

Page 391 of 523

सहस्रबाहुः सर्वाङ्गः शरण्यः सर्वलोककृत् ।
पवित्रं त्रिककुन्मन्त्रः कनिष्ठः कृष्णपिङ्गलः। १३३॥

ब्रह्मदण्डविनिर्माता शतघ्नीपाशशक्तिमान्
।
पद्मगर्भो महागर्भो ब्रह्मगर्भो जलोद्भवः
॥ १३४॥

गभस्तिर्ब्रह्मकृद्ब्रह्मी
ब्रह्मविद्ब्राह्मणो गतिः ।
अनन्तरूपो नैकात्मा तिग्मतेजाः स्वयम्भुवः
॥ १३५॥

ऊर्ध्वगात्मा पशुपतिर्वातरंहा मनोजवः ।
चन्दनी पद्मनालाग्रः सुरभ्युत्तरणो नरः ॥
१३६॥

कर्णिकारमहास्रग्वी नीलमौलिः पिनाकधृत् ।
उमापतिरुमाकान्तो जाह्नवीधृगुमाधवः ॥ १३७॥

वरो वराहो वरदो वरेण्यः सुमहास्वनः ।

Page 391 of 523

महाप्रसादो दमनः शत्रुहा श्वेतपिङ्गलः ॥
१३८॥

पीतात्मा परमात्मा च प्रयतात्मा
प्रधानधृत् ।
सर्वपार्श्वमुखस्त्र्यक्षो धर्मसाधारणो
वरः ॥ १३९॥

चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा अमृतो
गोवृषेश्वरः ।
साध्यर्षिर्वसुरादित्यो
विवस्वान्सविताऽमृतः १४०॥

व्यासः सर्गः सुसङ्क्षेपो विस्तरः पर्ययो
नरः ।
ऋतु संवत्सरो मासः पक्षः सङ्ख्यासमापनः ॥
१४१॥

कला काष्ठा लवा मात्रा मुहूर्ताहःक्षपाः
क्षणाः ।
विश्वक्षेत्रं प्रजाबीजं लिङ्गमाद्यस्तु
निर्गमः ॥ १४२॥

सदसद्व्यक्तमव्यक्तं पिता माता पितामहः ।

Page 393 of 523

स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं
त्रिविष्टपम् ॥ १४३॥

निर्वाणं ह्लादनश्चैव ब्रह्मलोकः परा गतिः
।
देवासुरविनिर्माता देवासुरपरायणः ॥ १४४॥

देवासुरगुरुर्देवो देवासुरनमस्कृतः ।
देवासुरमहामात्रो देवासुगणाश्रयः ॥ १४५॥

देवासुरगणाध्यक्षो देवासुरगणाग्रणीः ।
देवातिदेवो देवर्षिर्देवासुरवरप्रदः ॥
१४६॥

देवासुरेश्वरो विश्वो देवासुरमहेश्वरः ।
सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो
देवतात्माऽऽत्मसम्भवः ॥ १४७॥

उद्भित्त्रिविक्रमो वैद्यो विरजो
नीरजोऽमरः ॥

ईड्यो हस्तीश्वरो व्याघ्रो देवसिंहो
नरर्षभः ॥ १४८॥

विबुधोऽग्रवरः सूक्ष्मः सर्वदेवस्तपोमयः ।

Page 393 of 523

Page 394 of 523

सुयुक्तः शोभनो वज्री प्रासानां प्रभवोऽव्ययः ॥ १४९॥

गुहः कान्तो निजः सर्गः पवित्रं सर्वपावनः
।
शृङ्गी शृङ्गप्रियो बभ्रू राजराजो निरामयः
॥ १५०॥

अभिरामः सुरगणो विरामः सर्वसाधनः ।
ललाटाक्षो विश्वदेवो हरिणो ब्रह्मवर्चसः ॥
१५१॥

स्थावराणां पतिश्चैव नियमेन्द्रियवर्धनः ।
सिद्धार्थः सिद्धभूतार्थोऽचिन्त्यः
सत्यव्रतः शुचिः ॥ १५२॥

व्रताधिपः परं ब्रह्म भक्तानां परमा गतिः ।
विमुक्तो मुक्ततेजाश्च
श्रीमान्श्रीवर्धनो जगत् ॥ १५३॥

(इति सहस्रनामस्तोत्रम् ।)

अथ लिङ्गपुराणान्तर्गत-श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रमन्त्रैः

Page 394 of 523

Page 395 of 523

अभिषेकः ।
ॐ ।
ऋषय ऊचुः -
कथं देवेन वै सूत देवदेवान्महेश्वरात् ।
सुदर्शनाख्यं वै लब्धं वक्तुमर्हसि
विष्णुना ॥ १॥

सूत उवाच -
देवानामसुरेन्द्राणामभवच्च सुदारुणः ।
सर्वेषामेव भूतानां विनाशकरणो महान् ॥ २॥

ते देवाः शक्तिमुशलैः सायकैर्नतपर्वभिः ।
प्रभिद्यमानाः कुन्तैश्च
दुद्रुवुर्भयविह्वलाः ॥ ३॥

पराजितास्तदा देवा देवदेवेश्वरं हरिम् ।
प्रणेमुस्तं सुरेशानं शोकसंविग्नमानसाः ॥
४॥

तान् समीक्ष्याथ भगवान्देवदेवेश्वरो हरिः
।
प्रणिपत्य स्थितान्देवानिदं वचनमब्रवीत् ॥
५॥

Page 395 of 523

Page 396 of 523

वत्साः किमिति वै देवाश्च्युतालङ्कारविक्रमाः ।
समागताः ससंतापा वक्तुमर्हथ सुव्रताः ॥ ६॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तथाभूताः
सुरोत्तमाः ।
प्रणम्याहुर्यथावृत्तं देवदेवाय विष्णवे ॥
७॥

भगवन्देवदेवेश विष्णो जिष्णो जनार्दन ।
दानवैः पीडिताः सर्वे वयं शरणमागताः ॥ ८॥

त्वमेव देवदेवेश गतिर्नः पुरुषोत्तम ।
त्वमेव परमात्मा हि त्वं पिता जगतामपि ॥ ९॥

त्वमेव भर्ता हर्ता च भोक्ता दाता जनार्दन ।
हन्तुमर्हसि तस्मात्त्वं
दानवान्दानवार्दन ॥ १०॥

दैत्याश्च वैष्णवैर्ब्राह्मै
रौद्रैर्याम्यैः सुदारुणैः ।
कौबेरैश्चैव सौम्यैश्च
नैरृत्यैर्वारुणैर्दृढैः ॥ ११॥

Page 396 of 523

Page 397 of 523

वायव्यैश्च तथाग्नेयैरैशानैर्वार्षिकैः शुभैः ।
सौरै रौद्रैस्तथा भीमैः
कम्पनैर्जृम्भणैर्दृढैः ॥ १२॥

अवध्या वरलाभात्ते सर्वे वारिजलोचन ।
सूर्यमण्डलसम्भूतं त्वदीयं चक्रमुद्यतम् ॥
१३॥

कुण्ठितं हि दधीचेन च्यावनेन जगद्गुरो ।
दण्डं शार्ङ्गं तवास्त्रं च लब्धं दैत्यैः
प्रसादतः ॥१४॥

पुरा जलन्धरं हन्तुं निर्मितं
त्रिपुरारिणा ।
रथाङ्गं सुशितं घोरं तेन तान् हन्तुमर्हसि
॥ १५॥

तस्मात्तेन निहन्तव्या नान्यैः
शस्त्रशतैरपि ।
ततो निशम्य तेषां वै वचनं वारिजेक्षणः ॥ १६॥

वाचस्पतिमुखानाह स हरिश्चक्रभृत्स्वयम् ।
श्रीविष्णुरुवाच -

Page 397 of 523

Page 398 of 523

भोभो देवा महादेवं सर्वैर्देवैः सनातनैः ॥
१७॥

सम्प्राप्य साम्प्रतं सर्वं करिष्यामि
दिवौकसाम् ।
देवा जलंधरं हन्तुं निर्मितं हि पुरारिणा ॥
१८॥

लब्ध्वा रथाङ्गं तेनैव निहत्य च महासुरान्
।
सर्वान्धुन्धुमुखान्दैत्यानष्टषष्टिशतान्
सुरान् ॥ १९॥

सबान्धवान्क्षणादेव युष्मान् संतारयाम्यहम् ।
सूत उवाच -
एवमुक्त्वा सुरश्रेष्ठान्
सुरश्रेष्ठमनुस्मरन् ॥ २०॥

सुरश्रेष्ठस्तदा श्रेष्ठं पूजयामास
शङ्करम् ।
लिङ्गं स्थाप्य यथान्यायं हिमवच्छिखरे
शुभे ॥ २१॥

मेरुपर्वतसंकाशं निर्मितं विश्वकर्मणा ।

Page 398 of 523

Page 399 of 523

त्वरिताख्येन रुद्रेण रौद्रेण च जनार्दनः ॥
२२॥

स्नाप्य सम्पूज्य गन्धाद्यैर्ज्वालाकारं
मनोरमम् ।
तुष्टाव च तदा रुद्रं सम्पूज्याग्नौ
प्रणम्य च ॥ २३॥

देवं नाम्नां सहस्रेण भवाद्येन यथाक्रमम् ।
पूजयामास च शिवं प्रणवाद्यं नमोन्तकम् ॥
२४॥

देवं नाम्नां सहस्रेण भवाद्येन महेश्वरम् ।
प्रतिनाम सपद्मेन पूजयामास शङ्करम् ॥ २५॥

अग्नौ च नामभिर्देवं भवाद्यैः समिदादिभिः ।
स्वाहान्तैर्विधिवद्धुत्वा प्रत्येकमयुतं प्रभुम् ॥ २६॥

तुष्टाव च पुनः शम्भुं
भवाद्यैर्भवमीश्वरम् ।
श्री विष्णुरुवाच -
भवः शिवो हरो रुद्रः पुरुषः पद्मलोचनः ॥ २७॥

अर्थितव्यः सदाचारः सर्वशम्भुर्महेश्वरः ।

Page 399 of 523

ईश्वरः स्थाणुरीशानः सहस्राक्षः सहस्रपात्
॥ २८॥

वरीयान् वरदो वन्द्यः शङ्करः परमेश्वरः ।
गङ्गाधरः शूलधरः परार्थैकप्रयोजनः ॥ २९॥

सर्वज्ञः सर्वदेवादिगिरिधन्वा जटाधरः ।
चन्द्रापीडश्चन्द्रमौलिर्विद्वान्विश्वाम
रेश्वरः ॥ ३०॥

वेदान्तसारसन्दोहः कपाली नीललोहितः ।
ध्यानाधारोऽपरिच्छेद्यो गौरीभर्ता
गणेश्वरः ॥ ३१॥

अष्टमूर्तिर्विश्वमूर्तिस्त्रिवर्गः
स्वर्गसाधनः ।
ज्ञानगम्यो दृढप्रज्ञो देवदेवस्त्रिलोचनः
॥ ३२॥

वामदेवो महादेवः पाण्डुः परिदृढो दृढः ।
विश्वरूपो विरूपाक्षो वागीशः शुचिरन्तरः ॥
३३॥

सर्वप्रणयसंवादीवृषाङ्को वृषवाहनः ।

ईशः पिनाकी खट्वाङ्गी चित्रवेषश्चिरन्तनः
॥ ३४॥

तमोहरो महायोगी गोप्ता ब्रह्माङ्गहृज्जटी
।
कालकालः कृत्तिवासाः सुभगः प्रणवात्मकः ॥
३५॥

उन्मत्तवेषश्चक्षुष्योदुर्वासाः
स्मरशासनः ।
दृढायुधः स्कन्दगुरुः परमेष्ठी परायणः ॥
३६॥

अनादिमध्यनिधनो गिरिशो गिरिबान्धवः ।
कुबेरबन्धुः श्रीकण्ठो
लोकवर्णोत्तमोत्तमः ॥ ३७॥

सामान्यदेवः कोदण्डी नीलकण्ठः परश्वधी ।
विशालाक्षो मृगव्याधः सुरेशः सूर्यतापनः ॥
३८॥

धर्मकर्माक्षमः क्षेत्रं भगवान्
भगनेत्रभित् ।
उग्रः पशुपतिस्तार्क्ष्यप्रियभक्तः
प्रियंवदः ॥ ३९॥

Page 402 of 523

दाता दयाकरो दक्षः कपर्दी कामशासनः ।
श्मशाननिलयः सूक्ष्मः श्मशानस्थो महेश्वरः
॥ ४०॥

लोककर्ता भूतपतिर्महाकर्ता महौषधी ।
उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः
॥ ४१॥

नीतिः सुनीतिः शुद्धात्मा सोमसोमरतः सुखी ।
सोमपोऽमृतपः सोमो महानीतिर्महामतिः ॥ ४२॥

अजातशत्रुरालोकः सम्भाव्यो हव्यवाहनः ।
लोककारो वेदकारः सूत्रकारः सनातनः ॥ ४३॥

महर्षिः कपिलाचार्यो
विश्वदीप्तिस्त्रिलोचनः ।
पिनाकपाणिभूदेवः स्वस्तिदः
स्वस्तिकृत्सदा ॥ ४४॥

त्रिधामा सौभगः शर्वः सर्वज्ञः सर्वगोचरः ।
ब्रह्मधृग्विश्वसृक्स्वर्गः कर्णिकारः
प्रियः कविः ॥ ४५॥

शाखो विशाखो गोशाखः शिवोनैकः क्रतुः समः ।

Page 402 of 523

Page 403 of 523

गङ्गाप्लवोदको भावः सकलस्थपतिस्थिरः ॥ ४६॥

विजितात्मा विधेयात्मा भूतवाहनसारथिः ।
सगणो गणकार्यश्च सुकीर्तिश्छिन्नसंशयः ॥
४७॥

कामदेवः कामपालो भस्मोद्धूलितविग्रः ।
भस्मप्रियो भस्मशायी कामी कान्तः कृतागमः ॥
४८॥

समायुक्तो निवृत्तात्मा धर्मयुक्तः
सदाशिवः ।
चतुर्मुखश्चतुर्बाहुर्दुरावासो दुरासदः ॥
४९॥

दुर्गमो दुर्लभो दुर्गः सर्वायुधविशारदः ।
अध्यात्मयोगनिलयः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः ॥
५०॥

शुभाङ्गो लोकसारङ्गो जगदीशोऽमृताशनः ।
भस्मशुद्धिकरो मेरुरोजस्वी शुद्धविग्रहः ॥
५१॥

हिरण्यरेतास्तरणिर्मरीचिर्महिमालयः ।

Page 403 of 523

Page 404 of 523

महाह्रदो महागर्भः सिद्धवृन्दारवन्दितः ॥
५२॥

व्याघ्रचर्मधरो व्याली महाभूतो महानिधिः ।
अमृताङ्गोऽमृतवपुः पञ्चयज्ञः प्रभञ्जनः ॥
५३॥

पञ्चविंशतितत्त्वज्ञः पारिजातः परावरः ।
सुलभः सुव्रतः शूरो वाङ्मयैकनिधिर्निधिः ॥
५४॥

वर्णाश्रमगुरुर्वर्णी
शत्रुजिच्छत्रुतापनः ।
आश्रमः क्षपणः क्षामो ज्ञानवानचलाचलः ॥ ५५॥

प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेयः सुपर्णो वायुवाहनः
।
धनुर्धरो धनुर्वेदो गुणराशिर्गुणाकरः ॥
५६॥

अनन्तदृष्टिरानन्दो दण्डो दमयिता दमः ।
अभिवाद्यो महाचार्यो विश्वकर्मा विशारदः ॥
५७॥

वीतरागो विनीतात्मा तपस्वी भूतभावनः ।

Page 404 of 523

Page 405 of 523

उन्मत्तवेषः प्रच्छन्नो जितकामो जितप्रियः
॥ ५८॥

कल्याणप्रकृतिः कल्पः सर्वलोकप्रजापतिः ।
तपस्वी तारको धीमान् प्रधानप्रभुरव्ययः ॥
५९॥

लोकपालोऽन्तर्हितात्मा कल्यादिः
कमलेक्षणः ।
वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो नियमो
नियमाश्रयः ॥ ६०॥

चन्द्रः सूर्यः शनिः केतुर्विरामो
विद्रुमच्छविः ।
भक्तिगम्यः परं ब्रह्म मृगबाणार्पणोऽनघः ॥
६१॥

अद्रिराजालयः कान्तः परमात्मा जगद्गुरुः ।
सर्वकर्माचलस्त्वष्टा माङ्गल्यो
मङ्गलावृतः ॥ ६२॥

महातपा दीर्घतपाः स्थविष्ठः स्थविरो
ध्रुवः ।
अहः संवत्सरो व्याप्तिः प्रमाणं परमं तपः ॥
६३॥

Page 405 of 523

Page 406 of 523

संवत्सरकरो मन्त्रः प्रत्ययः सर्वदर्शनः ।
अजः सर्वेश्वरः स्निग्धो महारेता महाबलः ॥
६४॥

योगी योग्यो महारेताः सिद्धः
सर्वादिरग्निदः ।
वसुर्वसुमनाः सत्यः सर्वपापहरो हरः ॥ ६५॥

अमृतः शाश्वतः शान्तो बाणहस्तः प्रतापवान्
।
कमण्डलुधरो धन्वी वेदाङ्गो वेदविन्मुनिः ॥
६६॥

भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता लोकनेता दुराधरः
।
अतीन्द्रियो महामायः सर्वावासश्चतुष्पथः ॥
६७॥

कालयोगी महानादो महोत्साहो महाबलः ।
महाबुद्धिर्महावीर्यो भूतचारी पुरन्दरः ॥
६८॥

निशाचरः प्रेतचारी महाशक्तिर्महाद्युतिः ।

Page 406 of 523

Page 407 of 523

अनिर्देश्यवपुः श्रीमान्सर्वहार्यमितो
गतिः ॥ ६९॥

बहुश्रुतो बहुमयो नियतात्मा भवोद्भवः ।
ओजस्तेजो द्युतिकरो नर्तकः सर्वकामकः ॥ ७०॥

नृत्यप्रियो नृत्यनृत्यः प्रकाशात्मा
प्रतापनः ।
बुद्धः स्पष्टाक्षरो मन्त्रः सन्मानः
सारसम्प्लवः ॥ ७१॥

युगादिकृद्युगावर्तो गम्भीरो वृषवाहनः ।
इष्टो विशिष्टः शिष्टेष्टः शरभः शरभो धनुः
॥ ७२॥

अपांनिधिरधिष्ठानं विजयो जयकालवित् ।
प्रतिष्ठितः प्रमाणज्ञो हिरण्यकवचो हरिः ॥
७३॥

विरोचनः सुरगणो विद्येशो विबुधाश्रयः ।
बालरूपो बलोन्माथी विवर्तो गहनो गुरुः ॥
७४॥

करणं कारणं कर्ता सर्वबन्धविमोचनः ।

Page 407 of 523

Page 408 of 523

विद्वत्तमो वीतभयो विश्वभर्ता निशाकरः ॥
७५॥

व्यवसायो व्यवस्थानः स्थानदो जगदादिजः ।
दुन्दुभो ललितो विश्वो
भवात्मात्मनिसंस्थितः ॥ ७६॥

वीरेश्वरो वीरभद्रो वीरहा वीरभृद्विराट् ।
वीरचूडामणिर्वेत्ता तीव्रनादो नदीधरः ॥
७७॥

आज्ञाधारस्त्रिशूली च शिपिविष्टः शिवालयः
।
वालखिल्यो महाचापस्तिग्मांशुर्निधिरव्ययः
॥ ७८॥

अभिरामः सुशरणः सुब्रह्मण्यः सुधापतिः ।
मघवान्कौशिको गोमान् विश्रामः सर्वशासनः ॥
७९॥

ललाटाक्षो विश्वदेहः सारः संसारचक्रभृत् ।
अमोघदण्डी मध्यस्थो हिरण्यो ब्रह्मवर्चसी
॥ ८०॥

परमार्थः परमयः शम्बरो व्याघ्रकोऽनलः ।

Page 408 of 523

Page 409 of 523

रुचिर्वररुचिर्वन्द्यो वाचस्पतिरहर्पतिः
॥ ८१॥

रविर्विरोचनः स्कन्धः शास्ता वैवस्वतो जनः
।
युक्तिरुन्नतकीर्तिश्च शान्तरागः पराजयः ॥
८२॥

कैलासपतिकामारिः सविता रविलोचनः ।
विद्वत्तमो वीतभयो विश्वहर्ताऽनिवारितः ॥
८३॥

नित्यो नियतकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
दूरश्रवा विश्वसहो ध्येयो दुःस्वप्ननाशनः
॥ ८४॥

उत्तारको दुष्कृतिहा दुर्धर्षो दुःसहोऽभयः
।
अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः
किरीटित्रिदशाधिपः ॥ ८५॥

विश्वगोप्ता विश्वभर्ता सुधीरो
रुचिराङ्गदः ।
जननो जनजन्मादिः प्रीतिमान्नीतिमान्नयः ॥
८६॥

Page 409 of 523

विशिष्टः काश्यपो भानुर्भीमो भीमपराक्रमः
।
प्रणवः सप्तधाचारो महाकायो महाधनुः ॥ ८७॥

जन्माधिपो महादेवः सकलागमपारगः ।
तत्त्वातत्त्वविवेकात्मा
विभूष्णुर्भूतिभूषणः ॥ ८८॥

ऋषिर्ब्राह्मणविज्जिष्णुर्जन्ममृत्युजरात
िगः ।
यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा
यज्ञान्तोऽमोघविक्रमः ॥ ८९॥

महेन्द्रो दुर्भरः सेनी यज्ञाङ्गो
यज्ञवाहनः ।
पञ्चब्रह्मसमुत्पत्तिर्विश्वेशो विमलोदयः
॥ ९०॥

आत्मयोनिरनाद्यन्तो षड्विंशत्सप्तलोकधृक्
।
गायत्रीवल्लभः प्रांशुर्विश्वावासः
प्रभाकरः ॥ ९१॥

Page 411 of 523

शिशुर्गिरिरतः सम्राट् सुषेणः सुरशत्रुहा ।
अमोघोऽरिष्टमथनो मुकुन्दो विगतज्वरः ॥ ९२॥

स्वयंज्योतिरनुज्योतिरात्मज्योतिरचञ्चलः
।
पिङ्गलः कपिलश्मश्रुः
शास्त्रनेत्रस्त्रयीतनुः ॥ ९३॥

ज्ञानस्कन्धो महाज्ञानी
निरुत्पत्तिरुपप्लवः ।
भगो विवस्वानादित्यो योगाचार्यो बृहस्पतिः
॥ ९४॥

उदारकीर्तिरुद्योगी सद्योगीसदसन्मयः ।
नक्षत्रमाली राकेशः साधिष्ठानः षडाश्रयः ॥
९५॥

पवित्रपाणिः पापारिर्मणिपूरो मनोगतिः ।
हृत्पुण्डरीकमासीनः शुक्लः शान्तो
वृषाकपिः ॥ ९६॥

विष्णुर्ग्रहपतिः कृष्णः समर्थोऽनर्थनाशनः ।

Page 411 of 523

Page 412 of 523

अधर्मशत्रुरक्षय्यः पुरुहूतः पुरुष्टुतः ॥
९७॥

ब्रह्मगर्भो बृहद्गर्भो धर्मधेनुर्धनागमः
।
जगद्धितैषिसुगतः कुमारः कुशलागमः ॥ ९८॥

हिरण्यवर्णो ज्योतिष्मान्नानाभूतधरो
ध्वनिः ।
अरोगो नियमाध्यक्षो विश्वामित्रो
द्विजोत्तमः ॥ ९९॥

बृहज्योतिः सुधामा च महाज्योतिरनुत्तमः ।
मातामहो मातरिश्वा नभस्वान्नागहारधृक् ॥
१००॥

पुलस्त्यः पुलहोऽगस्त्यो जातूकर्ण्यः
पराशरः ।
निरावरणधर्मज्ञो विरिञ्चो विष्टरश्रवाः ॥
१०१॥

आत्मभूरनिरुद्धोऽत्रि
ज्ञानमूर्तिर्महायशाः ।
लोकचूडामणिर्वीरश्चण्डसत्यपराक्रमः ॥
१०२॥

Page 412 of 523

Page 413 of 523

व्यालकल्पो महाकल्पो महावृक्षः कलाधरः ।
अलंकरिष्णुस्त्वचलो
रोचिष्णुर्विक्रमोत्तमः ॥ १०३॥

आशुशब्दपतिर्वेगी प्लवनः शिखिसारथिः ।
असंसृष्टोऽतिथिः शक्रः प्रमाथी पापनाशनः ॥
१०४॥

वसुश्रवाः कव्यवाहः प्रतप्तो विश्वभोजनः ।
जर्यो जराधिशमनो लोहितश्च तनूनपात् ॥ १०५॥

पृषदश्वो नभोयोनिः सुप्रतीकस्तमिस्रहा ।
निदाघस्तपनो मेघः पक्षः परपुरञ्जयः ॥ १०६॥

मुखानिलः सुनिष्पन्नः सुरभिः शिशिरात्मकः ।
वसन्तो माधवो ग्रीष्मो नभस्यो बीजवाहनः ॥
१०७॥

अङ्गिरामुनिरात्रेयो विमलो विश्ववाहनः ।
पावनः पुरुजिच्छक्रस्त्रिविद्यो नरवाहनः ॥
१०८॥

Page 413 of 523

Page 414 of 523

मनो बुद्धिरहंकारः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रपालकः । तेजोनिधिर्ज्ञाननिधिर्विपाको विघ्नकारकः
॥ १०९॥

अधरोऽनुत्तरोज्ञेयो ज्येष्ठो
निःश्रेयसालयः ।
शैलो नगस्तनुर्दोहो दानवारिररिन्दमः ॥
११०॥

चारुधीर्जनकश्चारु विशल्यो लोकशल्यकृत् ।
चतुर्वेदश्चतुर्भावश्चतुरश्चतुरप्रियः ॥
१११॥

आम्नायोऽथ समाम्नायस्तीर्थदेवशिवालयः ।
बहुरूपो महारूपः सर्वरूपश्चराचरः ॥ ११२॥

न्यायनिर्वाहको न्यायो न्यायगम्यो
निरञ्जनः ।
सहस्रमूर्धा देवेन्द्रः
सर्वशस्त्रप्रभञ्जनः ॥ ११३॥

मुण्डो विरूपो विकृतो दण्डी दान्तो गुणोत्तमः ।

Page 414 of 523

Page 415 of 523

पिङ्गलाक्षोऽथ हर्यक्षो नीलग्रीवो निरामयः
॥ ११४॥

सहस्रबाहुः सर्वेशः शरण्यः सर्वलोकभृत् ।
पद्मासनः परंज्योतिः परावरफलप्रदः ॥ ११५॥

पद्मगर्भो महागर्भो विश्वगर्भो विचक्षणः ।
परावरज्ञो बीजेशः सुमुखः सुमहास्वनः ॥ ११६॥

देवासुरगुरुर्देवो देवासुरनमस्कृतः ।
देवासुरमहामात्रो देवासुरमहाश्रयः ॥ ११७॥

देवादिदेवो देवर्षिर्देवासुरवरप्रदः ।
देवासुरेश्वरो दिव्यो देवासुरमहेश्वरः ॥
११८॥

सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो देवतात्मात्मसम्भवः ।
ईड्योऽनीशः सुरव्याघ्रो देवसिंहो दिवाकरः ॥ ११९॥

विबुधाग्रवरश्रेष्ठः सर्वदेवोत्तमोत्तमः
।
शिवज्ञानरतः श्रीमान्
शिखिश्रीपर्वतप्रियः ॥ १२०॥

Page 415 of 523

Page 416 of 523

जयस्तम्भो विशिष्टम्भो नरसिंहनिपातनः ।
ब्रह्मचारी लोकचारी धर्मचारी धनाधिपः ॥
१२१॥

नन्दी नन्दीश्वरो नग्नो नग्नव्रतधरः शुचिः
।
लिङ्गाध्यक्षः सुराध्यक्षो युगाध्यक्षो
युगावहः ॥ १२२॥

स्ववशः सवशः स्वर्गः स्वरः स्वरमयः स्वनः ।
बीजाध्यक्षो बीजकर्ता धनकृद्धर्मवर्धनः ॥
१२३॥

दम्भोऽदम्भो महादम्भः सर्वभूतमहेश्वरः ।
श्मशाननिलयस्तिष्यः सेतुरप्रतिमाकृतिः ॥
१२४॥

लोकोत्तरस्फुटालोकस्त्र्यम्बको नागभूषणः
।
अन्धकारिर्मखद्वेषी विष्णुकन्धरपातनः ॥
१२५॥

वीतदोषोऽक्षयगुणो दक्षारिः पूषदन्तहृत् ।

Page 416 of 523

Page 417 of 523

धूर्जटिः खण्डपरशुः सकलो निष्कलोऽनघः ॥
१२६॥

आधारः सकलाधारः पाण्डुराभो मृडो नटः ।
पूर्णः पूरयिता पुण्यः सुकुमारः सुलोचनः ॥
१२७॥

सामगेयः प्रियकरः पुण्यकीर्तिरनामयः ।
मनोजवस्तीर्थकरो जटिलो जीवितेश्वरः ॥ १२८॥

जीवितान्तकरो नित्यो वसुरेता वसुप्रियः ।
सद्गतिः सत्कृतिः सक्तः कालकण्ठः कलाधरः ॥
१२९॥

मानी मान्यो महाकालः सद्भूतिः सत्परायणः ।
चन्द्रसञ्जीवनः शास्ता लोकगूढोऽमराधिपः ॥
१३०॥

लोकबन्धुर्लोकनाथः कृतज्ञः कृतिभूषणः ।
अनपाय्यक्षरः कान्तः सर्वशास्त्रभृतां वरः
॥ १३१॥

तेजोमयो द्युतिधरो लोकमायोऽग्रणीरणुः ।
शुचिस्मितः प्रसन्नात्मा दुर्जयो
दुरतिक्रमः ॥ १३२॥

Page 417 of 523

Page 418 of 523

ज्योतिर्मयो निराकारो जगन्नाथो जलेश्वरः ।
तुम्बवीणी महाकायो विशोकः शोकनाशनः ॥ १३३॥

त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः शुद्धः
शुद्धिरथाक्षजः ।
अव्यक्तलक्षणोऽव्यक्तो व्यक्ताव्यक्तो
विशाम्पतिः ॥ १३४॥

वरशीलो वरतुलो मानो मानधनो मयः ।
ब्रह्मा विष्णुः प्रजापालो हंसो
हंसगतिर्यमः ॥ १३५॥

वेधा धाता विधाता च अत्ता हर्ता चतुर्मुखः ।
कैलासशिखरावासी सर्वावासी सतां गतिः ॥ १३६॥

हिरण्यगर्भो हरिणः पुरुषः पूर्वजः पिता ।
भूतालयो भूतपतिर्भूतिदो भुवनेश्वरः ॥ १३७॥

संयोगी योगविद्ब्रह्मा ब्रह्मण्यो
ब्राह्मणप्रियः ।
देवप्रियो देवनाथो देवज्ञो देवचिन्तकः ॥
१३८॥

Page 418 of 523

Page 419 of 523

विषमाक्षः कलाध्यक्षो वृषाङ्को वृषवर्धनः
।
निर्मदो निरहंकारो निर्मोहो निरुपद्रवः ॥
१३९॥

दर्पहा दर्पितो दृप्तः सर्वर्तुपरिवर्तकः
।
सप्तजिह्वः सहस्रार्चिः स्निग्धः
प्रकृतिदक्षिणः ॥ १४०॥

भूतभव्यभवन्नाथः प्रभवो भ्रान्तिनाशनः ।
अर्थोऽनर्थो महाकोशः परकार्यैकपण्डितः ॥
१४१॥

निष्कण्टकः कृतानन्दो निर्व्याजो
व्याजमर्दनः ।
सत्त्ववान्सात्त्विकः
सत्यकीर्तिस्तम्भकृतागमः ॥ १४२॥

अकम्पितो गुणग्राही नैकात्मा नैककर्मकृत्
।
सुप्रीतः सुमुखः सूक्ष्मः सुकरो
दक्षिणोऽनलः ॥ १४३॥

Page 419 of 523

स्कन्धः स्कन्धधरो धुर्यः प्रकटः
प्रीतिवर्धनः ।
अपराजितः सर्वसहो विदग्धः सर्ववाहनः ॥ १४४॥

अधृतः स्वधृतः साध्यः पूर्तमूर्तिर्यशोधरः
।
वराहशृङ्गधृग्वायुर्बलवानेकनायकः ॥ १४५॥

श्रुतिप्रकाशः श्रुतिमानेकबन्धुरनेकधृक्
।
श्रीवल्लभशिवारम्भः शान्तभद्रः समञ्जसः ॥
१४६॥

भूशयो भूतिकृद्भूतिर्भूषणो भूतवाहनः ।
अकायो भक्तकायस्थः कालज्ञानी कलावपुः ॥
१४७॥

सत्यव्रतमहात्यागी निष्ठाशान्तिपरायणः ।
परार्थवृत्तिर्वरदो विविक्तः श्रुतिसागरः
॥ १४८॥

अनिर्विण्णो गुणग्राही कलङ्काङ्कः कलङ्कहा
।
स्वभावरुद्रो मध्यस्थः शत्रुघ्नो
मध्यनाशकः ॥ १४९॥

Page 421 of 523

शिखण्डी कवची शूली चण्डी मुण्डी च कुण्डली ।
मेखली कवची खड्गी मायी संसारसारथिः ॥ १५०॥

अमृत्युः सर्वदृक्
सिंहस्तेजोराशिर्महामणिः ।
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा
वीर्यवान्कार्यकोविदः ॥ १५१॥

वेद्यो वेदार्थविद्गोप्ता सर्वाचारो
मुनीश्वरः ।
अनुत्तमो दुराधर्षो मधुरः प्रियदर्शनः ॥
१५२॥

सुरेशः शरणं सर्वः शब्दब्रह्मसतां गतिः ।
कालभक्षः कलङ्कारिः कङ्कणीकृतवासुकिः ॥
१५३॥

महेष्वासो महीभर्ता निष्कलङ्को विशृङ्खलः
।
द्युमणिस्तरणिर्धन्यः सिद्धिदः
सिद्धिसाधनः ॥ १५४॥

निवृत्तः संवृतः शिल्पो व्यूढोरस्को महाभुजः ।

Page 421 of 523

Page 422 of 523

एकज्योतिर्निरातङ्को नरो नारायणप्रियः ॥
१५५॥

निर्लेपो निष्प्रपञ्चात्मा निर्व्यग्रो
व्यग्रनाशनः ।
स्तव्यस्तवप्रियः स्तोता
व्यासमूर्तिरनाकुलः ॥ १५६॥

निरवद्यपदोपायो विद्याराशिरविक्रमः ।
प्रशान्तबुद्धिरक्षुद्रः क्षुद्रहा
नित्यसुन्दरः ॥ १५७॥

धैर्याग्र्यधुर्यो धात्रीशः शाकल्यः
शर्वरीपतिः ।
परमार्थगुरुर्दृष्टिर्गुरुराश्रितवत्सलः
॥ १५८॥

रसो रसज्ञः सर्वज्ञः सर्वसत्त्वावलम्बनः ।
सूत उवाच -
एवं नाम्नां सहस्रेण तुष्टाव वृषभध्वजम् ॥
१५९॥

स्नापयामास च विभुः पूजयामास पङ्कजैः ।
परीक्षार्थं हरेः पूजाकमलेषु महेश्वरः ॥
१६०॥

Page 422 of 523

गोपयामासकमलं तदैकं भुवनेश्वरः ।
हृतपुष्पो हरिस्तत्र किमिदं
त्वभ्यचिन्तयन् ॥ १६१॥

ज्ञात्वा स्वनेत्रमुद्धृत्य
सर्वसत्त्वावलम्बनम् ।
पूजयामास भावेन नाम्ना तेन जगद्गुरुम् ॥
१६२॥

ततस्तत्र विभुर्दृष्ट्वा तथाभूतं हरो
हरिम् ।
तस्मादवतताराशु मण्डलात्पावकस्य च ॥ १६३॥

कोटिभास्करसंकाशं जटामुकुटमण्डितम् ।
ज्वालामालावृतं दिव्यं तीक्ष्णदंष्ट्रं
भयङ्करम् ॥ १६४॥

शूलटङ्कगदाचक्रकुन्तपाशधरं हरम् ।
वरदाभयहस्तं च दीपिचर्मोत्तरीयकम् ॥ १६५॥

इत्थम्भूतं तदा दृष्ट्वा भवं
भस्मविभूषितम् ।
हृष्टो नमश्चकाराशु देवदेवं जनार्दनः ॥
१६६॥

Page 424 of 523

दुद्रुवुस्तं परिक्रम्य सेन्द्रा देवास्त्रिलोचनम् ।
चचाल ब्रह्मभुवनं चकम्पे च वसुन्धरा ॥ १६७॥

ददाह तेजस्तच्छम्भोः प्रान्तं वै शतयोजनम्
।
अधस्ताच्चोर्ध्वतश्चैव हाहेत्यकृत भूतले ॥
१६८॥

तदा प्राह महादेवः प्रहसन्निव शङ्करः ।
सम्प्रेक्ष्य प्रणयाद्विष्णुं
कृताञ्जलिपुटं स्थितम् ॥ १६९॥

ज्ञातं मयेदमधुना देवकार्यं जनार्दन ।
सुदर्शनाख्यं चक्रं च ददामि तव शोभनम् ॥
१७०॥

यद्रूपं भवता दृष्टं सर्वलोकभयङ्करम् ।
हिताय तव यत्नेन तव भावाय सुव्रत ॥ १७१॥

शान्तं रणाजिरे विष्णो देवानां दुःखसाधनम्
।
शान्तस्य चास्त्रं शान्तं
स्याच्छान्तेनास्त्रेण किं फलम् ॥१७२॥

Page 424 of 523

Page 425 of 523

शान्तस्य समरे चास्त्रं शान्तिरेव तपस्विनाम् ।
योद्धुः शान्त्या बलच्छेदः परस्य
बलवृद्धिदः ॥ १७३॥

देवैरशान्तैर्यद्रूपं मदीयं भावयाव्ययम् ।
किमायुधेन कार्यं वै योद्धुं देवारिसूदन ॥
१७४॥

क्षमा युधि न कार्यं वै योद्धुं देवारिसूदन
।
अनागते व्यतीते च दौर्बल्ये स्वजनोत्करे ॥
१७५॥

अकालिके त्वधर्मे च अनर्थेवारिसूदन ।
एवमुक्त्वा ददौ चक्रं सूर्यायुतसमप्रभम् ॥
१७६॥

नेत्रं च नेता जगतां प्रभुर्वै
पद्मसन्निभम् ।
तदाप्रभृति तं प्राहुः पद्माक्षमिति
सुव्रतम् ॥ १७७॥

दत्त्वैनं नयनं चक्रं विष्णवे नीललोहितः ।

Page 425 of 523

Page 426 of 523

पस्पर्श च कराभ्यां वै सुशुभाभ्यामुवाच ह ॥
१७८॥

वरदोहं वरश्रेष्ठ वरान्वरय चेप्सितान् ।
भक्त्या वशीकृतो नूनं त्वयाहं पुरुषोत्तम ॥
१७९॥

इत्युक्तो देवदेवेन देवदेवं प्रणम्य तम् ।
त्वयि भक्तिर्महादेव प्रसीद वरमुत्तमम् ॥
१८०॥

नान्यमिच्छामि भक्तानामार्तयो नास्ति
यत्प्रभो ।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दयावान् सुतरां भवः
॥ १८१॥

पस्पर्श च ददौ तस्मै श्रद्धां शीतांशुभूषणः
।
प्राह चैवं महादेवः परमात्मानमच्युतम् ॥
१८२॥

मयि भक्तश्च वन्द्यश्च पूज्यश्चैव
सुरासुरैः ।
भविष्यति न संदेहो मत्प्रसादात्सुरोत्तम ॥
१८३॥

Page 426 of 523

Page 427 of 523

यदा सती दक्षपुत्री विनिन्द्येव सुलोचना ।
मातरं पितरं दक्षं भविष्यति सुरेश्वरी ॥
१८४॥

दिव्या हैमवती विष्णो तदा त्वमपि सुव्रत ।
भगिनीं तव कल्याणीं देवीं हैमवतीमुमाम् ॥
१८५॥

नियोगाद्ब्रह्मणः साध्वीं प्रदास्यसि ममैव
ताम् ।
मत्सम्बन्धी च लोकानां मध्ये पूज्यो
भविष्यसि ॥ १८६॥

मां दिव्येन च भावेन तदा प्रभृति शङ्करम् ।
द्रक्ष्यसे च प्रसन्नेन मित्रभूतमिवात्मना
॥ १८७॥

इत्युक्त्वान्तर्दधे रुद्रो
भगवान्नीललोहितः ।
जनार्दनोपि भगवान्देवानामपि सन्निधौ ॥
१८८॥

अयाचत महादेवं ब्रह्माणं मुनिभिः समम् ।

Page 427 of 523

Page 428 of 523

मया प्रोक्तं स्तवं दिव्यं पद्मयोने सुशोभनम् ॥ १८९॥

यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा
द्विजोत्तमान् ।
प्रतिनाम्नि हिरण्यस्य दत्तस्य
फलमाप्नुयात् ॥ १९०॥

अश्वमेधसहस्रेण फलं भवति तस्य वै ।
घृताद्यैः स्नापयेद्रुद्रं स्थाल्या वै
कलशैः शुभैः ॥१९१॥

नाम्नां सहस्रेणानेन श्रद्धया शिवमीश्वरम्
।
सोपि यज्ञसहस्रस्य फलं लब्ध्वा सुरेश्वरैः
॥ १९२॥

पूज्यो भवति रुद्रस्य प्रीतिर्भवति तस्य वै
।
तथास्त्विति तथा प्राह
पद्मयोनेर्जनार्दनम् ॥ १९३॥

जग्मतुः प्रणिपत्यैनं देवदेवं जगद्गुरुम् ।

Page 428 of 523

Page 429 of 523

तस्मान्नाम्नां सहस्रेण पूजयेदनघो द्विजाः
॥ १९४॥

जपीन्नाम्नां सहस्रं च स याति परमां गतिम् ॥
१९५॥

॥ इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे
सहस्रनामभिः
पूजनाद्विष्णुचक्रलाभो
नामाष्टनवतितमोध्यायः ॥

॥ श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रं वायुपुराणे
अध्याय ३० ॥

॥ दक्ष उवाच ॥

नमस्ते देवदेवेश देवारिबलसूदन ।
देवेन्द्र ह्यमरश्रेष्ठ देवदानवपूजित ॥
३०.१८०॥

सहस्राक्ष विरूपाक्ष त्र्यक्ष यक्षाधिपप्रिय ।
सर्वतः पाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ।

Page 429 of 523

Page 430 of 523

सर्वतः श्रुतिमान् लोके सर्वानावृत्य
तिष्ठसि ॥ ३०.१८१॥

शङ्कुकर्ण महाकर्ण कुम्भकर्णार्णवालय ।
गजेन्द्रकर्ण गोकर्ण पाणिकर्ण नमोऽस्तु ते
॥ ३०.१८२॥

शतोदर शतावर्त्त शतजिह्व शतानन ।
गायन्ति त्वां गायत्रिणो ह्यर्च्चयन्ति
तथार्च्चिनः ॥ ३०.१८३॥

देवदानवगोप्ता च ब्रह्मा च त्वं शतक्रतुः ।
मूर्त्तीशस्त्वं महामूर्ते समुद्राम्बु
धराय च ॥ ३०.१८४॥

सर्वा ह्यस्मिन् देवतास्ते गावो गोष्ठ
इवासते ।
शरीरन्ते प्रपश्यामि सोममग्निं जलेश्वरम्
॥ ३०.१८५॥

आदित्यमथ विष्णुञ्च ब्रह्माणं सबृहस्पतिम्
।
क्रिया कार्य्यं कारणञ्च कर्त्ता करणमेव च
॥ ३०.१८६॥

Page 430 of 523

Page 431 of 523

असच्च सदसच्चैव तथैव प्रभवाव्ययम् ।
नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च ॥ ३०.१८७॥

पशूनां पतये चैव नमस्त्वन्धकघातिने ।
त्रिजटाय त्रिशीर्षाय त्रिशूलवरधारिणे ॥
३०.१८८॥

त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिपुरघ्नाय वै
नमः ।
नमश्चण्डाय मुण्डाय प्रचण्डाय धराय च ॥
३०.१८९॥

दण्डि मासक्तकर्णाय दण्डिमुण्डाय वै नमः ।
नमोऽर्द्धदण्डकेशाय निष्काय विकृताय च ॥
३०.१९०॥

विलोहिताय धूम्राय नीलग्रीवाय ते नमः ।
नमस्त्वप्रतिरूपाय शिवाय च नमोऽस्तु ते ॥
३०.१९१॥

सूर्य्याय सूर्य्यपतये
सूर्य्यध्वजपताकिने ।
नमः प्रमथनाथाय वृषस्कन्धाय धन्विने ॥
३०.१९२॥

Page 431 of 523

नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च ।
हिरण्यकृतचूडाय हिरण्यपतये नमः ॥ ३० .१९३॥

सत्रघाताय दण्डाय वर्णपानपुटाय च ।
नमः स्तुताय स्तुत्याय स्तूयमानाय वै नमः ॥
३०.१९४॥

सर्वायाभक्ष्यभक्ष्याय
सर्वभूतान्तरात्मने ।
नमो होत्राय मन्त्राय शुक्लध्वजपताकिने ॥
३०.१९५॥

नमो नमाय नम्याय नमः किलिकिलाय च ।
नमस्ते शयमानाय शयितायोत्थिताय च ॥ ३० .१९६॥

स्थिताय चलमानाय मुद्राय कुटिलाय च ।
नमो नर्त्तनशीलाय मुखवादित्रकारिणे ॥
३०.१९७॥

नाट्योपहारलुब्धाय गीतवाद्यरताय च ।
नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय बलप्रमथनाय च ॥
३०.१९८॥

कलनाय च कल्पाय क्षयायोपक्षयाय च ।

भीमदुन्दुभिहासाय भीमसेनप्रियाय च ॥
३० . १९९॥

उग्राय च नमो नित्यं नमस्ते दशबाहवे ।
नमः कपालहस्ताय चिताभस्मप्रियाय च ॥
३० . २००॥

विभीषणाय भीष्माय भीष्मव्रतधराय च ।
नमो विकृतवक्षाय खड्गजिह्वाग्रदंष्ट्रिणे
॥ ३० . २०१॥

पक्वाममांसलुब्धाय तुम्बवीणाप्रियाय च ।
नमो वृषाय वृष्याय वृष्णये वृषणाय च ॥
३० . २०२॥

कटङ्कटाय चण्डाय नमः सावयवाय च ।
नमस्ते वरकृष्णाय वराय वरदाय च ॥ ३० .२०३॥

वरगन्धमाल्यवस्त्राय वरातिवरये नमः ।
नमो वर्षाय वाताय छायायै आतपाय च ॥ ३० .२०४॥

नमो रक्तविरक्ताय शोभनायाक्षमालिने ।
सम्भिन्नाय विभिन्नाय विविक्तविकटाय च ॥
३० . २०५॥

Page 434 of 523

अघोररूपरूपाय घोरघोरतराय च ।
नमः शिवाय शान्ताय नमः शान्ततराय च ॥
३०.२०६॥

एकपाद्बहुनेत्राय एकशीर्षन्नमोऽस्तु ते ।
नमो वृद्धाय लुब्धाय संविभागप्रियाय च ॥
३०.२०७॥

पञ्चमालार्चिताङ्गाय नमः पाशुपताय च ।
नमश्चण्डाय घण्टाय घण्टया जग्धरन्ध्रिणे ॥
३०.२०८॥

सहस्रशतघण्टाय घण्टामालाप्रियाय च ।
प्राणदण्डाय त्यागाय नमो हिलिहिलाय च ॥
३०.२०९॥

हूंहूङ्काराय पाराय हूंहूङ्कारप्रियाय च ।
नमश्च शम्भवे नित्यं गिरि वृक्षकलाय च ॥
३०.२१०॥

गर्भमांसशृगालाय तारकाय तराय च ।
नमो यज्ञाधिपतये द्रुतायोपद्रुताय च ॥
३०.२११॥

यज्ञवाहाय दानाय तप्याय तपनाय च ।

Page 434 of 523

नमस्तटाय भव्याय तडितां पतये नमः ॥ ३० .२१२॥

अन्नदायान्नपतये नमोऽस्त्वन्नभवाय च ।
नमः सहस्रशीर्ष्णे च सहस्रचरणाय च ॥ ३० .२१३॥

सहस्रोद्यतशूलाय सहस्रनयनाय च ।
नमोऽस्तु बालरूपाय बालरूपधराय च ॥ ३० .२१४॥

बालानाञ्चैव गोप्त्रे च बालक्रीडनकाय च ।
नमः शुद्धाय बुद्धाय क्षोभणायाक्षताय च ॥
३० .२१५॥

तरङ्गाङ्कितकेशाय मुक्तकेशाय वै नमः ।
नमः षट्कर्मनिष्ठाय त्रिकर्मनिरताय च ॥
३० .२१६॥

वर्णाश्रमाणां विधिवत्
पृथक्कर्मप्रवर्तिने ।
नमो घोषाय घोष्याय नमः कलकलाय च ॥ ३० .२१७॥

श्वेतपिङ्गलनेत्राय कृष्णरक्तक्षणाय च ।
धर्मार्थ काममोक्षाय क्रथाय कथनाय च ॥
३० .२१८॥

साङ्ख्याय साङ्ख्यमुख्याय योगाधिपतये नमः
।
नमो रथ्यविरथ्याय चतुष्पथरताय च ॥ ३० .२१९॥

कृष्णा जिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिने ।
ईशानवज्रसंहाय हरिकेश नमोऽस्तु ते ।
अविवेकैकनाथाय व्यक्ताव्यक्त नमोऽस्तु ते
॥ ३० .२२०॥

काम कामद कामध्न धृष्टोदृप्तनिषूदन ।
सर्व सर्वद सर्वज्ञ सन्ध्याराग नमोऽस्तु ते
॥ ३० .२२१॥

महाबाल महाबाहो महासत्त्व महाद्युते ।
महामेघवरप्रेक्ष महाकाल नमोऽस्तु ते ॥
३० .२२२॥

स्थूलजीर्णाङ्गजटिने वल्कलाजिनधारिणे ।
दीप्तसूर्याग्निजटिने वल्कलाजिनवाससे ।
सहस्रसूर्यप्रतिम तपोनित्य नमोऽस्तु ते ॥
३० .२२३॥

उन्मादनशतावर्त्त गङ्गातोयार्द्धमूर्द्धज
।

Page 437 of 523

चन्द्रावर्त्त युगावर्त्त मेघावर्त्त
नमोऽस्तु ते ॥ ३०.२२४॥

त्वमन्नमन्नकर्त्ता च अन्नदश्च त्वमेव हि ।
अन्नस्रष्टा च पक्ता च पक्वभुक्तपचे नमः ॥
३०.२२५॥

जरायुजोऽण्डजश्चैव स्वेदजोद्भिज्ज एव च ।
त्वमेव देवदेवशो भूतग्रामश्चतुर्विधः ॥
३०.२२६ ।
चराचरस्य ब्रह्मा त्वं प्रतिहर्त्ता
त्वमेव च ।
त्वमेव ब्रह्मविदुषामपि ब्रह्मविदां वरः ॥
३०.२२७॥

सत्त्वस्य परमा योनिरब्वायुज्योतिषां
निधिः ।
ऋक्सामानि तथोङ्कारमाहुस्त्वां
ब्रह्मवादिनः ॥ ३०.२२८॥

हविर्हावी हवो हावी हुवां वाचाहुतिः सदा ।
गायन्ति त्वां सुरश्रेष्ठ सामगा
ब्रह्मवादिनः ॥ ३०.२२९॥

यजुर्मयो ऋङ्मयश्च सामाथर्वमयस्तथा ।

Page 437 of 523

Page 438 of 523

पठ्यसे ब्रह्मविद्भिस्त्वं कल्पोपनिषदां गणैः ॥ ३०.२३०॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा
वर्णावराश्च ये ।
त्वामेव मेघसङ्घाश्च विश्वस्त
नितगर्ज्जितम् ॥ ३०.२३१॥

संवत्सरस्त्वमृतवो मासा मासार्द्धमेव च ।
कला काष्ठा निमेषाश्च नक्षत्राणि युगा
ग्रहाः ॥ ३०.२३२॥

वृषाणां ककुदं त्वं हि गिरीणां शिखराणि च ।
सिंहो मृगाणां पततां तार्क्ष्योऽनन्तश्च
भोगिनाम् ॥ ३०.२३३॥

क्षीरोदो ह्युदधीनाञ्च यन्त्राणां धनुरेव
च ।
वज्रम्प्रहरणानाञ्च व्रतानां सत्यमेव च ॥
३०.२३४॥

इच्छा द्वेषश्च रागश्च मोहः क्षामो दमः शमः
।
व्यवसायो धृतिर्लोभः कामक्रोधौ जयाजयौ ॥
३०.२३५॥

Page 438 of 523

Page 439 of 523

त्वं गदी त्वं शरी चापि खट्वाङ्गी झर्झरी तथा ।
छेत्ता भेत्ता प्रहर्त्ता च त्वं
नेताप्यन्तको मतः ॥ ३०.२३६॥

दशलक्षणसंयुक्तो धर्मोऽर्थः काम एव च ।
इन्द्रः समुद्राः सरितः पल्वलानि सरांसि च
॥ ३०.२३७॥

लतावल्ली तृणौषध्यः पशवो मृगपक्षिणः ।
द्रव्यकर्मगुणारम्भः कालपुष्पफलप्रदः ॥
३०.२३८॥

आदिश्चान्तश्च मध्यश्च गायत्र्योङ्कार एव
च ।
हरितो लोहितः कृष्णो नीलः पीतस्तथारुणः ॥
३०.२३९॥

कद्रुश्च कपिलश्चैव कपोतो मेचकस्तथा ।
सुवर्णरेता विख्यातः सुवर्णश्चाप्यतो मतः
॥ ३०.२४०॥

सुवर्णनामा च तथा सुवर्णप्रिय एव च ।

Page 439 of 523

Page 440 of 523

त्वमिन्द्रोऽथ यमश्चैव वरुणो धनदोऽनलः ॥
३०.२४१॥

उत्फुल्लश्चित्रभानुश्च
स्वर्भानुर्भानुरेव च ।
होत्रं होता च होमस्त्वं हुतञ्च प्रहुतं
प्रभुः ॥ ३०.२४२॥

सुपर्णञ्च तथा ब्रह्म यजुषां शतरुद्रियम् ।
पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानाञ्च मङ्गलम्
॥ ३०.२४३॥

गिरिः स्तोकस्तथा वृक्षो जीवः पुद्गल एव च ।
सत्त्वं त्वञ्च रजस्त्वञ्च तमश्च प्रजनं
तथा ॥ ३०.२४४॥

प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ।
उन्मेषश्चैव मेषश्च तथा जृम्भितमेव च ॥
३०.२४५॥

लोहिताङ्गो गदी दंष्ट्री महावक्त्रो
महोदरः ।
शुचिरोमा
हरिच्छ्मश्रुरूर्द्ध्वकेशस्त्रिलोचनः ॥
३०.२४६॥

Page 440 of 523

गीतवादित्रनृत्याङ्गो गीतवादनकप्रियः ।
मत्स्यो जली जलो जल्यो जवः कालः कली कलः ॥
३०.२४७॥

विकालश्च सुकालश्च दुष्कालः कलनाशनः ।
मृत्युश्चैव क्षयोऽन्तश्च क्षमापायकरो हरः
॥ ३०.२४८॥

संवर्त्तकोऽन्तकश्चैव संवर्त्तकबलाहकौ ।
घटो घटीको घण्टीको चूडालोलबलो बलम् ॥
३०.२४९॥

ब्रह्मकालोऽग्निवक्त्रश्च दण्डी मुण्डी च
दण्डधृक् ।
चतुर्युगश्चतुर्वेदश्चतुर्होत्रश्चतुष्पथ
ः ॥ ३०.२५०॥

चतुरा श्रमवेत्ता च चातुर्वर्ण्यकरश्च ह ।
क्षराक्षरप्रियो
धूर्त्तोऽगण्योऽगण्यगणाधिपः ॥ ३० .२५१॥

रुद्राक्षमाल्याम्बरधरो गिरिको
गिरिकप्रियः ।

शिल्पीशः शिल्पिनां श्रेष्ठः
सर्वशिल्पप्रवर्त्तकः ॥ ३० .२५२॥

भगनेत्रान्तकश्चन्द्रः पूष्णो
दन्तविनाशनः ।
गूढावर्त्तश्च गूढश्च गूढप्रतिनिषेविता ॥
३०.२५३॥

तरणस्तारकश्चैव सर्वभूतसुतारणः ।
धाता विधाता सत्वानां निधाता धारणो धरः ॥
३०.२५४॥

तपो ब्रह्म च सत्यञ्च ब्रह्मचर्यमथार्जवम्
।
भूतात्मा भूतकृद्भूतो भूतभव्यभवोद्भवः ॥
३०.२५५॥

भूर्भुवःस्वरितश्चैव
तथोत्पत्तिर्महेश्वरः ।
ईशानो वीक्षणः शान्तो दुर्दान्तो
दन्तनाशनः ॥ ३० .२५६॥

ब्रह्मावर्त्त सुरावर्त्त कामावर्त्त
नमोऽस्तु ते ।

Page 443 of 523

कामबिम्बनिहर्त्ता च कर्णिकाररजःप्रियः ॥
३०.२५७॥

मुखचन्द्रो भीममुखः सुमुखो दुर्मुखो मुखः ।
चतुर्मुखो बहुमुखो रणे ह्यभिमुखः सदा ॥
३०.२५८॥

हिरण्यगर्भः शकुनिर्महोदधिः परो विराट् ।
अधर्महा महादण्डो दण्डधारी रणप्रियः ॥
३०.२५९॥

गोतमो गोप्रतारश्च गोवृषेश्वरवाहनः ।
धर्मकृद्धर्मस्रष्टा च धर्मो
धर्मविदुत्तमः ॥ ३०.२६०॥

त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्दो मानदो मान एव च ।
तिष्ठन् स्थिरश्च स्थाणुश्च निष्कम्पः
कम्प एव च ॥ ३०.२६१॥

दुर्वारणो दुर्विषदो दुःसहो दुरतिक्रमः ।
दुर्द्धरो दुष्प्रकम्पश्च दुर्विदो
दुर्ज्जयो जयः ॥ ३०.२६२॥

शशः शशाङ्कः शमनः शीतोष्णं दुर्जराऽथ तृट् ।

Page 443 of 523

आधयो व्याधयश्चैव व्याधिहा व्याधिगश्च ह ॥
३०.२६३॥

सह्यो यज्ञो मृगा व्याधा
व्याधीनामाकरोऽकरः ।
शिखण्डी पुण्डरीकाक्षः पुण्डरीकावलोकनः ॥
३०.२६४॥

दण्डधरः सदण्डश्च दण्डमुण्डविभूषितः ।
विषपोऽमृतपश्चैव सुरापः क्षीरसोमपः ॥
३०.२६५॥

मधुपश्चाज्यपश्चैव सर्वपश्च महाबलः ।
वृषाश्ववाह्यो वृषभस्तथा वृषभलोचनः ॥
३०.२६६॥

वृषभश्चैव विख्यातो लोकानां लोकसत्कृतः ।
चन्द्रादित्यौ चक्षुषी ते हृदयञ्च पितामहः
।
अग्निरापस्तथा देवो धर्मकर्मप्रसाधितः ॥
३०.२६७॥

न ब्रह्मा न च गोविन्दः पुराणऋषयो न च ।
माहात्म्यं वेदितुं शक्ता याथातथ्येन ते
शिव ॥ ३० .२६८॥

Page 445 of 523

या मूर्त्तयः सुसूक्ष्मास्ते न मह्यं
यान्ति दर्शनम् ।
ताभिर्मां सततं रक्ष पिता पुत्रमिवौरसम् ॥
३०.२६९॥

रक्ष मां रक्षणीयोऽहं तवानघ नमोऽस्तु ते ॥

भक्तानुकम्पी भगवान् भक्तश्चाहं सदा त्वयि
॥ ३०.२७०॥

यः सहस्राण्यनेकानि पुंसामाहृत्य
दुर्द्दशः ।
तिष्ठत्येकः समुद्रान्ते स मे गोप्तास्तु
नित्यशः ॥ ३०.२७१॥

यं विनिद्रा जितश्वासाः सत्त्वस्थाः
समदर्शिनः ।
ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै
योगात्मने नमः ॥ ३०.२७२॥

सम्भक्ष्य सर्व भूतानि युगान्ते
समुपस्थिते ।
यः शेते जलमध्यस्थस्तं
प्रपद्येऽप्सुशायिनम् ॥ ३०.२७३॥

Page 445 of 523

Page 446 of 523

प्रविश्य वदने राहोर्यः सोमं ग्रसते निशि ।
ग्रसत्यर्कञ्च स्वर्भानुर्भूत्वा सोमाग्निरेव च ॥ ३०.२७४॥

येऽङ्गुष्ठमात्राः पुरुषा देहस्थाः
सर्वदेहिनाम् ।
रक्षन्तु ते हि मां नित्यं
नित्यमाप्याययन्तु माम् ॥ ३०.२७५॥

ये चाप्युत्पतिता गर्भादधोभागगताश्च ये ।
तेषां स्वाहाः स्वधाश्चैव आप्नुवन्तु
स्वदन्तु च ॥ ३०.२७६॥

ये न रोदन्ति देहस्थाः प्राणिनो रोदयन्ति च
।
हर्षयन्ति च हृष्यन्ति नमस्तेभ्योऽस्तु
नित्यशः ॥ ३०.२७७॥

ये समुद्रे नदीदुर्गे पर्वतेषु गुहासु च ।
वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारगहनेषु न ॥
३०.२७८॥

चतुष्पथेषु रथ्यासु चत्वरेषु सभासु च ।

Page 446 of 523

Page 447 of 523

चन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्रार्करश्मिषु ॥ ३०.२७९॥

रसातलगता ये च ये च तस्मात्परङ्गताः ।
नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यश्च
नित्यशः ।
सूक्ष्माः स्थूलाः कृशा ह्रस्वा
नमस्तेभ्यस्तु नित्यशः ॥ ३०.२८०॥

सर्वस्त्वं सर्वगो देव सर्वभूतपतिर्भवान्
।
सर्वभूतान्तरात्मा च तेन त्वं न
निमन्त्रितः ॥ ३०.२८१॥

त्वमेव चेज्यसे
यस्माद्यज्ञैर्विविधदक्षिणैः ।
त्वमेव कर्त्ता सर्वस्य तेन त्वं न
निमन्त्रितः ॥ ३०.२८२॥

अथ वा मायया देव मोहितः सूक्ष्मया त्वया ।
एतस्मात् कारणाद्वापि तेन त्वं न
निमन्त्रितः ॥ ३०.२८३॥

प्रसीद मम देवेश त्वमेव शरणं मम ।

Page 447 of 523

Page 448 of 523

त्वं गतिस्त्वं प्रतिष्ठा च न चान्यास्ति न
मे गतिः ॥ ३०.२८४॥

स्तुत्वैवं स महादेवं विरराम प्रजापतिः ।
भगवानपि सुप्रीतः पुनर्दक्षमभाषत ॥ ३०.२८५॥

परितुष्टोऽस्मि ते दक्ष स्तवेनानेन सुव्रत
।
बहुनात्र किमुक्तेन मत्समीपं गमिष्यसि ॥
३०.२८६॥

अथैनमब्रवीद्वाक्यं त्रैलोक्याधिपतिर्भवः
।
कृत्वाश्वासकरं वाक्यं वाक्यज्ञो
वाक्यमाहतम् ॥ ३०.२८७॥

दक्ष दक्ष न कर्त्तव्यो मन्युर्विघ्नमिमं
प्रति ।
अहं यज्ञहा न त्वन्यो दृश्यते तत्पुरा
त्वया ॥ ३०.२८८॥

भूयश्च तं वरमिमं मत्तो गृह्णीष्व सुव्रत ।
प्रसन्नवदनो भूत्वा त्वमेकाग्रमनाः शृणु ॥
३०.२८९॥

Page 448 of 523

अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ।
प्रजापते मत्प्रसादात् फलभागी भविष्यसि ॥
३०.२९०॥

वेदान् षडङ्गानुद्धृत्य
साङ्ख्यान्योगांश्च कृत्स्नशः ।
तपश्च विपुलं तप्त्वा दुश्चरं देवदानवैः ॥
३०.२९१॥

अर्थैर्द्दशार्द्धसंयुक्तैर्गूढमप्राज्ञन
िर्म्मितम् ।
वर्णाश्रमकृतैर्धर्मैर्विपरीतं
क्वचित्समम् ॥ ३०   .२९२॥

श्रुत्यर्थैरध्यवसितं पशुपाशविमोक्षणम् ।
सर्वेषामाश्रमाणान्तु मया पाशुपतं व्रतम्
।
उत्पादितं शुभं दक्ष सर्वपापविमोक्षणम् ॥
३०.२९३॥

अस्य चीर्णस्य यत्सम्यक् फलं भवति पुष्कलम्
।
तदस्तु ते महाभाग मानसस्त्यज्यतां ज्वरः ॥
३०.२९४॥

Page 450 of 523

एवमुक्त्वा महादेवः सपत्नीकः सहानुगः ।
अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामितविक्रमः ॥
३०.२९५॥

अवाप्य च तदा भागं यथोक्तं ब्रह्मणा भवः ।
ज्वरञ्च सर्वधर्मज्ञो बहुधा व्यभजत्तदा ।
शान्त्यर्थं सर्वभूतानां शृणुध्वं तत्र वै
द्विजाः ॥ ३०.२९६॥

शीर्षाभितापो नागानां पर्वतानां शिलारुजः
।
अपान्तु नालिकां
विद्यान्निर्मोकम्भुजगेष्वपि ॥ ३०.२९७॥

स्वौरकः सौरभेयाणामूषरः पृथिवीतले ।
इभा नामपि धर्मज्ञ दृष्टिप्रत्यवरोधनम् ॥
३०.२९८॥

रन्ध्रोद्भूतं तथाश्वानां शिखोद्भेदश्च
बर्हिणाम् ।
नेत्ररोगः कोकिलानां ज्वरः प्रोक्तो
महात्मभिः ॥ ३०.२९९॥

अजानां पित्तभेदश्च सर्वेषामिति नः श्रुतम् ।

Page 450 of 523

Page 451 of 523

शुकानामपि सर्वेषां हिमिका प्रोच्यते ज्वरः ।
शार्दूलेष्वपि वै विप्राः श्रमो ज्वर
इहोच्यते ॥ ३०.३००॥

मानुषेषु तु सर्वज्ञ ज्वरो नामैष कीर्तितः
।
मरणे जन्मनि तथा मध्ये च विशते सदा ॥ ३०.३०१॥

एतन्माहेश्वरं तेजो ज्वरो नाम सुदारुणः ।
नमस्यश्चैव मान्यश्च सर्वप्राणिभिरीश्वरः
॥ ३०.३०२॥

इमां ज्वरोत्पत्तिमदीनमानसः पठेत्सदा यः
सुसमाहितो नरः ।
विमुक्तरोगः स नरो मुदा युतो लभेत कामान् स
यथामनीषितान् ॥ ३०.३०३॥

दक्षप्रोक्तं स्तवञ्चापि कीर्त्तयेद्यः
शृणोति वा ।
नाशुभं प्राप्नुयात्
किञ्चिद्दीर्घञ्चायुरवाप्नुयात् ॥ ३०.३०४॥

यथा सर्वेषु देवेषु वरिष्ठो योगवान् हरः ।

Page 451 of 523

तथा स्तवो वरिष्ठोऽयं स्तवानां
ब्रह्मनिर्मितः ॥ ३०   .३०५॥

यशोराज्यसुखैश्वर्यवित्तायुर्धनकाङ्क्षिभ
िः ।
स्तोतव्यो भक्तिमास्थाय विद्याकामैश्च
यत्नतः ॥ ३०   .३०६॥

व्याधितो दुःखितो दीनश्चौरत्रस्तो
भयार्दितः ।
राजकार्यनियुक्तो वा मुच्यते महतो भयात् ॥
३०.३०७॥

अनेन चैव देहेन गणानां स गणाधिपः ।
इह लोके सुखं प्राप्य गण एवोपपद्यते ॥
३०.३०८॥

न च यक्षाः पिशाचा वा न नागा न विनायकाः ।
कुर्युर्विघ्नं गृहे तस्य यत्र संस्तूयते
भवः ॥ ३० .३०९॥

शृणुयाद्वा इदं नारी सुभक्त्या
ब्रह्मचारिणी ।
पितृभिर्भर्तृपक्षाभ्यां पूज्या भवति
देववत् ॥ ३०   .३१०॥

Page 453 of 523

शृणुयाद्वा इदं सर्वं कीर्त्तयेद्वाप्यभीक्ष्णशः ।
तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धिं
गच्छन्त्यविघ्नतः ॥ ३०.३११॥

मनसा चिन्तितं यच्च यच्च वाचाप्युदाहृतम् ।
सर्वं सम्पद्यते तस्य
स्तवनस्यानुकीर्त्तनात् ॥ ३०.३१२॥

देवस्य सगुहस्याथ देव्या नन्दीश्वरस्य तु ।
बलिं विभवतः कृत्वा दमेन नियमेन च ॥ ३०.३१३॥

ततः स युक्तो गृह्णीयान्नामान्याशु यथाक्रमम् ।
ईप्सितान् लभतेऽत्यर्थं कामान् भोगांश्च
मानवः ।
मृतश्च स्वर्गमाप्नोति स्त्रीसहस्रपरिवृतः ॥ ३०.३१४॥

सर्व कर्मसु युक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ।
पठन् दक्षकृतं स्तोत्रं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

Page 453 of 523

Page 454 of 523

मृतश्च गणसालोक्यं पूज्यमानः सुरासुरैः ॥
३०.३१५॥

वृषेव विधियुक्तेन विमानेन विराजते ।
आभूतसम्प्लवस्थायी रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥
३०.३१६॥

इत्याह भगवान् व्यासः पराशरसुतः प्रभुः ।
नैतद्वेदयते कश्चिन्नेदं श्राव्यन्तु
कस्यचित् ॥ ३०.३१७॥

श्रुत्वैतत्परमं गुह्यं येऽपि स्युः
पापकारिणः ।
वैश्याः स्त्रियश्च शूद्राश्च
रुद्रलोकमवाप्नुयुः ॥ ३०.३१८॥

श्रावयेद्यस्तु विप्रेभ्यः सदा पर्वसु
पर्वसु ।
रुद्रलोकमवाप्नोति द्विजो वै नात्र संशयः ॥
३०.३१९॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते
दक्षशापवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३०॥
॥ वेदसार श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम् ॥

Page 454 of 523

Page 455 of 523

पद्मपुराणान्तर्गतं वेदसाराख्यं

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ श्रीउमामहेश्वराभ्यां नमः ॥

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं
चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये
॥ १॥

ईश्वरं परमं तत्त्वमादिमध्यान्तवर्जितम् ।
आधारं सर्वभूतानमनाधारमविक्रियम् ॥ २॥

अनन्तानन्दबोधाम्बुनिधिमद्भुतविक्रियम् ।
अम्बिकापतिमीशानमनीशं प्रणमाम्यहम् ॥ ३॥

ईशमाद्यन्तनिर्मुक्तमतिशोभनमादरात् ।
नमामि विग्रहं साम्बं संसारामयभेषजम् ॥ ४॥

व्यास उवाच ।
एकदा मुनयः सर्वे द्वारकां द्रष्टुमागताः ।
वासुदेवं च सोत्कण्ठाः कृष्णदर्शनलालसाः ॥
५॥

Page 455 of 523

Page 456 of 523

ततः स भगवान्प्रीतः पूजां चक्रे यथाविधि ।
तेषामाशीस्ततो गृह्य बहुमानपुरःसरम् ॥ ६॥

तैः पृष्टः कथयामास कुमारप्रभवं च यत् ।
चरितं भूमिभारघ्नं लोकानन्दकरं परम् ॥ ७॥

मार्कण्डेयमुखाः सर्वे
माध्याह्निकक्रियोत्थिताः ।
कृष्णः स्नानमथो चक्रे मृदक्षतकुशादिभिः ॥
८॥

पीताम्बरं त्रिपुण्ड्रं च धृत्वा
रुद्राक्षमालिकाः ।
सूर्योपस्थानं सन्ध्यां च
स्मृतिधर्ममनुस्मरन् ॥ ९॥

शिवपूजां ततः कृष्णो गन्धपुष्पाक्षतादिभिः
।
चकार विधिवद्भक्त्या नमस्कारयुतां शुभाम्
॥ १०॥

जय शङ्कर सोमेश रक्ष रक्षेति चाब्रवीत् ।
जजाप शिवसाहस्रं भुक्तिमुक्तिप्रदं विभोः
।
अनन्यमानसः शान्तः पद्मासनगतः शुचिः ॥ ११॥

Page 456 of 523

Page 457 of 523

ततस्ते विस्मयापन्ना दृष्ट्वा कृष्णविचेष्टितम् । मार्कण्डेयोऽवदत्कृष्णं बहुशो मुनिसम्मतम् ॥ १२॥

मार्कण्डेय उवाच
त्वं विष्णुः कमलाकान्तः परमात्मा
जगद्गुरुः । त्वं कृष्णः
भवत्पूज्यः कथं शम्भुरेतत्सर्वं वदस्व मे ॥
१३॥

व्यास उवाच
अथ ते मुनयः सर्वे मार्कण्डेयं समार्चयन् ।
वचोभिर्वासुदेवश्च पृष्टः साधु त्वयेति च ॥
१४॥

श्रीकृष्ण उवाच
साधु साधु मुने पृष्टं हिताय सकलस्य च ॥ १५॥

अज्ञातं तव नास्त्येव तथापि च वदाम्यहम् ।
दैवतं सर्वलोकानां सर्वकारणकारणम् ॥ १६॥
सर्वदेवानां
ज्योतिर्यत्परमानन्दं सावधानमतिः शृणु ।

Page 457 of 523

Page 458 of 523

विश्वपावनमीशानं गुणातीतमजं परम् ॥ १७॥
विश्वसाधनमीशानं
जगतस्तस्थुषो ह्यात्मा मम मूलं महामुने ।
यो देवः सर्वदेवानां ध्येयः पूज्यः सदाशिवः
॥ १८॥

स शिवः स महादेवः शङ्करश्च निरञ्जनः ।
तस्मान्नान्यः परो देवस्त्रिषु लोकेषु
विद्यते ॥ १९॥

सर्वज्ञः सर्वगः शक्तः सर्वात्मा
सर्वतोमुखः ।
पठ्यते सर्वसिद्धान्तैर्वेदान्तैर्यो
मुनीश्वराः ॥ २०॥

तस्मिन्भक्तिर्महादेवे मम धातुश्च निर्मला
।
महेशः परमं ब्रह्म शान्तः सूक्ष्मः
परात्परः ॥ २१॥

सर्वान्तरः सर्वसाक्षी चिन्मयस्तमसः परः ।
निर्विकल्पो निराभासो निःसङ्गो निरुपद्रवः
॥ २२॥

निर्लेपः सकलाध्यक्षो महापुरुष ईश्वरः ।

Page 458 of 523

Page 459 of 523

तस्य चेच्छाभवत्पूर्वं
जगत्स्थित्यन्तकारिणी ॥ २३॥

वामाङ्गादभवं तस्य सोऽहं विष्णुरिति
स्मृतः ।
जनयामास धातारं दक्षिणाङ्गात्सदाशिवः ॥
२४॥

मध्यतो रुद्रमीशानं कालात्मा परमेश्वरः ।
तपः कुर्वन्तु भो वत्सा अब्रवीदिति तान् शिवः ॥ २५॥ तपस्तपन्तु भो
ततस्ते शिवमात्मानं प्रोचुः संयतमानसाः ।
स्तुत्वा तु विधिवत्स्तोत्रैः प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ २६॥

ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऊचुः
तपः केन प्रकारेण कर्तव्यं परमेश्वर ।
ब्रूहि सर्वमशेषेण स्वात्मानं वेत्सि
नापरः ॥ २७॥

श्रीमहादेव उवाच Var शिव उवाच
कायेन मनसा वाचा ध्यानपूजाजपादिभिः ।
कामक्रोधादिरहितं तपः कुर्वन्तु भो सुराः ॥
२८॥

Page 459 of 523

Page 460 of 523

देवा ऊचुः
त्वया यत्कथितं शम्भो
दुर्ज्ञेयमजितात्मभिः ।
सौम्योपायमतो ब्रह्मन्वद कारुण्यवारिधे ॥
२९॥

श्रीशङ्कर उवाच Var शिव उवाच
शृणुध्वं सर्वपापघ्नं भुक्तिमुक्तिप्रदं
नृणाम् ।
सहस्रनामसद्विद्यां जपन्तु मम सुव्रताः ॥
३०॥

यया संसारमग्नानां मुक्तिर्भवति शाश्वती ।
शृण्वन्तु तद्विधानं हि महापातकनाशनम् ॥
३१॥
पठतां शृण्वतां सद्यो मुक्तिः
स्यादनपायिनी ।
ब्रह्मचारी कृतस्नानः शुक्लवासा
जितेन्द्रियः ॥ ३२॥

भस्मधारी मुनिर्मौनी पद्मासनसमन्वितः ।
ध्यात्वा मां सकलाधीशं निराकारं
निरीश्वरम् ॥ ३३॥

पार्वतीसहितं शम्भुं जटामुकुटमण्डितम् ।

Page 460 of 523

दधानं चर्म वैयाघ्रं चन्द्रार्धकृतशेखरम्
॥ ३४॥ वसानं चर्म
त्र्यम्बकं वृषभारूढं
कृत्तिवाससमुज्ज्वलम् ।
सुरार्चितपदद्वन्द्वं दिव्यभोगं
सुसुन्दरम् ॥ ३५॥

बिभ्राणं सुप्रसन्नं च कुठारवरदाभयम् ।
दुर्दर्शं कमलासीनं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥
३६॥ दुरन्तं
विश्वकायं चिदानन्दं शुद्धमक्षरमव्ययम् ।
सहस्रशिरसं शर्वमनन्तकरसंयुतम् ॥ ३७॥

Var शम्भुमनन्तकरसंयुतम्
सहस्रचरणं दिव्यं सोमसूर्याग्निलोचनम् ।
जगद्योनिमजं ब्रह्म शिवमाद्यं सनातनम् ॥
३८॥

दंष्ट्राकरालं दुष्प्रेक्ष्यं
सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
निशाकरकराकारं भेषजं भवरोगिणाम् ॥ ३९॥

पिनाकिनं विशालाक्षं पशूनां पतिमीश्वरम् ।
कालात्मानं कालकालं देवदेवं महेश्वरम् ॥
४०॥

Page 462 of 523

ज्ञानवैराग्यसम्पन्नं योगानन्दकरं परम् ।
योगानन्दमयं
शाश्वतैश्वर्यसम्पन्नं
महायोगीश्वरेश्वरम् ॥ ४१॥

समस्तशक्तिसंयुक्तं पुण्यकायं दुरासदम् ।
तारकं ब्रह्म सम्पूर्णमणीयांसं महत्तरम् ॥
४२॥ महत्तमम्
यतीनां परमं ब्रह्म व्रतिनां तपसः फलम् ।
संयमीहृत्समासीनं तपस्विजनसंवृतम् ॥ ४३॥

विधीन्द्रविष्णुनमितं मुनिसिद्धनिषेवितम्
।
महादेवं महात्मानं देवानामपि दैवतम् ॥ ४४॥
महानन्दं
शान्तं पवित्रमोङ्कारं ज्योतिषां
ज्योतिमुत्तमम् ।
इति ध्यात्वा शिवं चित्ते रक्षार्थं कवचं
न्यसेत् ॥ ४५॥

Var ततः पठेद्धि कवचं मम सर्वाघनाशनम् ॥

कवचं
शङ्करो मे शिरः पातु ललाटं भाललोचनः ।

Page 462 of 523

विश्वचक्षुर्दृशौ पातु भ्रुवौ रुद्रो
ममावतु ॥ ४६॥

Var विश्वचक्षुर्दृशौ पातु रुद्रः पातु
भ्रुवौ मम ॥

गण्डौ पातु महेशानः श्रुती रक्षतु पूर्वजः
।
कपोलौ मे महादेवः पातु नासां सदाशिवः ॥ ४७॥

मुखं पातु हविर्भोक्ता ओष्ठौ पातु महेश्वरः
।
दन्तान् रक्षतु देवेशस्तालू सोमकलाधरः ॥
४८॥

रसनां परमानन्दः पातु शङ्खं शिवाप्रियः ।
चुबुकं पातु मे शम्भुः श्मश्रुं
शत्रुविनाशानः ॥ ४९॥

कूर्चं पातु भवः कण्ठं नीलकण्ठोऽवतु
ध्रुवम् ।
स्कन्धौ स्कन्दगुरुः पातु बाहू पातु
महाभुजः ॥ ५०॥ स्कन्धौ स्कन्दपिता
उपबाहू महावीर्यः करौ विबुधसत्तमः ।

Page 464 of 523

अङ्गुलीः पातु पञ्चास्यः पर्वाणि च
सहस्रपात् ॥ ५१॥

हृदयं पातु सर्वात्मा स्तनौ पातु पितामहः ।
उदरं हुतभुक्पातु मध्यं पातु मध्यमेश्वरः ॥
५२॥

कुक्षिं पातु भवानीशः पृष्ठं पातु
कुलेश्वरः ।
प्राणान्मे प्राणदः पातु नाभिं भीमः कटिं
विभुः ॥ ५३॥

सक्थिनी पातु मे भर्गो जानुनी भुवनाधिपः ।
जङ्घे पुररिपुः पातु चरणौ भवनाशनः ॥ ५४॥

शरीरं पातु मे शर्वो बाह्यमाभ्यन्तरं शिवः
।
इन्द्रियाणि हरः पातु सर्वत्र जयवर्धनः ॥
५५॥

प्राच्यां दिशि मृडः पातु दक्षिणे यमसूदनः
। पूर्वे मम मृडः
वारुण्यां सलिलाधीश उदीच्यां मे महीधरः ॥
५६॥

Page 464 of 523

Page 465 of 523

ईशान्यां पातु भूतेश आग्नेय्यां रविलोचनः ।
नैरृत्यां भूतभृत्पातु वायव्यां बलवर्धनः
॥ ५७॥

ऊर्ध्वं पातु मखद्वेषी ह्यधः संसारनाशनः ।
सर्वतः सुखदः पातु बुद्धिं पातु सुलोचनः ॥
५८॥

इति कवचम् ।

एवं न्यासविधिं कृत्वा साक्षाच्छम्भुमयो
भवेत् ।
नमो हिरण्यबाह्वादि पठेन्मन्त्रं तु
भक्तितः ॥ ५९॥

सद्योजातादिभिर्मन्त्रैर्नमस्कुर्यात्सदा
शिवम् ।
ततः सहस्रनामेदं पठितव्यं मुमुक्षुभिः ॥
६०॥

सर्वकार्यकरं पुण्यं महापातकनाशनम् ।
सर्वगुह्यतमं दिव्यं सर्वलोकहितप्रदम् ॥
६१॥

Page 465 of 523

Page 466 of 523

मन्त्राणां परमो मन्त्रो भवदुःखषडूर्मिहृत् ।
ओं नमः शम्भवे चेति षड्भिर्मन्त्रैः षडङ्गकम् ।
न्यासं कृत्वा तु विधिवत्सम्यग्ध्यानं ततश्चरेत् ॥ ६२॥

विनियोगः (न्यास)
ॐ अस्य
श्रीवेदसाराख्यपरमदिव्यशिवसहस्रनामस्तोत् रमन्त्रस्य
श्रीभगवान् नारायण ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः ।
परमात्मा श्रीमहादेवो देवता । नमः इति बीजम् ।
शिवायेति शक्तिः । चैतन्यमिति कीलकम् ।
श्रीमहादेवप्रीत्यर्थे एवं प्रसादसिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।
अथ न्यासः ।
॥ अथ करन्यासः ॥

ॐ नमः शम्भवे च अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ नमः मयोभवे च तर्जनीभ्यां नमः ।
ॐ नमः शङ्कराय च मध्यमाभ्यां नमः ।
ॐ नमः मयस्कराय च अनामिकाभ्यां नमः ।

Page 466 of 523

Page 467 of 523

ॐ नमः शिवाय च कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
ॐ नमः शिवतराय च करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ॥

॥ अथ हृदयाद्यङ्गन्यासः ॥

ॐ नमः शम्भवे च हृदयाय नमः ।
ॐ नमः मयोभवे च शिरसे स्वाहा ।
ॐ नमः शङ्कराय च शिखायै वषट् ।
ॐ नमः मयस्कराय च कवचाय हुम् ।
ॐ नमः शिवाय च नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ नमः शिवतराय च अस्त्राय फट् ॥

भूर्भुवस्सुवरोमिति दिग्बन्धः ॥

। अथ ध्यानम् ।
कैलासाद्रिनिभं शशाङ्ककलया स्फूर्जज्जटामण्डलं
नासालोकनतत्परं त्रिनयनं वीरासनाध्यासितम् । मुद्राटङ्ककुरङ्गजानुविलसद्बाहुं प्रसन्नाननं
कक्ष्याबद्धभुजङ्गमं मुनिवृतं वन्दे महेशं परम् ॥ १॥

Page 467 of 523

Page 468 of 523

शुद्धस्फटिकसङ्काशं त्रिनेत्रं
चेन्दुशेखरम् ।
पञ्चवक्त्रं महाबाहुं दशबाहुसमन्वितम् ॥
२॥

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं नागाभरणभूषितम् ।
परिपूर्णं परानन्दं परं ज्योतिः परात्परम्
॥ ३॥

पराशक्त्या श्रिया सार्धं परमानन्दविग्रहम् ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ।
श्रीरुद्रं सच्चिदानन्दं ध्यायेत्
सर्वात्मसिद्धये ॥ ४॥

॥ अथ लमित्यादि पञ्चपूजा ॥

लं पृथिव्यात्मने गन्धं समर्पयामि ।
हं आकाशात्मने पुष्पैः पूजयामि ।
यं वाय्वात्मने धूपमाघ्रापयामि ।
रं अग्न्यात्मने दीपं दर्शयामि ।
वं अमृतात्मने अमृतं महानैवेद्यं निवेदयामि ।
सं सर्वात्मने सर्वोपचारपूजां समर्पयामि ॥

Page 468 of 523

Page 469 of 523

अथ सहस्रनामस्तोत्रम् ॥

ॐ नमः पराय देवाय शङ्कराय महात्मने ।
कामिने नीलकण्ठाय निर्मलाय कपर्दिने ॥ १॥

निर्विकल्पाय शान्ताय निरहङ्कारिणे नमः ।
अनर्घ्याय विशालाय सालहस्ताय ते नमः ॥ २॥
अनर्घाय
निरञ्जनाय शर्वाय श्रुताय च परात्मने ।
नमः शिवाय भर्गाय गुणातीताय वेधसे ॥ ३॥

महादेवाय पीताय पार्वतीपतये नमः । Var
वीताय
केवलाय महेशाय विशुद्धाय बुधात्मने ॥ ४॥

कैवल्याय सुदेहाय निःस्पृहाय स्वरूपिणे ।
नमः सोमविभूषाय कालायामिततेजसे ॥ ५॥

अजिराय जगत्पित्रे जनकाय पिनाकिने ।
निराधाराय सिंहाय मायातीताय ते नमः ॥ ६॥

बीजाय सर्पभूषाय पशूनां पतये नमः ।
पुरन्दराय भद्राय पुरुषाय महीयसे ॥ ७॥

महासन्तोषरूपाय ज्ञानिने शुद्धबुद्धये ।

Page 469 of 523

नमो वृद्धस्वरूपाय तपसे परमात्मने ॥ ८॥

पूर्वजाय सुरेशाय ब्रह्मणेऽनन्तमूर्तये ।
निरक्षराय सूक्ष्माय कैलासपतये नमः ॥ ९॥

निरामयाय कान्ताय निरातङ्काय ते नमः ।
निरालम्बाय विश्वाय नित्याय यतये नमः ॥ १०॥

आत्मारामाय भव्याय पूज्याय परमेष्ठिने ।
विकर्तनाय सूर्म्याय शम्भवे विश्वरूपिणे ॥
११॥

ताराय हंसनाथाय प्रतिसर्याय ते नमः ।
परावरेशरुद्राय भवायालङ्घ्यशक्तये ॥ १२॥

इन्द्रध्वंसनिधीशाय कालहन्त्रे मनस्विने ।
विश्वमात्रे जगद्धात्रे जगन्नेत्रे नमो
नमः ॥ १३॥

जटिलाय विरागाय पवित्राय मृडाय च ।
निरवद्याय पात्राय स्तेनानां पतये नमः ॥
१४॥

नादाय रविनेत्राय व्योमकेशाय ते नमः ।
चतुर्भोगाय साराय योगिनेऽनन्तमायिने ॥ १५॥

Var योगिनेऽनन्तगामिने
धर्मिष्ठाय वरिष्ठाय पुरत्रयविघातिने ।
गरिष्ठाय गिरीशाय वरदाय नमो नमः ॥ १६॥

व्याघ्रचर्माम्बरायाथ दिशावस्त्राय ते नमः
। दिग्वस्त्राय च
परमप्रेममन्त्राय प्रथमाय सुचक्षुषे ॥ १७॥

आद्याय शूलहस्ताय शितिकण्ठाय तेजसे । ते
नमः
उग्राय वामदेवाय श्रीकण्ठाय नमो नमः ॥ १८॥

विश्वेश्वराय सूर्याय गौरीशाय वराय च ।
मृत्युञ्जयाय वीराय वीरभद्राय ते नमः ॥ १९॥

कामनाशाय गुरवे मुक्तिनाथाय ते नमः ।
विरूपाक्षाय सूताय वह्निनेत्राय ते नमः ॥
२०॥

जलन्धरशिरच्छेत्रे हविषे हितकारिणे ।
महाकालाय वैद्याय सघृणेशाय ते नमः ॥ २१॥

नम ओङ्काररूपाय सोमनाथाय ते नमः ।
रामेश्वराय शुचये भौमेशाय नमो नमः ॥ २२॥

त्र्यम्बकाय निरीहाय केदाराय नमो नमः ।
गङ्गाधराय कवये नागनाथाय ते नमः ॥ २३॥

भस्मप्रियाय सूद्याय लक्ष्मीशाय नमो नमः ।
पूर्णाय भूतपतये सर्वज्ञाय दयालवे ॥ २४॥

धर्माय धनदेशाय गजचर्माम्बराय च ।
भालनेत्राय यज्ञाय श्रीशैलपतये नमः ॥ २५॥

कृशानुरेतसे नीललोहिताय नमो नमः ।
अन्धकासुरहन्त्रे च पावनाय बलाय च ॥ २६॥

चैतन्याय त्रिनेत्राय दक्षनाशकराय च ।
नमः सहस्रशिरसे जयरूपाय ते नमः ॥ २७॥

सहस्रचरणायाथ योगिहृत्पद्मवासिने ।
सद्योजाताय वन्द्याय सर्वदेवमयाय च ॥ २८॥

आमोदाय प्रगल्भाय गायत्रीवल्लभाय च ।
व्योमाकाराय विप्राय नमो विप्रप्रियाय च ॥
२९॥

अघोराय सुवेषाय श्वेतरूपाय ते नमः ।

विद्वत्तमाय चित्राय विश्वग्रासाय नन्दिने
॥ ३०॥

अधर्मशत्रुरूपाय दुन्दुभेर्मर्दनाय च ।
अजातशत्रवे तुभ्यं जगत्प्राणाय ते नमः ॥
३१॥

नमो ब्रह्मशिरश्छेत्रे पञ्चवक्त्राय
खड्गिने ।
नमस्ते हरिकेशाय पञ्चवर्णाय वज्रिणे ॥ ३२॥

नमः पञ्चाक्षरायाथ गोवर्धनधराय च ।
प्रभवे सर्वलोकानां कालकूटविषादिने ॥ ३३॥

सिद्धेश्वराय सिद्धाय सहस्रवदनाय च ।
नमः सहस्रहस्ताय सहस्रनयनाय च ॥ ३४॥

सहस्रमूर्तये तुभ्यं जिष्णवे जितशत्रवे ।
काशीनाथाय गेह्याय नमस्ते विश्वसाक्षिणे ॥
३५॥

हेतवे सर्वजीवानां पालकाय नमो नमः ।
जगत्संहारकाराय त्रिधावस्थाय ते नमः ॥ ३६॥

एकादशस्वरूपाय नमस्ते वह्निमूर्तये ।

Page 474 of 523

नरसिंहमहादर्पघातिने शरभाय च ॥ ३७॥

भस्माभ्यक्ताय तीर्थाय जाह्नवीजनकाय च ।
वल्लभाय
देवदानवदैत्यानां गुरवे ते नमो नमः ॥ ३८॥

दलिताञ्जनभासाय नमो वायुस्वरूपिणे ।
स्वेच्छामन्त्रस्वरूपाय प्रसिद्धाय नमो नमः ॥ ३९॥

Var प्रसिद्धायात्मने नमः
वृषध्वजाय गोष्ठ्याय
जगद्यन्त्रप्रवर्तिने ।
अनाथाय प्रजेशाय विष्णुगर्वहराय च ॥ ४०॥

हरेर्विधातृकलहनाशकाय ते नमो नमः ।
Var हरिर्विधातृकलहनाशकाय
नमस्ते दशहस्ताय गगनाय नमो नमः ॥ ४१॥

कैवल्यफलदात्रे च परमाय नमो नमः ।
ज्ञानाय ज्ञानगम्याय घण्टारवप्रियाय च ॥
४२॥

पद्मासनाय पुष्टाय निर्वाणाय नमो नमः ।
अयोनये सुदेहाय ह्युत्तमाय नमो नमः ॥ ४३॥

Page 474 of 523

अन्तकालाधिपतये विशालाक्षाय ते नमः ।
कुबेरबन्धवे तुभ्यं सोमाय सुखदायिने ॥ ४४॥

अमृतेश्वररूपाय कौबेराय च धन्विने । Var
कौबेराय नमो नमः
प्रियम्वदसमर्थाय वन्दिने विभवाय च ॥ ४५॥

गिरिशाय गिरित्राय गिरिशन्ताय ते नमः ।
पारिजाताय बृहते पञ्चयज्ञाय ते नमः ॥ ४६॥

तरुणाय विशिष्टाय बालरूपधराय च ।
जीवितेशाय तुष्टाय पुष्टानां पतये नमः ॥
४७॥

भवहेत्यै हिरण्याय कनिष्ठाय नमो नमः ।
मध्यमाय विधात्रे च ते शूराय सुभगाय च ॥ ४८॥

आदित्यतापनायाथ नमस्ते रुद्रमन्यवे ।
महाह्रदाय ह्रस्वाय वामनाय नमो नमः ॥ ४९॥

नमस्तत्पुरुषायाथ चतुर्हस्ताय मायिने Var
ते नमः ।
नमो धूर्जटये तुभ्यं जगदीशाय ते नमः ॥ ५०॥

जगन्नाथस्वरूपाय लीलाविग्रहरूपिणे ।
अनघाय नमस्तुभ्यममराय नमो नमः ॥ ५१॥

अमृताय नमस्तुभ्यमच्छात्राय नमो नमः ।
लोकाध्यक्षाय वै तुभ्यमनादिनिधनाय च ॥ ५२॥

व्यक्तेतराय व्यक्ताय नमस्ते परमाणवे ।
लघुस्थूलस्वरूपाय नमः परशुधारिणे ॥ ५३॥

नमः खट्वाङ्गहस्ताय नागहस्ताय ते नमः ।
वरदाभयहस्ताय घण्टाहस्ताय ते नमः ॥ ५४॥

घस्मराय नमस्तुभ्यमजिताय नमो नमः ।
अणिमादिगुणेशाय पञ्चब्रह्ममयाय च ॥ ५५॥

पुरातनाय शुद्धाय बलप्रमथनाय च ।
पुण्योदयाय पद्माय विरक्ताय नमो नमः ॥ ५६॥

उदाराय विचित्राय विचित्रगतये नमः ।
वाग्विशुद्धाय चितये निर्गुणाय नमो नमः ॥
५७॥

परमेशाय शेषाय नमः पद्मधराय च ।
महेन्द्राय सुशीलाय करवीरप्रियाय च ॥ ५८॥

महापराक्रमायाथ नमस्ते कालरूपिणे ।
विष्टरश्रवसे लोकचूडारत्नाय ते नमः ॥ ५९॥

साम्राज्यकल्पवृक्षाय करुणाय नटाय च । Var
नमस्तुभ्यं त्विषीमते
अनर्घ्याय वरेण्याय वज्ररूपाय ते नमः ॥ ६०॥

Var वरेण्याय नमस्तुभ्यं यज्ञरूपाय ते नमः
परमज्योतिषे पद्मगर्भाय सलिलाय च ।
तत्त्वाधिकाय सर्गाय नमो दीर्घाय
स्रग्विणे ॥ ६१॥

नमस्ते पाण्डुरङ्गाय घोराय ब्रह्मरूपिणे ।
निष्कलाय नमस्तुभ्यं प्रपथ्याय नमो नमः ॥
६२॥ सामगानप्रियाय च
नमो जयाय क्षेत्राय क्षेत्राणां पतये नमः ।
कलाधराय पूताय पञ्चभूतात्मने नमः ॥ ६३॥

अनिर्विण्णाय तथ्याय पापनाशकराय च ।
विश्वतश्चक्षुषे तुभ्यं
मन्त्रिणेऽनन्तरूपिणे ॥ ६४॥

सिद्धसाधकरूपाय मेदिनीरूपिणे नमः ।
अगण्याय प्रतापाय सुधाहस्ताय ते नमः ॥ ६५॥

श्रीवल्लभायेध्रियाय स्थाणवे मधुराय च ।
उपाधिरहितायाथ नमः सुकृतराशये ॥ ६६॥

नमो मुनीश्वरायाथ शिवानन्दाय ते नमः ।
रिपुघ्नाय नमस्तेजोराशयेऽनुत्तमाय च ॥ ६७॥

चतुर्मूर्तिवपुःस्थाय
नमोबुद्धीन्द्रियात्मने ।
उपद्रवहरायाथ प्रियसन्दर्शनाय च ॥ ६८॥

भूतनाथाय मूलाय वीतरागाय ते नमः ।
नैष्कर्म्याय विरूपाय षट्चक्राय विशुद्धये
॥ ६९॥

कुलेशायावनीभर्त्रे भुवनेशाय ते नमः ।
हिरण्यबाहवे जीववरदाय नमो नमः ॥ ७०॥

आदिदेवाय भाग्याय चन्द्रसञ्जीवनाय च ।
हराय बहुरूपाय प्रसन्नाय नमो नमः ॥ ७१॥

आनन्दपूरितायाथ कूटस्थाय नमो नमः ।
नमो मोक्षफलायाथ शाश्वताय विरागिणे ॥ ७२॥

यज्ञभोक्त्रे सुषेणाय दक्षयज्ञविघातिने ।

नमः सर्वात्मने तुभ्यं विश्वपालाय ते नमः ॥
७३॥

विश्वगर्भाय गर्भाय देवगर्भाय ते नमः ।
संसारार्णवमग्नानां समुद्धरणहेतवे ॥ ७४॥

मुनिप्रियाय खल्याय मूलप्रकृतये नमः ।
समस्तसिद्धये तेजोमूर्तये ते नमो नमः ॥ ७५॥

आश्रमस्थापकायाथ वर्णिने सुन्दराय च ।
मृगबाणार्पणायाथ शारदावल्लभाय च ॥ ७६॥

विचित्रमायिने तुभ्यमलङ्करिष्णवे नमः ।
बर्हिर्मुखमहादर्पमथनाय नमो नमः ॥ ७७॥

नमोऽष्टमूर्तये तुभ्यं निष्कलङ्काय ते नमः
।
नमो हव्याय भोज्याय यज्ञनाथाय ते नमः ॥ ७८॥

नमो मेध्याय मुख्याय विशिष्टाय नमो नमः ।
अम्बिकापतये तुभ्यं महादान्ताय ते नमः ॥
७९॥

सत्यप्रियाय सत्याय प्रियनित्याय ते नमः ।

Page 480 of 523

नित्यतृप्ताय वेदित्रे मृदुहस्ताय ते नमः ॥
८०॥

अर्धनारीश्वरायाथ कुठारायुधपाणये ।
वराहभेदिने तुभ्यं नमः कङ्कालधारिणे ॥ ८१॥

महार्थाय सुसत्त्वाय कीर्तिस्तम्भाय ते
नमः ।
नमः कृतागमायाथ वेदान्तपठिताय च ॥ ८२॥

अश्रोत्राय श्रुतिमते बहुश्रुतिधराय च ।
अघ्राणाय नमस्तुभ्यं गन्धावघ्राणकारिणे ॥
८३॥

पादहीनाय वोढ्रे च सर्वत्रगतये नमः ।
त्र्यक्षाय जननेत्राय नमस्तुभ्यं
चिदात्मने ॥ ८४॥

रसज्ञाय नमस्तुभ्यं रसनारहिताय च ।
अमूर्तायाथ मूर्ताय सदसस्पतये नमः ॥ ८५॥

जितेन्द्रियाय तथ्याय
परञ्ज्योतिःस्वरूपिणे ।
नमस्ते सर्वमर्त्यानामादिकर्त्रे
भुवन्तये ॥ ८६॥

Page 480 of 523

सर्गस्थितिविनाशानां कर्त्रे ते प्रेरकाय
च ।
नमोऽन्तर्यामिणे सर्वहृदिस्थाय नमो नमः ॥
८७॥

चक्रभ्रमणकर्त्रे ते पुराणाय नमो नमः ।
वामदक्षिणहस्तोत्थलोकेश हरिशालिने ॥ ८८॥

नमः सकलकल्याणदायिने प्रसवाय च ।
स्वभावोदारधीराय सूत्रकाराय ते नमः ॥ ८९॥

विषयार्णवमग्नानां समुद्धरणसेतवे ।
अस्नेहस्नेहरूपाय वार्तातिक्रान्तवर्तिने
॥ ९०॥

यत्र सर्वं यतः सर्वं सर्वं यत्र नमो नमः ।
नमो महार्णवायाथ भास्कराय नमो नमः ॥ ९१॥

भक्तिगम्याय भक्तानां सुलभाय नमो नमः ।
दुष्प्रधर्षाय दुष्टानां विजयाय
विवेकिनाम् ॥ ९२॥

अतर्किताय लोकाय सुलोकाय नमो नमः ।
पूरयित्रे विशेषाय शुभाय च नमो नमः ॥ ९३॥

नमः कर्पूरदेहाय सर्पहाराय ते नमः ।
नमः संसारपाराय कमनीयाय ते नमः ॥ ९४॥

वह्निदर्पविघाताय वायुदर्पविघातिने ।
जरातिगाय वीर्याय नमस्ते विश्वव्यापिने ॥
९५॥

सूर्यकोटिप्रतीकाश निष्क्रियाय नमो नमः ।
चन्द्रकोटिसुशीताय विमलाय नमो नमः ॥ ९६॥

नमो गूढस्वरूपाय दिशां च पतये नमः ।
नमः सत्यप्रतिज्ञाय समस्ताय समाधये ॥ ९७॥

एकरूपाय शून्याय विश्वनाभिह्रदाय च ।
सर्वोत्तमाय कूल्याय प्राणिनां सुहृदे नमः
॥ ९८॥ कालाय
अन्नानां पतये तुभ्यं चिन्मात्राय नमो नमः
।
ध्येयाय ध्यानगम्याय ध्यानरूपाय ते नमः ॥
९९॥

नमस्ते शाश्वतैश्वर्यविभवाय नमो नमः ।
वरिष्ठाय धर्मगोप्त्रे निधनायाग्रजाय च ॥
१००॥

योगीश्वराय योगाय योगगम्याय ते नमः ।
नमः प्राणेश्वरायाथ सर्वशक्तिधराय च ॥ १०१॥

धर्माधाराय धन्याय पुष्कलाय नमो नमः ।
महेन्द्रोपेन्द्रचन्द्रार्कनमिताय नमो
नमः ॥ १०२॥

महर्षिवन्दितायाथ प्रकाशाय सुधर्मिणे ।
नमो हिरण्यगर्भाय नमो हिरण्मयाय च ॥ १०३॥

जगद्बीजाय हरये सेव्याय क्रतवे नमः ।
आधिपत्याय कामाय यशसे ते प्रचेतसे ॥ १०४॥

नमो ब्रह्ममयायाथ सकलाय नमो नमः ।
नमस्ते रुक्मवर्णाय नमस्ते ब्रह्मयोनये ॥
१०५॥

योगात्मने त्वभीताय दिव्यनृत्याय ते नमः ।
जगतामेकबीजाय मायाबीजाय ते नमः ॥ १०६॥

सर्वहृत्सन्निविष्टाय ब्रह्मचक्रभ्रमाय च
।
ब्रह्मानन्दाय महते ब्रह्मण्याय नमो नमः ॥
१०७॥

भूमिभारार्तिसंहर्त्रे विधिसारथये नमः ।
हिरण्यगर्भपुत्राणां प्राणसंरक्षणाय च ॥
१०८॥

दुर्वाससे षड्विकाररहिताय नमो नमः ।
नमो देहार्धकान्ताय षडूर्मिरहिताय च ॥ १०९॥

प्रकृत्यै भवनाशाय ताम्राय परमेष्ठिने ।
अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायकाय नमो नमः ॥ ११०॥

एकाकिने निर्मलाय द्रविणाय दमाय च ।
नमस्त्रिलोचनायाथ शिपिविष्टाय बन्धवे ॥
१११॥

त्रिविष्टपेश्वरायाथ नमो व्याघ्रेश्वराय च
।
विश्वेश्वराय दात्रे ते नमश्चन्द्रेश्वराय
च ॥ ११२॥

व्याधेश्वरायायुधिने यज्ञकेशाय ते नमः ।
व्यासेश्वराय
जैगीषव्येश्वरायाथ दिवोदासेश्वराय च ॥
११३॥

Page 485 of 523

नागेश्वराय न्यायाय न्यायनिर्वाहकाय च ।
शरण्याय सुपात्राय कालचक्रप्रवर्तिने ॥
११४॥

विचक्षणाय दंष्ट्राय वेदाश्वाय नमो नमः ।
नीलजीमूतदेहाय परात्मज्योतिषे नमः ॥ ११५॥

शरणागतपालाय महाबलपराय च ।
सर्वपापहरायाथ महानादाय ते नमः ॥ ११६॥

कृष्णस्य जयदात्रे ते बिल्वकेशाय ते नमः ।
दिव्यभोगाय दूताय कोविदाय नमो नमः ॥ ११७॥

कामपाशाय चित्राय चित्राङ्गाय नमो नमः ।
नमो मातामहायाथ नमस्ते मातरिश्वने ॥ ११८॥

निःसङ्गाय सुनेत्राय विद्येशाय जयाय च ।
व्याघ्रसम्मर्दनायाथ मध्यस्थाय नमो नमः ॥
११९॥

अङ्गुष्ठशिरसा लङ्कानाथदर्पहराय च ।
वैयाघ्रपुरवासाय नमः सर्वेश्वराय च ॥ १२०॥

नमः परावरेशाय जगत्स्थावरमूर्तये ।

Page 485 of 523

नमोऽप्यनुपमेशाय शार्ङ्गिणे
विष्णुमूर्तये ॥ १२१॥

नारायणाय रामाय सुदीप्ताय नमो नमः ।
नमो ब्रह्माण्डमालाय गोधराय वरूथिने ॥ १२२॥

नमः सोमाय कूप्याय नमः पातालवासिने ।
नमस्ताराधिनाथाय वागीशाय नमो नमः ॥ १२३॥

सदाचाराय गौराय स्वायुधाय नमो नमः ।
अतर्क्यायाप्रमेयाय प्रमाणाय नमो नमः ॥
१२४॥

कलिग्रासाय भक्तानां
भुक्तिमुक्तिप्रदायिने ।
संसारमोचनायाथ वर्णिने लिङ्गरूपिणे ॥ १२५॥

सच्चिदानन्दरूपाय पापराशिहराय च ।
गजारये विदेहाय त्रिलिङ्गरहिताय च ॥ १२६॥

अचिन्त्यशक्तयेऽलङ्घ्यशासनायाच्युताय च ।
नमो राजाधिराजाय चैतन्यविषयाय च ॥ १२७॥

नमः शुद्धात्मने ब्रह्मज्योतिषे
स्वस्तिदाय च ।

मयोभुवे च दुर्ज्ञेयसामर्थ्याय च यज्वने ॥
१२८॥

चक्रेश्वराय वै तुभ्यं नमो नक्षत्रमालिने ।
अनर्थनाशनायाथ भस्मलेपकराय च ॥ १२९॥

सदानन्दाय विदुषे सगुणाय विरोधिने ।
दुर्गमाय शुभाङ्गाय मृगव्याधाय ते नमः ॥
१३०॥

प्रियाय धर्मधाम्ने ते प्रयोगाय विभागिने ।
नाद्यायामृतपानाय सोमपाय तपस्विने ॥ १३१॥

नमो विचित्रवेषाय पुष्टिसंवर्धनाय च ।
चिरन्तनाय धनुषे वृक्षाणां पतये नमः ॥ १३२॥

निर्मायायाग्रगण्याय व्योमातीताय ते नमः ।
संवत्सराय लोप्याय स्थानदाय स्थविष्णवे ॥
१३३॥

व्यवसायफलान्ताय महाकर्तृप्रियाय च ।
गुणत्रयस्वरूपाय नमः सिद्धस्वरूपिणे ॥
१३४॥

नमः स्वरूपरूपाय स्वेच्छाय पुरुषाय च ।

Page 488 of 523

कालात्पराय वेद्याय नमो ब्रह्माण्डरूपिणे
॥ १३५॥

अनित्यनित्यरूपाय तदन्तर्वर्तिने नमः ।
नमस्तीर्थ्याय कूल्याय पूर्णाय वटवे नमः ॥
१३६॥

पञ्चतन्मात्ररूपाय
पञ्चकर्मेन्द्रियात्मने ।
विशृङ्खलाय दर्पाय नमस्ते विषयात्मने ॥
१३७॥

अनवद्याय शास्त्राय स्वतन्त्रायामृताय च ।
नमः प्रौढाय प्राज्ञाय योगारूढाय ते नमः ॥
१३८॥

मन्त्रज्ञाय प्रगल्भाय प्रदीपविमलाय च ।
विश्ववासाय दक्षाय वेदनिःश्वसिताय च ॥ १३९॥

यज्ञाङ्गाय सुवीराय नागचूडाय ते नमः ।
व्याघ्राय बाणहस्ताय स्कन्दाय दक्षिणे नमः
॥ १४०॥

क्षेत्रज्ञाय रहस्याय स्वस्थानाय वरीयसे ।
गहनाय विरामाय सिद्धान्ताय नमो नमः ॥ १४१॥

Page 488 of 523

Page 489 of 523

महीधराय गृह्याय वटवृक्षाय ते नमः ।
ज्ञानदीपाय दुर्गाय
सिद्धान्तैर्निश्चिताय च ॥ १४२॥

श्रीमते मुक्तिबीजाय कुशलाय विवासिने ।
प्रेरकाय विशोकाय हविर्धानाय ते नमः ॥ १४३॥

गम्भीराय सहायाय भोजनाय सुभोगिने ।
महायज्ञाय तीक्ष्णाय नमस्ते भूतचारिणे ॥
१४४॥

नमः प्रतिष्ठितायाथ महोत्साहाय ते नमः ।
परमार्थाय शिशवे प्रांशवे च कपालिने ॥ १४५॥

सहजाय गृहस्थाय सन्ध्यानाथाय विष्णवे ।
सद्भिः सम्पूजितायाथ वितलासुरघातिने ॥
१४६॥

जनाधिपाय योग्याय कामेशाय किरीटिने ।
अमोघविक्रमायाथ नग्नाय दलघातिने ॥ १४७॥

सङ्ग्रामाय नरेशाय नमस्ते शुचिभस्मने ।
भूतिप्रियाय भूम्ने ते सेनाय चतुराय च ॥
१४८॥

Page 489 of 523

मनुष्यबाह्यगतये कृतज्ञाय शिखण्डिने ।
निर्लेपाय जटार्द्राय महाकालाय भैरवे ॥
१४९॥

नमो विरूपरूपाय शक्तिगम्याय ते नमः ।
नमः सर्वाय सदसत्सत्याय सुव्रताय च ॥ १५०॥

नमो भक्तिप्रियायाथ श्वेतरक्षापराय च ।
सुकुमारमहापापहराय रथिने नमः ॥ १५१॥

नमस्ते धर्मराजाय धनाध्यक्षाय सिद्धये ।
महाभूताय कल्पाय कल्पनारहिताय च ॥ १५२॥

ख्याताय जितविश्वाय गोकर्णाय सुचारवे ।
श्रोत्रियाय वदान्याय दुर्लभाय कुटुम्बिने
॥ १५३॥

विरजाय सुगन्धाय नमो विश्वम्भराय च ।
भवातीताय तिष्याय नमस्ते सामगाय च ॥ १५४॥

अद्वैताय द्वितीयाय कल्पराजाय भोगिने ।
चिन्मयाय नमः शुक्लज्योतिषे क्षेत्रगाय च ॥
१५५॥

सर्वभोगसमृद्धाय साम्परायाय ते नमः ।
नमस्ते स्वप्रकाशाय स्वच्छन्दाय सुतन्तवे
॥ १५६॥

सर्वज्ञमूर्तये तुभ्यं गुह्येशाय
सुशान्तये ।
शारदाय सुशीलाय कौशिकाय धनाय च ॥ १५७॥

अभिरामाय तत्त्वाय व्यालकल्पाय ते नमः ।
अरिष्टमथनायाथ सुप्रतीकाय ते नमः ॥ १५८॥

आशवे ब्रह्मगर्भाय वरुणायाद्रये नमः ।
नमः कालाग्निरुद्राय श्यामाय सुजनाय च ॥
१५९॥

अहिर्बुध्न्याय जाराय दुष्टानां पतये नमः ।
नमः समयनाथाय समयाय गुहाय च ॥ १६०॥

दुर्लङ्घ्याय नमस्तुभ्यं छन्दःसाराय
दंष्ट्रिणे ।
ज्योतिर्लिङ्गाय मित्राय जगतां हितकारिणे
॥ १६१॥

नमः कारुण्यनिधये श्लोकाय जयशालिने ।
ज्ञानोदयाय बीजाय जगद्विभ्रमहेतवे ॥ १६२॥

अवधूताय शिष्टाय छन्दसां पतये नमः ।
नमः फेन्याय गुह्याय सर्वबन्धविमोचिने ॥
१६३॥

उदारकीर्तये शश्वत्प्रसन्नवदनाय च ।
वसवे वेदकाराय नमो भ्राजिष्णुजिष्णवे ॥
१६४॥

चक्रिणे देवदेवाय गदाहस्ताय पुत्रिणे ।
पारिजातसुपुष्पाय गणाधिपतये नमः ॥ १६५॥

सर्वशाखाधिपतये प्रजनेशाय ते नमः ।
सूक्ष्मप्रमाणभूताय सुरपार्श्वगताय च ॥
१६६॥

अशरीरशरीराय अप्रगल्भाय ते नमः ।
सुकेशाय सुपुष्पाय श्रुतये पुष्पमालिने ॥
१६७॥

मुनिध्येयाय मुनये बीजसंस्थमरीचये ।
चामुण्डाजनकायाथ नमस्ते कृत्तिवाससे ॥
१६८॥

व्युप्तकेशाय योग्याय धर्मपीठाय ते नमः ।

महावीर्याय दीप्ताय बुद्धायाशनये नमः ॥
१६९॥

विशिष्टेष्टाय सेनान्ये द्विपदे कारणाय च ।
कारणानां भगवते बाणदर्पहराय च ॥ १७०॥

अतीन्द्रियाय रम्याय जनानन्दकराय च ।
सदाशिवाय सौम्याय चिन्त्याय शशिमौलये ॥
१७१॥

नमस्ते जातूकर्ण्याय सूर्याध्यक्षाय ते
नमः ।
ज्योतिषे कुण्डलीशस्य वरदायाभयाय च ॥ १७२॥

वसन्ताय सुरभये जयारिमथनाय च ।
प्रेम्णे पुरञ्जयायाथ पृषदश्वाय ते नमः ॥
१७३॥

रोचिष्णवेऽसुरजिते श्वेतपीताय ते नमः ।
नमस्ते चञ्चरीकाय तमिस्रमथनाय च ॥ १७४॥

प्रमाथिने निदाघाय चित्रगर्भाय ते नमः ।
शिवालयाय स्तुत्याय तीर्थदेवाय ते नमः ॥
१७५॥

पत्तीनां पतये तुभ्यं विचित्रगतये नमः ।
Var विचित्रशक्तये
नमो निस्तुलरूपाय सवित्रे तपसे नमः ॥ १७६॥

अहङ्कारस्वरूपाय मेघाधिपतये नमः ।
अपाराय तत्त्वविदे क्षयद्वीराय ते नमः ॥
१७७॥

पञ्चास्यायाग्रगण्याय विष्णुप्राणेश्वराय
च ।
अगोचराय याम्याय क्षेम्याय वडवाग्नये ॥
१७८॥

विक्रमाय स्वतन्त्राय स्वतन्त्रगतये नमः ॥

वनानां पतये तुभ्यं नमस्ते जमदग्नये ॥ १७९॥

अनावृताय मुक्ताय मातृकापतये नमः ।
नमस्ते बीजकोशाय दिव्यानन्दाय ते नमः ॥
१८०॥

नमस्ते विश्वदेवाय शान्तरागाय ते नमः ।
विलोचनसुदेवाय हेमगर्भाय ते नमः ॥ १८१॥

अनाद्यन्ताय चण्डाय मनोनाथाय ते नमः ।

Page 495 of 523

ज्ञानस्कन्दाय तुष्टाय कपिलाय महर्षये ॥
१८२॥

नमस्त्रिकाग्निकालाय देवसिंहाय ते नमः ।
नमस्ते मणिपूराय चतुर्वेदाय ते नमः ॥ १८३॥

स्वरूपाणां स्वभावाय ह्यन्तर्यागाय ते नमः
।
नमः श्लोक्याय वन्याय महाधर्माय ते नमः ॥
१८४॥

प्रसन्नाय नमस्तुभ्यं सर्वात्मज्योतिषे
नमः ।
स्वयम्भुवे त्रिमूर्तीनामध्वातीताय ते नमः
॥ १८५॥

सदाशिव उवाच
जपन्तु मामिकां देवाः नाम्नां दशशतीमिमाम्
।
मम चातिप्रियकरीं महामोक्षप्रदायिनीम् ॥
१८६॥

सङ्ग्रामे जयदात्रीं तु सर्वसिद्धिकरीं शुभाम् ।

Page 495 of 523

Page 496 of 523

यः पठेच्छृणुयाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १८७॥

पुत्रकामो लभेत्पुत्रं राज्यकामस्तु
राजताम् ।
प्राप्नुयात्परया भक्त्या धनधान्यादिकं
बहु ॥ १८८॥

शिवालये नदीतीरे बिल्वमूले विशेषतः ।
प्रजपेत्सिद्धिदां देवाः शुचौ देशे शमीतले
॥ १८९॥

धनकामस्तु
जुहुयाद्घृताक्तैर्बिल्वपत्रकैः ।
मोक्षकामस्तु गव्येन घृतेन प्रतिनामतः ॥
१९०॥

आयुष्कामस्तु जुहुयादाज्येन मधुना तथा ।
पुत्रकामस्तु जुहुयात्तिलाक्तेन तथाम्भसा
॥ १९१॥

मत्समीपे प्रदोषे च नत्वा भक्त्या जपेन्नरः
।
जीवन्सरूपतां प्राप्य सायुज्यं मम
चाप्नुयात् ॥ १९२॥

Page 496 of 523

Page 497 of 523

कालोऽपि जनशास्ता हि मम भक्तं न पश्यति ।
अहं पुरःसरस्तस्य नेष्यामि गगनस्थलम् ॥
१९३॥

त्रिसन्ध्यं यः पठेद्भक्त्या वत्सरं
नियमान्वितः ।
मच्चित्तो मन्मना भूत्वा
साक्षान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १९४॥

रुद्रपाठेन यत्पुण्यं यत्पुण्यं वेदपाठतः
।
तत्पुण्यं लभते योऽसावेकावृत्त्या
पठेदिमाम् ॥ १९५॥

कन्याकोटिप्रदानेन यत्फलं लभते नरः ।
तत्फलं लभते सम्यङ्नाम्नां दशशतं जपन् ॥
१९६॥

अश्वमेधसहस्रस्य यत्फलं लभते नरः ।
कपिलाशतदानस्य तत्फलं पठनाद्भवेत् ॥ १९७॥

यः शृणोति सदा विद्यां श्रावयेद्वापि भक्तितः ।

Page 497 of 523

Page 498 of 523

सोऽपि मुक्तिमवाप्नोति यत्र गत्वा न शोचति
॥ १९८॥

यक्षराक्षसवेतालग्रहकूष्माण्डभैरवाः ।
पठनादस्य नश्यन्ति जीवेच्च शरदां शतम् ॥
१९९॥

ब्रह्महत्यादिपापानां नाशः स्याच्छ्रवणेन
तु ।
किं पुनः पठनादस्य मुक्तिः स्यादनपायिनी ॥
२००॥

इत्युक्त्वा स महादेवो भगवान्परमेश्वरः ।
पुनरप्याह भगवान्कृपया परया युतः ॥ २०१॥

दीयतां मम भक्तेभ्यो यदुक्तं भवघातकम् ।
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः
परानन्दस्वरूपधृक् ॥ २०२॥

श्रीकृष्ण उवाच
एतदेव पुरा रामो लब्धवान् कुम्भसम्भवात् ।
अरण्ये दण्डकाख्ये तु प्रजजाप रघूद्वहः ॥
२०३॥

Page 498 of 523

Page 499 of 523

नित्यं त्रिषवणस्नायी त्रिसन्ध्यं सुस्मरञ्शिवम् ।
तदासौ देवदेवोऽपि प्रत्यक्षः प्राह राघवम्
॥ २०४॥

महापाशुपतं दिव्यं प्रगृहाण रघूद्वह ।
एतदासाद्य पौलस्त्यं जहि मा शोकमर्हसि ॥
२०५॥

तदाप्रभृति भूदेवाः प्रजपन्ति सुभक्तितः ।
गृह्णन्तु परया भक्त्या भवन्तः सर्व एव हि ॥
२०६॥

श्रीव्यास उवाच
ततस्ते मुनयः सर्वे जगृहुर्मुनिपुङ्गवाः ।
गृह्णन्तु मम वाक्यं तु मुक्तिं प्राप्स्यथ
निश्चिताः ॥ २०७॥

भवद्भिरात्मशिष्येभ्यो दीयतामिदमादरात् ।
नाम्नां सहस्रमेतद्धि लिखितं यन्निकेतने ॥
२०८॥

अविमुक्तं तु तद्गेहं नित्यं तिष्ठति शङ्करः ।

Page 499 of 523

Page 500 of 523

अनेन मन्त्रितं भस्माखिलदुष्टविनाशनम् ॥
२०९॥

पिशाचस्य विनाशाय जप्तव्यमिदमुत्तमम् ।
नाम्नां सहस्रेणानेन समं किञ्चिन्न
विद्यते ॥ २१०॥

॥ इति श्रीपद्मपुराणे
बिल्वकेश्वरमाहात्म्ये
श्रीकृष्णमार्कण्डेय संवादे
वेदसारशिवसहस्रनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ॥
॥ शिवसहस्रनामस्तोत्रं
शिवपुराणान्तर्गतम् ॥
सूत उवाच ।
श्रूयतां भो ऋषिश्रेष्ठ येन तुष्टो
महेश्वरः ।
तदहं कथयाम्यद्य शिवं नामसहस्रकम् ॥ १॥

श्री विष्णुरुवाच ।
शिवो हरो मृडो रुद्रः पुष्करः पुष्पलोचनः ।
अर्थिगम्यः सदाचारः शर्वः शम्भुर्महेश्वरः
॥ २॥

चन्द्रापीडश्चन्द्रमौलिर्विश्वं विश्वम्भरेश्वरः ।

Page 500 of 523

Page 501 of 523

वेदान्तसारसन्दोहः कपाली नीललोहितः ॥ ३॥

ध्यानाधारोऽपरिच्छेद्यो गौरीभर्ता
गणेश्वरः ।
अष्टमूर्तिर्विश्वमूर्तिस्त्रिवर्गः
स्वर्गसाधनः ॥ ४॥

ज्ञानगम्यो दृढप्रज्ञो देवदेवस्त्रिलोचनः
।
वामदेवो महादेवः पटुः परिवृढो दृढः ॥ ५॥

विश्वरूपो विरूपाक्षो वागीशः शुचिसत्तमः ।
सर्वप्रमाणसंवादी वृषाङ्को वृषवाहनः ॥ ६॥

ईशः पिनाकी खट्वाङ्गी चित्रवेषश्चिरन्तनः ।
तमोहरो महायोगी गोप्ता ब्रह्मा च धूर्जटिः ॥ ७॥ पाठभेद ब्रह्माण्डहृज्जटी
कालकालः कृत्तिवासाः सुभगः प्रणवात्मकः । पाठभेद प्रणतात्मकः
उन्नद्ध्रः पुरुषो जुष्यो दुर्वासाः पुरशासनः ॥ ८॥ पाठभेद उन्नध्रः दिव्यायुधः स्कन्दगुरुः परमेष्ठी परात्परः ।
अनादिमध्यनिधनो गिरीशो गिरिजाधवः ॥ ९॥

Page 501 of 523

Page 502 of 523

कुबेरबन्धुः श्रीकण्ठो लोकवर्णोत्तमो
मृदुः ।
समाधिवेद्यः कोदण्डी नीलकण्ठः परश्वधीः ॥
१०॥

विशालाक्षो मृगव्याधः सुरेशस्सूर्यतापनः ।
धर्मधाम क्षमाक्षेत्रं भगवान् भगनेत्रभित् ॥ ११॥ पाठभेद धर्माध्यक्षः
उग्रः पशुपतिस्तार्क्ष्यः प्रियभक्तः
परन्तपः ।
दाता दयाकरो दक्षः कपर्दी कामशासनः ॥ १२॥

श्मशाननिलयः सूक्ष्मः श्मशानस्थो महेश्वरः
।
लोककर्ता मृगपतिर्महाकर्ता महौषधिः ॥ १३॥

सोमपोमृतपः सौम्यो महातेजा महाद्युतिः ।
तेजोमयोऽमृतमयोऽन्नमयश्च सुधापतिः ॥ १४॥

उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः
।
नीतिः सुनीतिः शुद्धात्मा सोमः सोमरतः सुखी
॥ १५॥

Page 502 of 523

Page 503 of 523

अजातशत्रुरालोकसम्भाव्यो हव्यवाहनः ।
लोककारो वेदकरः सूत्रकारः सनातनः ॥ १६॥

महर्षिः कपिलाचार्यो
विश्वदीप्तिस्त्रिलोचनः ।
पिनाकपाणिर्भूदेवः स्वस्तिदः स्वस्तिकृत्
सुधीः ॥ १७॥

धातृधामा धामकरः सर्वगः सर्वगोचरः ।
ब्रह्मसृग्विश्वसृक् सर्गः
कर्णिकारप्रियः कविः ॥ १८॥

शाखो विशाखो गोशाखः शिवो भिषगनुत्तमः ।
गङ्गाप्लवोदको भव्यः पुष्कलः स्थपतिः
स्थिरः ॥ १९॥

विजितात्मा विधेयात्मा भूतवाहनसारथिः ।
सगणो गणकायश्च सुकीर्तिश्छिन्नसंशयः ॥ २०॥

कामदेवः कामपालो भस्मोद्धूलितविग्रहः ।
भस्मप्रियो भस्मशायी कामी कान्तः कृतागमः ॥
२१॥

समावर्तोऽनिवृत्तात्मा धर्मपुञ्जः सदाशिवः ।

Page 503 of 523

Page 504 of 523

अकल्मषश्च पुण्यात्मा चतुर्बाहुर्दुरासदः
॥ २२॥

दुर्लभो दुर्गमो दुर्गः सर्वायुधविशारदः ।
अध्यात्मयोगनिलयः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः ॥
२३॥

शुभाङ्गो लोकसारङ्गो जगदीशो जनार्दनः ।
भस्मशुद्धिकरो मेरुरोजस्वी शुद्धविग्रहः ॥
२४॥ पाठभेद भस्मशुद्धिकरोऽभीरु
असाध्यः साधुसाध्यश्च भृत्यमर्कटरूपधृक् ।
हिरण्यरेताः पौराणो रिपुजीवहरो बली ॥ २५॥

महाह्रदो महागर्तः सिद्धो बृन्दारवन्दितः
।
व्याघ्रचर्माम्बरो व्याली महाभूतो
महानिधिः ॥ २६॥

अमृतोमृतपः श्रीमान् पाञ्चजन्यः प्रभञ्जनः
। पाठभेद पञ्चजन्यः
पञ्चविंशतितत्त्वस्थः पारिजातः परात्परः ॥
२७॥

सुलभः सुव्रतः शूरो वाङ्मयैकनिधिर्निधिः ।

Page 504 of 523

Page 505 of 523

वर्णाश्रमगुरुर्वर्णी शत्रुजिच्छत्रुतापनः ॥ २८॥

आश्रमः क्षपणः क्षामो ज्ञानवानचलेश्वरः ।
पाठभेद श्रमणः
प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेयः सुवर्णो वायुवाहनः
॥ २९॥

धनुर्धरो धनुर्वेदो गुणः शशिगुणाकरः ।
सत्यः सत्यपरोऽदीनो धर्माङ्गो धर्मशासनः ॥
३०॥

अनन्तदृष्टिरानन्दो दण्डो दमयिता दमः ।
अभिचार्यो महामायो विश्वकर्मविशारदः ॥ ३१॥

वीतरागो विनीतात्मा तपस्वी भूतभावनः ।
उन्मत्तवेषः प्रच्छन्नो जितकामो जितप्रियः
॥ ३२॥

कल्याणप्रकृतिः कल्पः सर्वलोकप्रजापतिः ।
तरस्वी तारको धीमान् प्रधानः प्रभुरव्ययः ॥
३३॥

लोकपालोऽन्तर्हितात्मा कल्पादिः कमलेक्षणः । पाठभेद लोकपालोऽन्तरात्मा च

Page 505 of 523

Page 506 of 523

वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञो नियमो नियताश्रयः ॥ ३४॥

चन्द्रः सूर्यः शनिः केतुर्वराङ्गो विद्रुमच्छविः ।
भक्तिवश्यः परं ब्रह्मा मृगबाणार्पणोऽनघः ॥ ३५॥ पाठभेद परब्रह्म
अद्रिरद्र्यालयः कान्तः परमात्मा जगद्गुरुः ।
सर्वकर्मालयस्तुष्टो मङ्गल्यो मङ्गलावृतः
॥ ३६॥

महातपा दीर्घतपाः स्थविष्ठः स्थविरो धृवः ।
अहः संवत्सरो व्याप्तिः प्रमाणं परमं तपः ॥
३७॥

संवत्सरकरो मन्त्रः प्रत्ययः सर्वतापनः ।
अजः सर्वेस्वरः सिद्धो महातेजा महाबलः ॥
३८॥

योगी योग्यो महारेताः सिद्धिः
सर्वादिरग्रहः ।
वसुर्वसुमनाः सत्यः सर्वपापहरो हरः ॥ ३९॥

Page 506 of 523

Page 507 of 523

सुकीर्तिः शोभनः स्रग्वी वेदाङ्गो वेदविन्मुनिः ।
भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता लोकनाथो दुराधरः
॥ ४०॥

अमृतः शाश्वतः शान्तो बाणहस्तः प्रतापवान्
।
कमण्डलुधरो धन्वी ह्यवाङ्मनसगोचरः ॥ ४१॥

अतीन्द्रियो महामायः सर्ववासश्चतुष्पथः ।
कालयोगी महानादो महोत्साहो महाबलः ॥ ४२॥

महाबुद्धिर्महावीर्यो भूतचारी पुरन्दरः ।
निशाचरः प्रेतचारी महाशक्तिर्महाद्युतिः ॥
४३॥

अनिर्देश्यवपुः श्रीमान्
सर्वाचार्यमनोगतिः ।
बहुश्रुतिर्महामायो नियतात्मा
ध्रुवोऽध्रुवः ॥ ४४॥

ओजस्तेजो द्युतिधरो जनकः सर्वशासकः । नृत्यप्रियो नृत्यनित्यः प्रकाशात्मा प्रकाशकः ॥४५॥ पाठभेद नित्यनृत्यः

Page 507 of 523

Page 508 of 523

स्पष्टाक्षरो बुधो मन्त्रः समानः
सारसम्प्लवः ।
युगादिकृद्युगावर्तो गम्भीरो वृषवाहनः ॥
४६॥

इष्टो विशिष्टः शिष्टेष्टः सुलभः सारशोधनः
।
तीर्थरूपस्तीर्थनामा तीर्थदृश्यस्तु
तीर्थदः ॥ ४७॥

अपां निधिरधिष्ठानं विजयो जयकालवित् ।
पाठभेद दुर्जयो
प्रतिष्ठितः प्रमाणज्ञो हिरण्यकवचो हरिः ॥
४८॥

विमोचनः सुरगणो विद्येशो बिन्दुसंश्रयः ।
वातरूपोऽमलोन्मायी विकर्ता गहनो गुहः ॥ ४९॥

करणं कारणं कर्ता सर्वबन्धविमोचनः ।
व्यवसायो व्यवस्थानः स्थानदो जगदादिजः ॥
५०॥

गुरुदो ललितोऽभेदो भावात्मात्मनि संस्थितः ।

Page 508 of 523

Page 509 of 523

वीरेश्वरो वीरभद्रो वीरासनविधिर्गुरुः ॥
५१॥

वीरचूडामणिर्वेत्ता चिदानन्दो नदीधरः ।
आज्ञाधारस्त्रिशूली च शिपिविष्टः शिवालयः
॥ ५२॥

वालखिल्यो महावीरस्तिग्मांशुर्बधिरः खगः ।
पाठभेद बालखिल्यो
अभिरामः सुशरणः सुब्रह्मण्यः सुधापतिः ॥
५३॥

मघवान् कौशिको गोमान् विरामः सर्वसाधनः ।
मघवाकौशिको
ललाटाक्षो विश्वदेहः सारः संसारचक्रभृत् ॥
५४॥

अमोघदण्डी मध्यस्थो हिरण्यो ब्रह्मवर्चसः
। पाठभेद दण्डो
परमार्थः परो मायी शम्बरो व्याघ्रलोचनः ॥
५५॥ पाठभेद परोमायः संवरो रुचिर्बहुरुचिर्वैद्यो वाचस्पतिरहस्पतिः
।
रविर्विरोचनः स्कन्दः शास्ता वैवस्वतो यमः
॥ ५६॥

Page 509 of 523

Page 510 of 523

युक्तिरुन्नतकीर्तिश्च सानुरागः पुरञ्जयः
।
कैलासाधिपतिः कान्तः सविता रविलोचनः ॥ ५७॥

विश्वोत्तमो वीतभयो विश्वभर्ताऽनिवारतः ।
नित्यो नियतकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥
५८॥

दूरश्रवो विश्वसहो ध्येयो दुस्स्वप्ननाशनः
।
उत्तारणो दुष्कृतिहा विज्ञेयो दुस्सहोऽभवः
॥ ५९॥

अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः किरीटी
त्रिदशाधिपः ।
विश्वगोप्ता विश्वकर्ता सुवीरो
रुचिराङ्गदः ॥ ६०॥

जननो जनजन्मादिः प्रीतिमान्नीतिमान्
ध्रुवः ।
वशिष्ठः कश्यपो भानुर्भीमो भीमपराक्रमः ॥
६१॥

प्रणवः सत्पथाचारो महाकोशो महाधनः ।

Page 510 of 523

जन्माधिपो महादेवः सकलागमपारगः ॥ ६२॥

तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा
विभुर्विष्णुविभूषणः । पाठभेद
विष्णुर्विभू
ऋषिर्ब्राह्मण ऐश्वर्यं
जन्ममृत्युजरातिगः ॥ ६३॥

पञ्चयज्ञसमुत्पत्तिर्विश्वेशो विमलोदयः ।
पाठभेद पञ्चतत्त्व
आत्मयोनिरनाद्यन्तो वत्सलो भक्तलोकधृक् ॥
६४॥ पाठभेद अनाद्यन्तो ह्यात्मयोनिर्
गायत्रीवल्लभः प्रांशुर्विश्वावासः
प्रभाकरः ।
शिशुर्गिरिरतः सम्राट् सुषेणः सुरशत्रुहा
॥ ६५॥

अनेमिरिष्टनेमिश्च मुकुन्दो विगतज्वरः ।
स्वयञ्ज्योतिर्महाज्योतिस्तनुज्योतिरचञ्च
लः ॥ ६६॥

पिङ्गळः
कपिलश्मश्रुर्भालनेत्रस्त्रयीतनुः ।

Page 512 of 523

ज्ञानस्कन्दो
महानीतिर्विश्वोत्पत्तिरुपप्लवः ॥ ६७॥
पाठभेद स्कन्धो
भगो विवस्वानादित्यो गतपारो बृहस्पतिः ।
कल्याणगुणनामा च पापहा पुण्यदर्शनः ॥ ६८॥

उदारकीर्तिरुद्योगी सद्योगी सदसन्मयः ।
पाठभेद सदसन्त्रपः
नक्षत्रमाली नाकेशः स्वाधिष्ठानः षडाश्रयः
॥ ६९॥

पवित्रः पापहारी च मणिपूरो नभोगतिः ।
पाठभेद पापनाशश्च
हृत्पुण्डरीकमासीनः शक्रः शान्तो वृषाकपिः
॥ ७०॥

उष्णो ग्रहपतिः कृष्णः समर्थोनर्थनाशनः ।
अधर्मशत्रुरज्ञेयः पुरुहूतः पुरश्रुतः ॥
७१॥

ब्रह्मगर्भो बृहद्गर्भो धर्मधेनुर्धनागमः
।
जगद्धितैषी सुगतः कुमारः कुशलागमः ॥ ७२॥

Page 512 of 523

Page 513 of 523

हिरण्यवर्णो ज्योतिष्मान्नानाभूतरतो ध्वनिः ।
आरोग्यो नयनाध्यक्षो विश्वामित्रो धनेश्वरः ॥ ७३॥ नमना?
ब्रह्मज्योतिर्वसुधामा महाज्योतिरनुत्तमः
। पाठभेद वसुर्धामा
मातामहो मातरिश्वा नभस्वान्नागहारधृक् ॥
७४॥

पुलस्त्यः पुलहोऽगस्त्यो जातूकर्ण्यः
पराशरः ।
निरावरणनिर्वारो वैरञ्च्यो विष्टरश्रवाः ॥
७५॥

आत्मभूरनिरुद्धोत्रिर्ज्ञानमूर्तिर्महायशाः ।
लोकवीराग्रणीर्वीरश्चण्डः सत्यपराक्रमः ॥
७६॥

व्यालकल्पो महाकल्पः कल्पवृक्षः कलाधरः ।
अलङ्करिष्णुरचलो रोचिष्णुर्विक्रमोन्नतः
॥ ७७॥

आयुः शब्दपतिर्वाग्मी प्लवनः शिखिसारथिः ।

Page 513 of 523

Page 514 of 523

असंसृष्टोऽतिथिः शत्रुप्रमाथी पादपासनः ॥
७८॥

वसुश्रवाः कव्यवाहः प्रतप्तो विश्वभोजनः ।
जप्यो जरादिशमनो लोहितश्च तनूनपात् ॥ ७९॥

वृषदश्वो नभोयोनिः सुप्रतीकस्तमिस्रहा ।
पाठभेद बृहदश्वो
निदाघस्तपनो मेघभक्षः परपुरञ्जयः ॥ ८०॥

सुखानिलः सुनिष्पन्नः सुरभिः शिशिरात्मकः
।
वसन्तो माधवो ग्रीष्मो नभस्यो बीजवाहनः ॥
८१॥

अङ्गिरा गुरुरात्रेयो विमलो विश्वपावनः ।
पावनः पुरजिच्छक्रस्त्रैविद्यो वरवाहनः ॥
८२॥ पाठभेद नववारणः
मनो बुद्धिरहङ्कारः क्षेत्रज्ञः
क्षेत्रपालकः ।
जमदग्निर्बलनिधिर्विगालो विश्वगालवः ॥ ८३॥
पाठभेद बलनिधिः यः?
अघोरोऽनुत्तरो यज्ञः श्रेयो
निःश्रेयसप्रदः ।
शैलो गगनकुन्दाभो दानवारिररिन्दमः ॥ ८४॥

Page 514 of 523

Page 515 of 523

चामुण्डो जनकश्चारुर्निश्शल्यो
लोकशल्यधृक् ।
चतुर्वेदश्चतुर्भावश्चतुरश्चतुरप्रियः ॥
८५॥

आम्नायोऽथ समाम्नायस्तीर्थदेवः शिवालयः ।
बहुरूपो महारूपः सर्वरूपश्चराचरः ॥ ८६॥

न्यायनिर्णायको नेयो न्यायगम्यो निरञ्जनः । पाठभेद न्यायी
सहस्रमूर्धा देवेन्द्रः सर्वशस्त्रप्रभञ्जनः ॥ ८७॥ पाठभेद शास्त्र मुण्डी विरूपो विकृतो दण्डी नादी गुणोत्तमः । पाठभेद मुण्डो दानी
पिङ्गलाक्षो हि बह्वक्षो नीलग्रीवो
निरामयः ॥ ८८॥ पाठभेद जनाध्यक्षो
सहस्रबाहुः सर्वेशः शरण्यः सर्वलोकधृक् ।
पद्मासनः परञ्ज्योतिः पारम्पर्यफलप्रदः ॥
८९॥

पद्मगर्भो महागर्भो विश्वगर्भो विचक्षणः ।
परावरज्ञो वरदो वरेण्यश्च महास्वनः ॥ ९०॥

देवासुरगुरुर्देवो देवासुरनमस्कृतः ।

Page 515 of 523

Page 516 of 523

देवासुरमहामित्रो देवासुरमहेस्वरः ॥ ९१॥

देवासुरेश्वरो दिव्यो देवासुरमहाश्रयः ।
देवदेवोऽनयोऽचिन्त्यो देवतात्मात्मसम्भवः
॥ ९२॥

सद्यो महासुरव्याधो देवसिंहो दिवाकरः ।
विबुधाग्रचरः श्रेष्ठः
सर्वदेवोत्तमोत्तमः ॥ ९३॥

शिवज्ञानरतः श्रीमान् शिखी
श्रीपर्वतप्रियः ।
वज्रहस्तः सिद्धखड्गो नरसिंहनिपातनः ॥ ९४॥

ब्रह्मचारी लोकचारी धर्मचारी धनाधिपः ।
नन्दी नन्दीश्वरोऽनन्तो नग्नव्रतधरः शुचिः
॥ ९५॥

लिङ्गाध्यक्षः सुराध्यक्षो युगाध्यक्षो
युगापहः ।
स्वधामा स्वगतः स्वर्गी स्वरः स्वरमयः
स्वनः ॥ ९६॥

बाणाध्यक्षो बीजकर्ता कर्मकृद्धर्मसम्भवः । पाठभेद धर्मकृत्

Page 516 of 523

Page 517 of 523

दम्भो लोभोऽथ वै शम्भुः सर्वभूतमहेश्वरः ॥
९७॥ पाठभेद लोभोऽर्थविच्छम्भुः श्मशाननिलयस्त्र्यक्षः सेतुरप्रतिमाकृतिः
।
लोकोत्तरस्फुटो लोकस्त्र्यम्बको नागभूषणः
॥ ९८॥

अन्धकारिर्मखद्वेषी विष्णुकन्धरपातनः ।
पाठभेद मयद्वेषी
हीनदोषोऽक्षयगुणो दक्षारिः पूषदन्तभित् ॥
९९॥

धूर्जटिः खण्डपरशुः सकलो निष्कलोऽनघः ।
अकालः सकलाधारः पाण्डुराभो मृडो नटः ॥ १००॥

पूर्णः पूरयिता पुण्यः सुकुमारः सुलोचनः ।
सन्मार्गपः प्रियोऽधूर्तः
पुण्यकीर्तिरनामयः ॥ १०१॥

मनोजवस्तीर्थकरो जटिलो नियमेश्वरः ।
जीवितान्तकरो नित्यो वसुरेता वसुप्रदः ॥
१०२॥

सद्गतिः सिद्धिदः सिद्धिः सज्जातिः खलकण्टकः ।

Page 517 of 523

Page 518 of 523

कलाधरो महाकालभूतः सत्यपरायणः ॥ १०३॥

लोकलावण्यकर्ता च लोकोत्तरसुखालयः ।
चन्द्रसञ्जीवनः शास्ता लोकग्राहो महाधिपः
॥ १०४॥

लोकबन्धुर्लोकनाथः कृतज्ञः कृत्तिभूषितः ।
अनपायोऽक्षरः कान्तः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ १०५॥ पाठभेद शास्त्र
तेजोमयो द्युतिधरो लोकमानी घृणार्णवः ।
शुचिस्मितः प्रसन्नात्मा ह्यजेयो
दुरतिक्रमः ॥ १०६॥

ज्योतिर्मयो जगन्नाथो निराकारो जलेश्वरः ।
तुम्बवीणो महाकायो विशोकः शोकनाशनः ॥ १०७॥

त्रिलोकपस्त्रिलोकेशः सर्वशुद्धिरधोक्षजः
।
अव्यक्तलक्षणो देवो व्यक्तोऽव्यक्तो
विशांपतिः ॥ १०८॥

परः शिवो वसुर्नासासारो मानधरो यमः ।
ब्रह्मा विष्णुः प्रजापालो हंसो
हंसगतिर्वयः ॥ १०९॥

Page 518 of 523

Page 519 of 523

वेधा विधाता धाता च स्रष्टा हर्ता चतुर्मुखः ।
कैलासशिखरावासी सर्वावासी सदागतिः ॥ ११०॥

हिरण्यगर्भो द्रुहिणो भूतपालोथ भूपतिः ।
सद्योगी योगविद्योगी वरदो ब्राह्मणप्रियः
॥ १११॥

देवप्रियो देवनाथो देवको देवचिन्तकः ।
विषमाक्षो विरूपाक्षो वृषदो वृषवर्धनः ॥
११२॥

निर्ममो निरहङ्कारो निर्मोहो निरुपद्रवः ।
दर्पहा दर्पदो दृप्तः सर्वार्थपरिवर्तकः ॥
११३॥

सहस्रार्चिर्भूतिभूषः
स्निग्धाकृतिरदक्षिणः ।
भूतभव्यभवन्नाथो विभवो भूतिनाशनः ॥ ११४॥

अर्थोऽनर्थो महाकोशः परकार्यैकपण्डितः ।
निष्कण्टकः कृतानन्दो निर्व्याजो
व्याजमर्दनः ॥ ११५॥

Page 519 of 523

Page 520 of 523

सत्त्ववान् सात्त्विकः सत्यः कृतस्नेहः कृतागमः ।
अकम्पितो गुणग्राही नैकात्मा नैककर्मकृत् ॥ ११६॥

सुप्रीतः सुखदः सूक्ष्मः सुकरो
दक्षिणानिलः ।
नन्दिस्कन्दो धरो धुर्यः
प्रकटप्रीतिवर्धनः ॥ ११७॥

अपराजितः सर्वसहो गोविन्दः सत्ववाहनः ।
अधृतः स्वधृतः सिद्धः पूतमूर्तिर्यशोधनः ॥
११८॥

वाराहशृङ्गधृक् शृङ्गी बलवानेकनायकः ।
शृतिप्रकाशः श्रुतिमानेकबन्धुरनेकधृक् ॥
११९॥

श्रीवत्सलः शिवारम्भः शान्तभद्रः समो यशः ।
भूयशो भूषणो भूतिर्भूतिकृद् भूतभावनः ॥
१२०॥

अकम्पो भक्तिकायस्तु कालहानिः कलाविभुः ।
सत्यव्रती महात्यागी नित्यः शान्तिपरायणः
॥ १२१॥

Page 520 of 523

Page 521 of 523

परार्थवृत्तिर्वरदो विरक्तस्तु विशारदः ।
शुभदः शुभकर्ता च शुभनामा शुभः स्वयम् ॥
१२२॥

अनर्थितो गुणग्राही ह्यकर्ता कनकप्रभः ।
स्वभावभद्रो मध्यस्थः शत्रुघ्नो
विघ्ननाशनः ॥ १२३॥

शिखण्डी कवची शूली जटी मुण्डी च कुण्डली ।
अमृत्युः सर्वदृक्
सिंहस्तेजोराशिर्महामणिः ॥ १२४॥

असङ्ख्येयोऽप्रमेयात्मा वीर्यवान्
वीर्यकोविदः ।
वेद्यश्च वै वियोगात्मा परावरमुनीश्वरः ॥
१२५॥ पाठभेद सप्तावर
अनुत्तमो दुराधर्षो मधुरः प्रियदर्शनः ।
सुरेशः शरणः सर्वः शब्दः प्रतपतां वरः ॥
१२६॥

कालपक्षः कालकालः सुकृती कृतवासुकिः ।
महेष्वासो महीभर्ता निष्कलङ्को विशृङ्खलः
॥ १२७॥

Page 521 of 523

Page 522 of 523

द्युमणिस्तरणिर्धन्यः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः ।
विश्वतः सम्प्रवृत्तस्तु व्यूढोरस्को महाभुजः ॥ १२८॥

सर्वयोनिर्निराटङ्को नरनारायणप्रियः ।
पाठभेद निरातङ्को
निर्लेपो यतिसङ्गात्मा निर्व्यङ्गो
व्यङ्गनाशनः ॥ १२९॥

स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोता
व्यासमूर्तिर्निराकुलः । पाठभेद स्तुति
निरवद्यमयोपायो विद्याराशिश्च सत्कृतः ॥
१३१॥

प्रशान्तबुद्धिरक्षुण्णः सङ्ग्रहो
नित्यसुन्दरः ।
वैयाघ्रधुर्यो धात्रीशः सङ्कल्पः
शर्वरीपतिः ॥ १३२॥

परमार्थगुरुर्दत्तः सूरिराश्रितवत्सलः ।
सोमो रसज्ञो रसदः सर्वसत्वावलम्बनः ॥ १३२
एवं नाम्नां सहस्रेण तुष्टाव हि हरं हरिः ।
प्रार्थयामास शम्भुं वै पूजयामास पङ्कजैः ॥
१३३॥

Page 522 of 523

Page 523 of 523

ततः स कौतुकी शम्भुश्चकार चरितं द्विजाः । महद्भूतं सुखकरं तदेव शृणुतादरात् ॥ १३४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्यां
कोटिरुद्रसंहितायां
शिवसहस्रनामवर्णनं नाम
पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५॥

Page 523 of 523